गायत्री-तत्व प्रकाश

लेखक
विद्यानन्द झा

www.vnjha.com

श्रीगायत्रीमहिमा

आदिशक्तिमहामाया,
महाशक्तिमहेश्वरी ।
गायत्री नाम्नि विख्याता,
सर्वकल्याणकारिणी ।।
सर्वशास्त्रमयं ज्ञानं,
सर्वदेवमयं जगत् ।
सर्वशक्तिमयी देवी,
गायत्री हितकारिणी ।।
यथा विशालवृक्षाणां,
व्याप्तिः बीजे हि विद्यते ।
तथा समस्तब्रह्माण्डं,
गायत्र्याः समुत्पद्यते ।।
गायत्री स्मरणमात्रेण,
सर्वसिद्धिं प्रयच्छति ।
श्रद्धया जपध्यानेन,
धियः शुद्धिः हि जायते ।।
गायत्री हि जगन्माता,
गायत्री हि जगत्पिता ।
गायत्री हि जगत्धात्री,
श्री गायत्र्यै नमोनमः ।।

General

श्र

आ

मह

गाय

सर्व

सर्व

सर्व

सर्व

गाय

यथ

व्या

तथ

गाय

गाय

सर्व

श्रद्ध

धिय

श्री

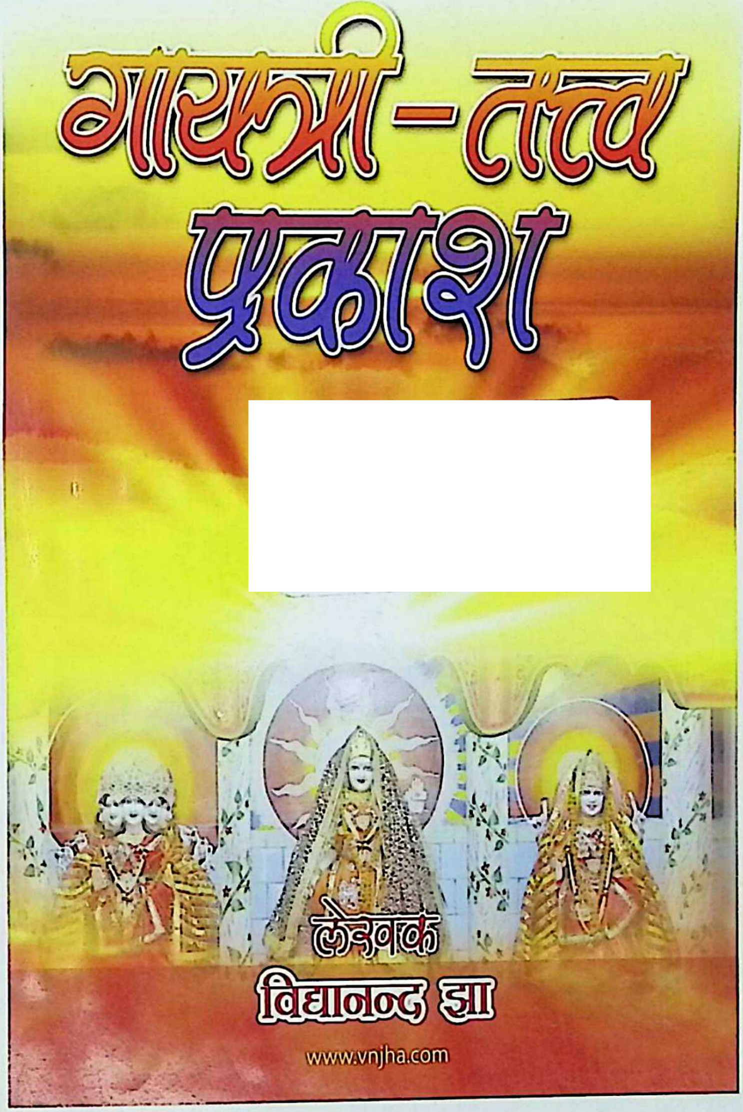

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

यजु. 36.3

गायत्री-तत्त्व-प्रकाश

© सर्वाधिकार सुरक्षित : लेखक विद्यानन्द झा

प्रेरणास्त्रोत : परमपूज्य माता जी
संयोजिका : श्रीमती सरोज झा

प्रथम संस्करण : 2012

मूल्य : ₹ 595.00

प्रकाशक :
सरोज साहित्य प्रकाशन
दरभंगा, बिहार
चलभाष : 09437006654 / 9661682669
ई-मेल : info@vnjha.com
ISBN No. : 978-93-5087-294-9

मुद्रक : पूर्णिमा प्रिन्टर्स प्रा. लि., कदमा, जमशेदपुर (झारखण्ड)

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

ममतामयी पूज्या स्वर्गीया

माता तुला देवी

एवम्

तीर्थ स्वरूप पूज्य स्वर्गीय पिता

आचार्य पण्डित बलभद्र झा

के चरण कमलों में

सादर श्रद्धासुमन

समर्पित

Forwarded Free of Cost with the Compliments of
Rashtriya Sanskrit Sansthan
(Deemed University) New Delhi

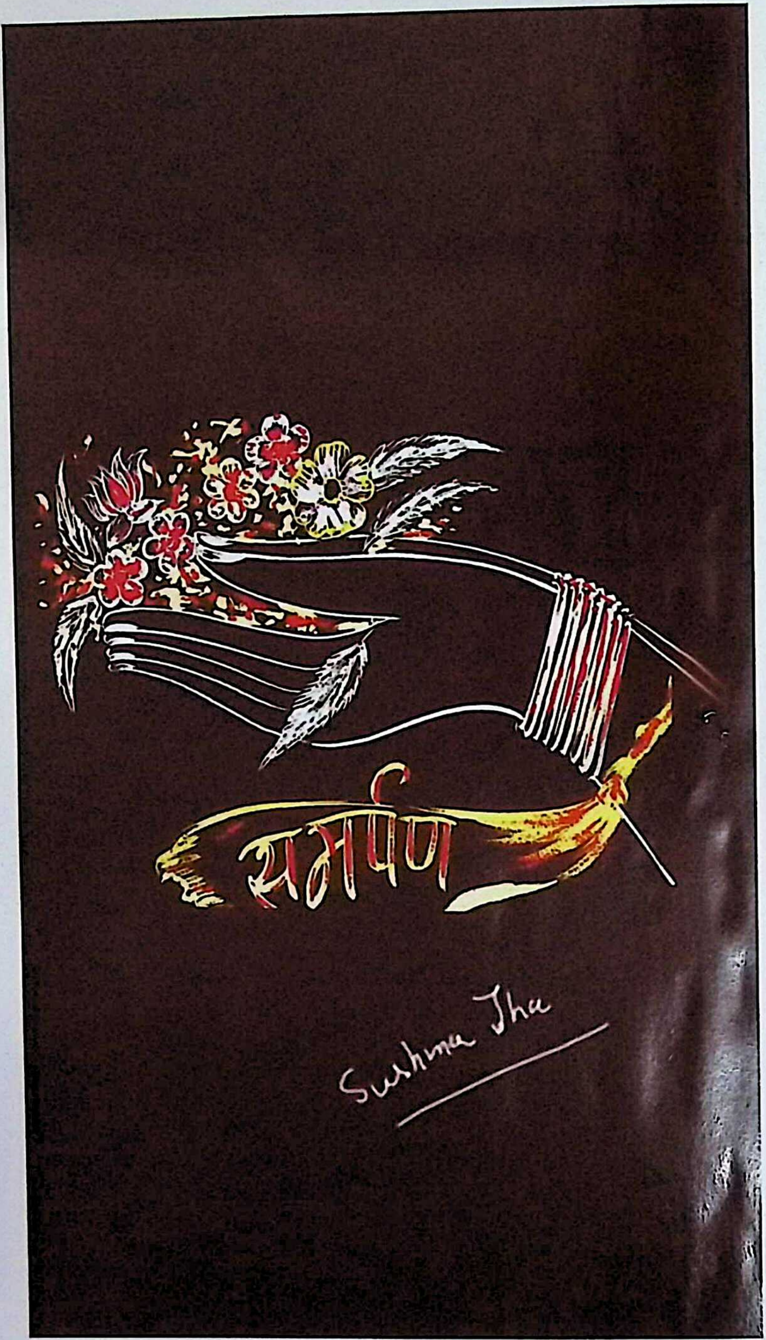
समर्पण
Sushma Jha

या देवी सर्वभूतेषु विद्यारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै [illegible]

श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री निश्चलानन्द सरस्वती महाराज
पीठाधीश्वर गोवर्द्धन मठ पुरी

ॐ श्रीहरिः ॐ

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

वेदोंका तात्पर्य गायत्रीमन्त्रमें सन्निहित है। गायत्रीमन्त्रका तात्पर्य महावाक्योंमें एवम् महावाक्योंका तात्पर्य ओङ्कारसंज्ञक प्रणवमें सन्निहित है। प्रणव वेदबीज है। सच्चिदानन्दस्वरूप अद्वय सर्वेश्वर अचिन्त्य मायाशक्तिके योगसे सृष्टि, स्थिति, संहृति, निग्रह तथा अनुग्रह संज्ञक पञ्च कृत्योंका सम्पादन क्रमशः हिरण्यगर्भात्मक सूर्य, विष्णु, शिव, शक्ति तथा गणपति रूपसे करते हैं। इन पञ्च देवोंसहित अद्वय सच्चिदानन्द तत्वका

साधक गायत्रीमन्त्र है। इसमें चित्तशोधन, समाधि
और तत्त्वज्ञान प्रदान करनेकी शक्ति सन्निहित है।
अतएव यह त्रिकाण्डसारसर्वस्व है।

सनातनधर्ममें फलचौर्य नहीं है तथापि सबमें
'सबका अधिकार' का अनर्गलप्रलाप भी नहीं है।
ब्राह्मणादि त्रिवर्ण जो परम्परासे यज्ञोपवीतमें अधिकृत
हैं एवम् तदनुसार यज्ञोपवीत सम्पन्न और योग्यतम
एवम् यथासम्भव जीवनसे सम्पन्न हैं; वे ही इस मन्त्रमें
अधिकृत हैं तथा उन्हींको इसके जपसे अभिमत
फलकी सिद्धि सम्भव है।

श्रीविद्यानन्दजीने विविध ग्रन्थोंका
अनुशीलनकर 'गायत्री-तत्त्व-प्रकाश' नामक ग्रन्थकी
संरचनाकी है। शास्त्रीय विधासे इसके अनुशीलन और

अनुपालनकी अपेक्षा है।

निश्चलानन्दसरस्वती
चैत्रपूर्णिमा वि.सं. २०६९
पुरी
६.४.२०१२

देवानन्द कुँवर
राज्यपाल

RAJ BHAVAN, PATNA-800 022
Tel.: 0612-2217626, Fax: 2786184

Devanand Konwar
GOVERNOR

11 अप्रैल, 2012

शुभेच्छा

मुझे प्रसन्नता है कि आध्यात्मिक, धार्मिक एवं गायत्री के परमसाधक सुविज्ञ लेखक श्री विद्यानन्द झा द्वारा "गायत्री तत्त्व प्रकाश" नामक पुस्तक की रचना की गई है। इस पुस्तक में आदिशक्ति गायत्री के रहस्यमय शक्तियों, दिव्यस्वरूपों, गायत्री के 24 अक्षरों, पदों की समुचित व्याख्या के साथ गायत्री की महिमा, उपासना विधि, जप का महत्त्व, प्राणायाम तथा साधना के सरल और अतिमहत्त्वपूर्ण उपाय बताये गये हैं। पुस्तक में गायत्री पूजा पद्धति का समावेश किया गया है, जो सभी वर्ग के लोगों के लिये परम कल्याणकारिणी और माँ गायत्री की उपासना के लिये परमोपयोगी सिद्ध होगी।

मैं इस पुस्तक की लोकप्रियता की अभिलाषा के साथ लेखक श्री झा के स्वस्थ, सुखद एवं दीर्घायु जीवन की मंगलकामना करता हूँ।

देवानन्द कुँवर
देवानन्द कुँवर

SULABH INTERNATIONAL SOCIAL SERVICE ORGANISATION
सुलभ इन्टरनेशनल सोशल सर्विस ऑर्गनाइजेशन
(NGO in Special Consultative Status with the Economic and Social Council of the United Nations)

Dr. Bindeshwar Pathak
Ph.D., D.Litt.
Action Sociologist &
Social Reformer
International Expert on
Cost-effective Sanitation, Biogas
and Rural Development
Founder

अभिमत

पृथ्वी पर गायत्री को 'वांछाकल्पलता' कहा जाता है। स्वर्गलोक में कल्पतरु ही गायत्री है। गायत्री को वेदमाता की संज्ञा दी गई है। जप, पाठ और गायन से जो कल्याण करे, वही गायत्री है। गायत्री के संबंध में सभी पक्षों पर विद्वत्तापूर्ण दृष्टि से विचार करते हुए और इसकी उपासना की विविध विधियों को बताते हुए श्री विद्यानन्द झा ने 'गायत्री–तत्त्व–प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में गायत्री की महिमा, उपासना, पूजन–विधि, जप–योग और प्राणायाम इन विविध रूपों को शोधपूर्ण–दृष्टि से विश्वसनीयता–पूर्वक प्रस्तुत किया गया है। गायत्री में 24 अक्षरों का संयोजन है। इनके महत्त्व को भी अधीती लेखक ने सरलतापूर्वक उपस्थित किया है।

पुस्तक के अंतर्गत गायत्री की उपासना–पद्धति को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। गायत्री–सहस्र–नामावली देकर लेखक ने ग्रंथ को और भी उपयोगी और आकर्षक बना दिया है। गायत्री की उपस्थिति समस्त वेदों में है। गायत्री को महामंत्र और मंत्रराज की संज्ञा से विशेष पहचान मिली है।

समस्त पृथ्वी–मंडल पर गायत्री का मंत्रोच्चार शून्य में एक आध्यात्मिक स्पंदन के समान है, जिसे हम दिव्यवाक् कहते हैं। गायत्री का अवतरण महर्षि विश्वामित्र पर हुआ था। इसलिए उन्हें गायत्री का द्रष्टा–ऋषि कहा जाता है। इनका आश्रम बिहार के बक्सर (व्याघ्रसर) में था। इस ग्रंथ के विद्वान् लेखक श्री झा ने गायत्री के विविध पक्षों का तात्त्विक विवेचन कर एक लंबित अभाव की सार्थक संपूर्ति की है। यह ग्रंथ लोकसमादृत और सर्वजन–पठित हो, ऐसी कामना करता हूँ। साथ ही ऐसी आशा रखता हूँ कि सर्वशास्त्र–समालोकी विद्वान् लेखक ऐसे अन्य विषयों पर भी ग्रंथ लिखें।

(डॉ. विन्देश्वर पाठक)

शुभकामना

डॉ. चन्द्रकान्त शुक्ल
संयोजक संस्कृतभारती, झारखंड
भू.पू. उपकुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय

आदिशक्ति गायत्री के परम उपासक सुविज्ञ लेखक विद्यानन्द झा द्वारा विरचित पुस्तक "गायत्री तत्त्व प्रकाश" का आद्योपान्त अनुशीलन कर बडी प्रसन्नता हुई। प्रस्तुत पुस्तक में श्री झा जी ने आदिशक्ति गायत्री को सृष्टि का आधार, समस्त संसार की संचालिका, कण–कण में व्याप्त परमशक्ति का साक्षात् स्वरूप बतलाया है। गायत्री भूलोक में मनोवांछित फल देने वाली कल्पवृक्ष की तरह है। गायत्री की उपासना, जप परम कल्याणकारी है।

प्रस्तुत पुस्तक में गायत्री की महिमा, परम सिद्धि के लिए उपासना, जपविधि, योग और प्राणायाम का शोधपूर्ण विवेचन किया गया है। गायत्री मंत्र के 24 वर्णों के अर्थ सहित देवी–देवताओं के दिव्य शक्तियों के साथ प्रत्येक वर्णों का संयोजन पुस्तक की अलौकिक विशेषता है। पुस्तक सरल भाषा में लिखी गयी है, जो सभी के लिए सुबोध एवं लाभकारी है। आदिशक्ति गायत्री की प्रामाणिक उपासना पद्धति, गायत्री सहस्रनाम स्तोत्र, गायत्री सहस्त्रनामावली ने पुस्तक को विशेष उपयोगी और आकर्षक बना दिया है। आदिशक्ति गायत्री भारतीय श्रद्धा–भक्ति, आस्था और अध्यात्म की आत्मा हैं। गायत्री की उपासना और जप मात्र से व्यक्ति सर्वशक्तिमान्, ऐश्वर्यवान्, सर्वगुण सम्पन्न होकर मनोवांछित परम सिद्धियों को प्राप्त करता है। गायत्री की महिमा अनन्त है।

गायत्र्याः वर्णमेकं साक्षात् देवस्वरूपकम्। तस्याः जपमात्रेण सर्वकार्याणि सिद्धयन्ति।।

विद्वान् लेखक श्री झा जी ने इस पुस्तक के माध्यम से आदिशक्ति गायत्री की उपासना एवं जप का सरल व्यवहारिक मार्ग प्रशस्त कर इस पुस्तक को सर्वजन हिताय–सर्वजन सुखाय के रूप में प्रस्तुत किया है। आप अपने सुकृत के लिए सदैव धन्यवाद एवं प्रशंसा के पात्र है। मेरी शुभकामना है कि आप इसी तरह लोकोपकारी सद्ग्रंथों की रचना करते हुए स्वस्थ और दीर्घायु रहें।

शुभ मंगलकामना सहित

चन्द्रकान्त शुक्ल

डॉ. चन्द्रकान्त शुक्ल

लेखक पं0 विद्यानन्द झा एवं
अर्धाङ्गिनी श्रीमती सरोज झा

प्राक्कथन

आदिशक्ति गायत्री भारतीय धर्म और दर्शन की आत्मा हैं। समस्त ब्रह्मांड में गायत्री शक्ति कण-कण में व्याप्त हैं। ये ब्रह्म चेतना प्रज्ञा हैं। परमब्रह्म की इच्छा शक्ति के प्रस्फुरण से ब्रह्मा एवं गायत्री शक्ति की उत्पत्ति हुई, इसलिए गायत्री आदिशक्ति हैं, जिनमें सहस्त्रधार शक्तियाँ सन्निहित हैं। सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणसम्पन्ना, पराशक्ति गायत्री की उपासना से परमात्म शक्ति का सम्वर्धन होता है, जिससे सद्ज्ञान, सम्पदा प्राप्त कर मनुष्य परमविवेकी तथा ऐश्वर्यवान् हो जाता है। इसी तत्त्वज्ञान से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। गायत्री मंत्र सारगर्भित 24 अक्षरों की पावन श्रृंखला है। सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति ब्रह्मा ने मानव जाति के कल्याण के लिए मंत्रों का संकलन किया, जिनमें प्रथम मंत्र गायत्री है। अतः गायत्री को मंत्रों की अधिष्ठात्री के रूप में मान्यता है। प्रत्येक अक्षर प्रेरणा शक्ति का अक्षय भण्डार है।

गायत्री महात्म्य से अभिप्रेरित होकर गायत्री रहस्य के प्रति जिज्ञासा मेरे मन में उत्पन्न हुई, जिसके समाधान के लिए निरन्तर शास्त्रों का अध्ययन करता रहा। अन्ततः प्राप्त ज्ञान को लेखबद्ध करने की प्रबल आकांक्षा फलीभूत हुई। स्वर्ण पदक प्राप्त कनिष्ठ आत्मजा श्रीमती सुषमा, वरीय अधिवक्ता चेन्नई उच्च न्यायालय एवं चि. श्री अविनाश कुमार, आई.पी.एस. के आवास चेन्नई महानगर में प्रस्तुत पुस्तक 'गायत्री-तत्त्व-प्रकाश' का प्रणयन प्रारम्भ किया एवं श्रीमती ममता मिश्रा, वरीय अधिवक्ता ओडिशा उच्च न्यायालय तथा

चि. श्री विनयतोष मिश्र, आई.पी.एस. के आवास बोकारो इस्पात नगर में रहकर मैंने लेखन कार्य सम्पन्न किया।

महाशक्ति गायत्री के समग्र प्रभामण्डल को 15 अध्यायों में उद्भासित किया गया है।

प्रथम अध्याय में आदिशक्ति गायत्री का उद्भव और विकास का शास्त्र सम्मत विवेचन है। त्रिकाल दर्शी ऋषि-मुनियों ने माँ गायत्री के उद्भव पर प्रकाश डाला है। ऐसी मान्यता है कि भुवन भास्कर सूर्य के मुख से इनका प्रादुर्भाव हुआ।

यह भी मान्यता है कि आदिशक्ति गायत्री का उद्भव पितामह ब्रह्माजी से हुआ। इन्होंने ही गयों (प्राणों) का त्राण किया था, इसलिए गायत्री की संज्ञा से अभिहित हैं। सृष्टि के चौबीस तत्त्वों से निःसृत चौबीस सूक्ष्म धाराओं के सम्मिलित रूप में जो शक्तिशाली धारा प्रवाहित हुई, वही प्रवाहमान धारा गायत्री गंगा हैं।

व्याहृतियाँ सहित गायत्री के चार चरण हैं, जिनकी चार ज्ञान धारायें -ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद हैं। इनसे ही ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण प्रस्फुटित हुए एवं इनकी शाखाएँ, उपशाखाएँ विविध शास्त्र हैं।

द्वितीय अध्याय में गायत्री के स्वरूप का वर्णन है। वेद-उपनिषद्-पुराणों में गायत्री महाशक्ति के स्वरूपों का निरूपण हुआ है। तपोनिष्ठ महर्षियों ने अपने ज्ञान चक्षु से उनके विभिन्न स्वरूपों को देखकर निरूपित किया। उन्हीं शास्त्रोक्त दिव्य स्वरूपों को प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में त्रिपदा गायत्री का विश्लेषण प्रस्तुत है। गायत्री के 8-8 अक्षरों के तीन चरण गायत्री के तीन पाद हैं। सृष्टि के आरम्भ में परमब्रह्म परमेश्वर ओंकार शब्द रूप में प्रकट हुए, जिनसे अ, उ, म तीन धाराएँ प्रवाहित हुई, जिनसे सत्, चित, आनन्द, सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, सत्, रज, तम से त्रिधा शक्तियाँ समन्वित होकर

महाशक्ति त्रिपदा गायत्री के रूप में पूजित हैं। इस विषय को विशद रूप में सरल भाषा में लिखा गया है।

चतुर्थ अध्याय में व्याहृतियाँ भूः, भुवः, स्वः एवं गायत्री के नौ पद तत्, सवितुः, वरेण्यं, भर्गो, देवस्य, धीमहि, धियो, योनः, प्रचोदयात् की अर्थ सहित विस्तृत व्याख्या की गई है।

पंचम अध्याय में गायत्री के 24 अक्षरों के प्रत्येक अक्षर के देवी–देवता, बीज, ऋषि, यंत्र, विभूति एवं दीक्षा तथा प्रतिफल का तात्त्विक निरूपण है।

अध्याय छः में गायत्री महिमा ज्ञापित है। भगवती गायत्री अनन्त महासागर हैं। उनकी महिमा अनन्त है। वेद–उपनिषद्, पुराण, शास्त्र उनकी महिमा का गान करते हैं, जिनके आधार पर गायत्री महिमा का गीत गाने का मैंने भी प्रयास किया है।

अध्याय सात में गायत्री साधना के सोपान एवं पंचकोश–शुद्धि का विवेचनात्मक वर्णन किया गया है। स्वस्थ शरीर एवं एकाग्र–चित्त से ही साधना सम्भव है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम और योगाभ्यास द्वारा साधना को सफल बनाने हेतु मार्ग दर्शन किया है। योगाभ्यास का सहारा लेकर आराध्या गायत्री की कृपा प्राप्त की जा सकती है। अतः आसन, प्राण और प्राणायाम विधि, षड्चक्र, मातृका, मुद्रा सहित विविध सम्बन्धित विषयों पर प्रकाश डाला गया है। आत्मा पंच आवरणों से आच्छादित है, जिन्हें पंचकोश कहते हैं। इन पाँचों आवरणों से आत्मा को मुक्त कर परमात्मा से जोड़ने के लिए अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश के उद्बेधन की प्रक्रिया एवं उनके परिणामों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पुस्तक में विभिन्न अनुभूतियों की चर्चा की गई है, जिनके आधार विविध शास्त्र हैं। इसलिए किसी विज्ञगुरु के मार्गदर्शन में ही साधना करना श्रेयस्कर है।

अष्टम एवं नवम अध्यायों में सकाम-निष्काम साधना, जपविधि, जपमाला, जप के स्थान आदि पर शास्त्र सम्मत विचार प्रस्तुत किया गया है। अनुष्ठान एवं पुरश्चरण से विशेष अभीष्ट की सिद्धि सम्भव है। भौतिक एवं आध्यात्मिक फल की प्राप्ति हेतु विशिष्ट विधि सम्मत क्रिया का अनुपालन आवश्यक है। शुभाशुभ मास, तिथि, लग्न, आसन का वर्णन किया गया है, ताकि साधक निश्चित रूप से सफलता प्राप्त कर सके।

दशम अध्याय में गायत्री गीता समाविष्ट है। व्याहृति सहित गायत्री के पदों के भाव को श्लोकबद्ध किया गया है, जिसे सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय ग्यारह में यज्ञोपवीत संस्कार, यज्ञोपवीत का महत्त्व एवं धारण करने की उपयोगिता का वर्णन किया गया है। यज्ञोपवीत की तीन ग्रंथियाँ गायत्री की तीन व्याहृतियों के प्रतीक हैं। चौथी ग्रंथि प्रणव है। यज्ञोपवीत के 9 तंतु गायत्री के 9 पदों के प्रतीक हैं। गायत्री एवं यज्ञोपवीत का समुचित ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है।

बारहवें अध्याय में कवच के सम्बन्ध में सम्यक् रूप से विचार किया गया है। कवच के द्वारा साधक अपने अंगों को सुरक्षित करता है। 24 अक्षरों की 24 शक्तियाँ, न्यास, कवच, गायत्रीस्तोत्र, शिवगायत्री-कवच का समावेश है।

पुरश्चरण खासकर तांत्रिक साधना में कवच का विशेष महत्त्व है। भगवती गायत्री का ध्यान मंत्र भी दिया गया है। शिवगायत्री-कवच का पाठ विशेष कल्याणप्रद है।

चौबीस अक्षरों के चौबीस देवी-देवताओं की एक साथ या अलग-अलग आराधना से जो फल प्राप्त होते हैं, उनका उल्लेख किया गया है। उनकी अलग-अलग गायत्री है, जिन्हें लेखबद्ध किया गया है।

अध्याय 13 में गायत्री पूजन विधि का सांगोपांग विवरण दिया गया है, ताकि साधक स्वयं विधिवत् महादेवी गायत्री की पूजा कर सके। इस पूजन विधि से अन्य देवी-देवता की भी पूजा की जा सकती है, आवश्यकता है यथा स्थान समुचित शब्द का प्रतिस्थापन।

14वें एवं 15वें अध्यायों में क्रमशः गायत्री सहस्रनाम स्तोत्र और गायत्री नामावली को यथावत् प्रस्तुत किया गया है, ताकि जो साधक भगवती गायत्री का विधिवत् पूजन, अनुष्ठान एवं पुरश्चरण नहीं कर सकते, वे भी उनके नामों का स्मरण कर अभीष्ट फल प्राप्त कर सकें।

पुस्तक प्रणयन में जिन विद्वानों, सुधीजनों, परिजनों, पुरजनों, मित्रजनों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ। अर्धांगिनी श्रीमती सरोज झा के सतत् सहयोग से ही लेखन कार्य भली-भाँति सम्पन्न हो सका है। इसके लिए वे प्रशंसा की पात्र हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. तेज नारायण ओझा, पंडित शशिभूषण त्रिपाठी "ज्योतिषाचार्य", श्री उमाकान्त शुक्ल, डॉ. बलराम दूबे के प्रति विशेष हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करते हुये शुभकामना प्रदान करता हूँ, जिनके निरन्तर प्रयास से यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ है।

मेरा प्रयास कितना सफल है, इसका मूल्यांकन आप सुधीजन पाठक ही करेंगे। अशुद्धियों का होना स्वाभाविक है, इसके लिये क्षमा प्रार्थी हूँ। संशोधन एवं पुस्तक को प्रभावी बनाने के लिये आप का सुझाव सादर प्रार्थनीय है, जिसका समुचित समावेश अगले संस्करण में किया जायेगा।

"शुभंभूयात्"

(विद्यानन्द झा)

अनुक्रम

1. वेदमाता गायत्री का उद्भव एवं विकास	1
2. महाशक्ति गायत्री का स्वरूप	13
3. त्रिपदा गायत्री	31
4. व्याहृतियाँ एवं गायत्री पदों की व्याख्या	43
5. गायत्री के चौबीस अक्षरों के विवेचन	55
6. गायत्री महिमा	113
7. गायत्री साधना के सोपान-प्राणायाम, पंचकोश शुद्धि	119
8. गायत्री साधना	175
9. अनुष्ठान एवं पुरश्चरण	191
10. गायत्री गीता	203
11. गायत्री एवं यज्ञोपवीत संस्कार	231
12. गायत्री कवच	239
13. गायत्री पूजन विधि	259
14. गायत्री-सहस्त्रनाम स्तोत्र	303
15. गायत्री सहस्त्रनामावली	317

अध्याय
१

वेदमाता गायत्री का उद्भव एवं विकास

वेदमाता गायत्री का उद्भव एवं विकास

श्री गणेशाय नमः

आदिशक्तिं नमस्कृत्य सर्वकल्याण-हेतवे।
गायत्रीतत्त्वप्रकाशः विद्यानन्देन लिख्यते।।

नामकरण

सर्वकल्याणकारिणी, महिमामयी भगवती गायत्री सर्वव्यापिनी आदिशक्ति हैं। यही वेदमाता कहलाती हैं। भगवती गायत्री नित्य सिद्ध परमेश्वरी हैं। ऐसी मान्यता है कि सविता (सूर्य) के मुख से इनका प्रादुर्भाव हुआ। भगवान सूर्य ने इन्हें ब्रह्मा जी को अर्पण कर दिया। अतः इनकी संज्ञा ब्रह्माणी हो गई। इन्होंने ही गयो (प्राणों) का त्राण किया था, इसलिये गायत्री के नाम से प्रसिद्ध हैं।

गायत्री के नामकरण के सम्बन्ध में महर्षि व्यास का वचन है कि-

प्रति ग्रहान्न दोषाच्च पातकादुपपातकात्।
गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायंतं त्रायते यतः।।

उपासक को पातक से तथा उपपातक के दोष से रक्षा करती हैं, इसलिये इनका नाम गायत्री है। ये सावित्री नाम से भी विख्यात हैं। चेतन का द्योतक होने से गायत्री को ब्रह्म सावित्री के नाम से जाना जाता है। गायत्री को जगत् में वाणी स्वरूप सरस्वती के नाम से भी पुकारते हैं।

सवितृ द्योतनात् सैव सावित्री परकीर्तिता।
जगतः प्रसवितृत्वात् वाग्रूपत्वात् च सरस्वती।।

(महर्षि वेदव्यास)

स्वस्वरूप का बोधक, चेतन का द्योतक गायत्री हैं, वही गायत्री ब्रह्मरूप सावित्री के नाम से जानी जाती हैं, अथवा जगत् को उत्पन्न करने वाली शक्ति होने से सावित्री कहा जाता है। वाणी रूप अर्थात् शब्दात्मक होने से सरस्वती कहा जाता है। यह भी लिख देना प्रासंगिक है कि मानव मस्तिष्क में ''ब्रह्मरंध्र'' एवं सरस्वती हैं, जिसका विवरण यथा स्थान दिया गया है।

शास्त्र का वचन है कि –

सवितृप्रंकाशकरणात् सावित्रीत्याभिधा भवेत्।
जगतः प्रसवित्रीति हेतुनानेन वापि च।।

सवितृ नाम है सूर्य का, जो शक्ति सूर्य को प्रकाशित करती है, उसे सावित्री कहा जाता है। गायत्री रूप ब्रह्म चेतन के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशमान होता है। सूर्यादि का प्रकाशक भी गायत्री रूप ब्रह्म है, इसलिए गायत्री को सावित्री नाम दिया गया है।

उद्भव

ऐसी मान्यता है कि गायत्री माता का उद्भव ब्रह्मा जी से हुआ है। सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा जी से है। ब्रह्म शक्ति से ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न हुआ। ज्ञान के चार भेद हैं– ऋक्, यजुः साम और अथर्व।

गायत्री नामकरण के संदर्भ में भारद्वाज मुनि का कथन है– गायत्री प्राण की रक्षा करती है–

प्राणा गया इति प्रोक्तास्त्रायते तानथापि वा।
गायत्रीति भवेन्नाम केवलं त्रायतीति वा।।

(गा.अ.सं.)

प्राण जिह्वादि में व्याप्त रहने के कारण गायत्री को सरस्वती की संज्ञा महर्षियों ने दी है।

व्यानशे प्राणजिह्वासु सदा, वाग्रसवर्त्तनात्।
सरस्वतीति नाम्ना च, समाख्याता महर्षिभिः।।

(गा.अ.सं.)

गायत्री की उपासना प्रातः, मध्याह्न एवं संध्याकाल में की जाती है। इन्हें त्रैकालिक सांध्योपासना कहा जाता है।

प्रातः, मध्याह्न एवं संध्या तीनों काल में तीनों चरण के अनुरूप क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में गायत्री उपासना का विधान है।

या गायत्री त्रिचरणा, सा त्रिमूर्तिं स्वरूपिणी उपास्यान्तरं विप्रैस्त्रिधासु त्रिमूर्तिषु।

महर्षि ने उपासना के विधान को सरल बना दिया है- गायत्री मंत्र के दस बार जप करने से इस जन्म का पाप एवं सौ बार जप करने पर पूर्व जन्म के पाप का नाश हो जाता है।

नाशयेत् जन्मजनितं पापं दशजपात् मनोः।
पुरा कृतं शतजपाद् गायत्र्या द्विजन्मनः।।

पाप के नाश के लिये गायत्री सुगम साधन है, श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक गायत्री जप करना चाहिए।

कृतयुगेऽपि सहस्रेण जपेत्तु सद्भक्तया।
जपतस्तस्माद् गायत्रीं सर्वदा जपेत्।। (गा.अर्थ.सं.)

जप शब्द की व्युत्पत्ति

जप में दो अक्षर है। अग्निपुराण के अनुसार जकार वर्ण जन्म बन्धन का नाश करता है। अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल जाती है। प-पकार वर्ण पाप का नाश करता है, इसलिये अश्वमेधादि सभी यज्ञों से जप यज्ञ को श्रेष्ठ माना गया है।

वेद-ज्ञान-गायत्री

आत्मज्ञान, आत्मशक्ति, दिव्यत्व, धर्म, तप, उपकार आदि ईश्वरीय दर्शन ऋक्, पुरुषार्थ, पराक्रम, यश, प्रतिष्ठा आदि यजुः, कला, साहित्य, भोग, मनोरंजन आदि साम, धन, वैभव, ऐश्वर्य, शास्त्र, सुख साधन आदि अथर्व के अन्तर्गत आते हैं। इन चारों विभागों से

सम्बन्धित "चारों प्रकार के ज्ञान उस चैतन्य शक्ति के ही स्फुरण हैं, जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने उत्पन्न किये थे" एवं जिसे गायत्री की संज्ञा से शास्त्रकारों ने सम्बोधित किया है। मंत्रों का स्रष्टा ब्रह्मा जी को माना गया है। सर्वप्रथम ब्रह्मा जी के कण्ठ से जो मंत्र स्वतः निष्क्रमित हुआ वह मंत्र गायत्री है। आद्याशक्ति गायत्री का मंत्र गायत्री मंत्र है जो आदिमंत्र है।

सर्वप्रथम ब्रह्मा जी की इच्छा मात्र से जो शक्ति उत्पन्न हुई वही आदिशक्ति महादेवी गायत्री हैं एवं शब्दरूप गायत्री मंत्र है। गायत्री वेदजननी हैं।

गायत्री वेदजननी, गायत्री लोकपावनी।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।। (कूर्म पुराण)

वेद माता गायत्री पाप नाशिनी हैं। गायत्री से बढ़कर तीनों लोकों को पवित्र करने वाली कोई नहीं है। यह शास्त्र वचन है-

ओंकार पूर्विकास्तिस्रो गायत्रीं यश्च विंदति।
चरितब्रह्मचर्य्यश्च सर्वैं श्रोत्रिय उच्यते।।

ओंकार सहित तीनों महाव्याहृतियों और गायत्री को जो जानता है वही ज्ञानी पुरुष ब्रह्मचारी है।

गायत्री चेतन का द्योतक है। योगिराज याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि

तपसः सुसमिद्धस्य आदि सर्गात् स्वयं भुवः।
ओंकार पूर्वा गायत्री निर्जगाम ततो मुखात्।। (अर्थ सं.)

उत्पत्ति से पूर्व तप करते समय अपने तपोबल से गायत्री को स्वयंभू ब्रह्मा ने अपने मुख से उत्पन्न किया।

कूर्मपुराण के अनुसार गायत्री की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई।

पुरा कल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवः स्वः सनातनाः।
महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वासुर निवर्हणाः।।

व्याहृति का उद्भव

सनातन अर्थात् अनादि "भूर्भुवः स्वः" व्याहृतियाँ हैं, जो ब्रह्मा के मुख से प्रथमोत्पन्न होने से महाव्याहृतियाँ कही जाती हैं। गायत्री को ब्रह्माजी के मुख से उत्पन्न होने का प्रतिपादन किया गया है-

ऊँकार पूर्वकस्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदां चैव गायत्रीं विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्।।

नाशरहित तथा ऊँकार पूर्वक तीनों महाव्याहृतियों और गायत्री को ब्रह्मा का मुख जानना चाहिये।

ओंकारस्तत्पदं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षयम्।
एष मंत्रो महायोगः सारात् सार उदाहृतः।। (कूर्मपुराण)

तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्य गतनाश रहित तत् पद का लक्ष्य ऊँकार स्वरूप जो ब्रह्म है वह सावित्री नाम गायत्री को ही जानना चाहिये। कहीं-कहीं सावित्री और गायत्री के पृथक-पृथक स्वरूपों का भी वर्णन मिलता है। किन्तु उपनिषदों में गायत्री और सावित्री की अभिन्नता का वर्णन है-

"गायत्रीएव सावित्री"

पुराणों के प्रणेता महर्षि वेदव्यास का मत है कि -

गायत्री नाम पूर्वाह्णे, सावित्री मध्यमे दिने।
सरस्वती च सायाह्नं सैव सन्ध्या त्रिषु स्मृता।। (गा.अर्थ सं.)

दिन के पूवार्ध में गायत्री नाम है तथा मध्य काल में सावित्री एवं सायं काल में सरस्वती। इस प्रकार एक ही गायत्री तीन काल में तीन उपाधियों से जानी जाती हैं और तदनुसार सन्ध्योपासना की जाती है।

"ज्ञान के चार भेद हैं।" चारो प्रकार के ज्ञान उस चैतन्य शक्ति के ही स्फुरण हैं, जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने उत्पन्न की थी और जिसे शास्त्रकारों ने गायत्री की संज्ञा से सम्बोधित किया है।"

चैतन्य शक्ति के स्फुरण से उत्पन्न चारों प्रकार के ज्ञान चार विभाग के रूप में चार वेद हैं-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

इनमें से ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद की आधारशिला गायत्री मंत्र है। गायत्री महामंत्र है। गायत्री आदि मंत्र होने के कारण मंत्रो की अधिष्ठात्री है। गायत्री में तीन चरण हैं-

गायत्री के चरण

प्रथम चरण में - तत्सवितुर्वरेण्यम्,
द्वितीय चरण में - भर्गो देवस्य धीमहि,
तृतीय चरण में - धियो योनः प्रचोदयात्।

यजुर्वेद के अनुसार व्याहृतियों के साथ गायत्री के चार चरण हैं। इसलिए चारों वेदों के आधार के रूप में गायत्री के चार चरण की भी मान्यता है। भूः भुवः स्वः को भी एक चरण के रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रत्येक चरण की वृहद् व्याख्या से एक-एक वेद की रचना हुई। क्रमशः ज्ञान सागर का विस्तार हुआ है। ऋषि-मुनियों ने उपनिषदों, दर्शनों, पुराणों एवं शास्त्रों की रचना की, जिससे ज्ञान की अविरल धारा प्रवाहमान हुई।

"यह प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि रामायण की रचना का मूल आधार गायत्री मंत्र है। गायत्री मंत्र की व्याख्या के रूप में इस महान् ग्रन्थ की रचना हुई है।" इसे स्पष्ट करते हुये आचार्य श्रीराम शर्मा गायत्री महाविज्ञान में लिखते हैं कि वाल्मीकि रामायण में 24 हजार श्लोक हैं। एक-एक अक्षर की व्याख्या स्वरूप एक-एक हजार श्लोक रचे गये हैं। एक-एक हजार श्लोक के ऊपर गायत्री के एक-एक अक्षर का सम्पुट दिया गया है। गायत्री मंत्र में 24 अक्षर हैं। यद्यपि कालक्रम में श्लोक संख्या का क्रम बिगड़ गया है, तथापि गायत्री के चौबीस अक्षरों के आरम्भ वाले 24 श्लोकों को गायत्री रामायण कहा जाता है।

गायत्री रामायण में "धर्म, नीति, समाज, स्वास्थ्य, अध्यात्म

आदि के रहस्यों का उद्घाटन किया गया है।'' गायत्री रामायण के मनन चिन्तन से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

इसलिये गायत्री आदिशक्ति के रूप में पूजित ही नहीं है, बल्कि बीजमंत्र है, जो प्रस्फुटित होकर कल्पवृक्ष के रूप में सृष्टि में विद्यमान हैं तथा गायत्री रूपी कल्पवृक्ष की शाखाएँ एवं उपशाखाएँ सर्वत्र फैली हुई हैं।

सृष्टि के तत्त्व

सृष्टि के चौबीस तत्त्व हैं। सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिलमुनि ने यह प्रतिपादित किया है कि सृष्टि में परम सत्ताएँ दो हैं- प्रकृति और पुरुष। महामुनि कपिल ने प्रकृति के चौबीस तत्त्वों को सर्वप्रथम उद्भासित किया है। पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश पंचमहाभूत हैं। इनसे ही जीवों का शरीर निर्मित है। चौबीस तत्त्वों को एक साथ क्रमबद्ध करने पर सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्ति का उद्भव हुआ जो गायत्री रूप में व्याप्त है।

''गायत्री के चौबीस अक्षर वस्तुतः शक्तिबीज हैं। शास्त्र में कहा गया है कि गायत्री के चौबीस अक्षर चौबीस मातृकाओं की महाशक्तियों के प्रतीक हैं। उनका पारस्परिक गुंथन ऐसे वैज्ञानिक क्रम से हुआ है कि इस महामंत्र का उच्चारण करने मात्र से शरीर के विभिन्न भागों में अवस्थित चौबीस अति महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ जागृत होती हैं।''

चौबीस तत्त्वों को अक्षर का रूप देकर मंत्र रूप में मानव जाति को महाशक्ति उपलब्ध कराई गई है। चौबीस तत्त्व अर्थात् चौबीस सूक्ष्म शक्तियों के सम्मिलन से अद्भुत शक्तिशाली धारा उत्पन्न हुई।

सांख्यदर्शन विकासवाद के सिद्धान्त को मानता है। चौबीस तत्त्वों के सम्मिश्रण हो जाने से एक विद्युत युक्त सूक्ष्म सरिता अन्तरिक्ष में प्रवाहमान हुई और वही प्रवाहमान अध्यात्म गंगा गायत्री है। गंगा नदी की तरह गायत्री शक्ति सृष्टि के आरम्भ से ही शारीरिक एवं मानसिक आत्मबल प्रदान करने के साथ ही आन्तरिक तथा बाह्यबल एवं ऐश्वर्य उपलब्ध कराती है।

अतः ब्रह्मा ने भूलोकवासियों को स्वर्ग लोक के कल्पवृक्ष की तरह इस लोक में भी गायत्री रूपी कल्पवृक्ष दिया है, जो सुख-समृद्धि एवं मोक्षप्रदायक है।

गायत्री के पाद

गायत्री में चौबीस अक्षर, तीन पाद, छः कुक्ष और पाँच शीर्ष हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीन वेंद गायत्री के तीन पाद हैं। आठ-आठ अक्षरों के एक-एक पाद हैं। गायत्री के तीन पाद रहने के कारण इन्हें गायत्री त्रिपदा कहा गया है। अथर्ववेद उक्त तीनों वेदों की व्याख्या है। छः कुक्षियाँ, छः दिशाएँ है। पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे। इन सभी दिशाओं में गायत्री शक्ति व्याप्त है। वेद के षष्ट अंगों को शीर्ष कहा गया है।

गायत्री देवी सर्वभूतों में स्थित हैं। शास्त्र वचन है कि-

सर्वात्मना हि या देवी सर्वभूतेषु संस्थिता।
गायत्री मोक्ष हेतुर्वै मोक्ष स्थानकलक्षणम्।। (गा.अर्थ.सं)

वेदमाता गायत्री की उपासना द्वारा साधकों को अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। इसमें कोई संदेह करने की गुंजाइश नहीं है कि गायत्री की उपासना से सांसारिक और आत्मिक लाभ प्राप्त होते हैं। उपासकों को दैवीय शक्ति के रूप में सद्‌बुद्धि एवं सद्‌बुद्धि से आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों तरह की उपलब्धि निश्चित है। सद्ज्ञान का होना ही सुख है और सद्ज्ञान का अभाव ही दुःख का कारण है। पृथ्वी पर सुख के सभी साधन उपलब्ध हैं। इसकी प्राप्ति हेतु सद्ज्ञान एवं विवेक होना आवश्यक है, जो गायत्री की उपासना से सम्भव है। सद्ज्ञान ही गायत्री है। सद्ज्ञान की उपासना गायत्री साधना है।

गायत्री के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में पौराणिक आख्यानों का विवेचन किया जा चुका है। यह सर्वमान्य है कि अव्यय, निर्विकार, परम

आत्मशक्ति, सर्वव्यापी परमेश्वर की सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। श्रुति शास्त्र का कहना है कि सृष्टि की रचना के समय परमात्मा को ऐसी इच्छा जागृत हुई कि -एकोऽहं बहुस्याम्।

त्रिगुण एवं पंचतन्मात्रा

परमेश्वर की यही इच्छा स्फुरण के रूप में स्फुटित होकर नाभि से कमल के रूप में उत्पन्न हुआ। प्रस्फुटित कमल पर ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए, जो इस सृष्टि के स्रष्टा हैं। सृष्टि की रचना में ब्रह्मा जी की दो शक्तियाँ-संकल्प और परमाणु शक्ति क्रियाशील थी। संकल्प शक्ति से चैतन्य का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्मा जी ने ज्ञान के संकल्प का आविष्कार किया। परमाणुमय पंचभौतिक सृष्टि की भी रचना हुई। इसलिए संकल्प शक्ति एवं परमाणु शक्ति दोनों सृष्टि के कारण हैं। ब्रह्म शक्ति को स्वयं तीन भागों में विभाजित करना पड़ा ताकि अनेक पदार्थों तथा प्राणियों की रचना सम्भव हो सके और विविध गुण एवं कर्म तथा स्वभाव वाले जड़-चेतन पदार्थ बन सके। सत्, रज और तम त्रिगुण की भी रचना हुई। सत् का अर्थ है दिव्य तत्त्व, तम से तात्पर्य है निर्जीव पदार्थों में परमाणुओं का अस्तित्त्व और रज से जड़ पदार्थो का बोध होता है। दिव्य तत्त्वों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई चेतन सत्, रज, तम ही स्थूल सृष्टि के मूल कारण हैं। पाँच स्थूल तत्त्व पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश पंच भूत उत्पन्न हुए। इन पंचभूतों के परमाणुओं और पंच तन्मात्राओं- शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श के द्वारा सृष्टि गतिशील है। प्रकृति के सूक्ष्म एवं स्थूल दो रूप हैं। शक्ति प्रवाह और प्राण संचार के रूप में सूक्ष्म प्रकृति कार्यरत है। प्रकृति त्रिगुणशील है अर्थात् वे सत्, रज, तम मयी हैं। दृश्य पदार्थो का निर्माण परमाणुमयी स्थूल प्रकृति से होता है। इनकी गतिविधियों के कारण पंचतत्त्व हैं।

सरस्वती-लक्ष्मी-काली

परब्रह्म की ब्रह्म शक्ति ब्रह्माजी हैं। शास्त्रों ने ब्रह्माजी की मानस-उत्पन्न शक्ति को आदिशक्ति का नाम दिया है। प्रश्न उठता है कि वह आदिशक्ति कौन है? वह आदिशक्ति गायत्री की संज्ञा से अभिहित है। ब्रह्माजी ने स्वयं को तीन विभागों में व्यक्त किया। सत् जिसे ह्रीं या सरस्वती कहते हैं, रज जिसे श्रीं या लक्ष्मी कहते हैं तथा तम जिसे क्लीं या काली कहते हैं। सत् और तम के योग से रज उत्पन्न हुआ। अतः प्रकृति को त्रिधा प्रकृति कहते हैं।

सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा आद्याशक्ति गायत्री से उत्पन्न होकर शक्ति निर्झरणी के रूप में प्रकृति में प्रवाहमान हैं।

ध्वनि एवं प्रवाह

सूक्ष्म प्रकृति की शक्ति धाराओं में 3 प्रकार की ध्वनियाँ उठती हैं, जैसे नदियों के प्रवाह में जल की लहरों पर वायु का आघात होने के कारण कल-कल ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

सत् प्रवाह में 'ह्रीं', रज प्रवाह में 'श्रीं' व तम प्रवाह में 'क्लीं' शब्द से मिलती-जुलती ध्वनि उत्पन्न होती है। ओंकार भी सूक्ष्म ब्रह्म से उत्पन्न ध्वनि प्रवाह है। नाद साधक इन ध्वनियों को अपने योगबल से समझ लेते हैं और उनके सहारे ब्रह्म तक पहुँच जाते हैं। यह गायत्री की महिमा है।

प्राचीन काल में ऋषि मुनियों ने वायुमंडल में प्रवाहमान सूक्ष्म तत्त्वों को दिव्यदृष्टि से पहचान लिया तथा साधना के द्वारा आदिशक्ति गायत्री की सूक्ष्म शक्ति प्रवाहों पर अपना अधिकार स्थापित करने में समर्थ हो गए। फलस्वरूप वे मनोवांछित फल प्राप्त कर लेते थे। यहाँ तक कि अमरता को भी प्राप्त कर लेते थे। सभी प्रकार की दिव्य शक्तियों का आविर्भाव गायत्री साधना के द्वारा सुलभ है।

योग साधक शरीर में प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों, ग्रंथियों, चक्रों,

मातृकाओं, ज्योतियों एवं भ्रमणों को जागृत करते हैं। शक्ति के जागरण के फलस्वरूप जो शक्ति प्रवाह साधक में उत्पन्न होता है, उसे आदिशक्ति के त्रिविध प्रवाहों में से किसी के साथ सम्बन्ध स्थापित कर पराशक्ति प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। जिस प्रकार रेडियो स्टेशन से सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव हो रहा है, उसी प्रकार शरीर में सुसुप्त केन्द्रों को साधना के द्वारा जगाकर सूक्ष्म प्रकृति के शक्ति प्रवाहों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव है। गायत्री साधना के द्वारा सफल साधक और आदिशक्ति के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जगत के सभी पदार्थ आदिशक्ति के अन्तर्गत विद्यमान हैं, जिससे संबंध स्थापित कर इच्छानुसार उनका उपयोग किया जा सकता है। वैज्ञानिक का भौतिक आविष्कार नाशवान है, किन्तु आदिशक्ति गायत्री साधक बिना किसी यंत्र के अपने शरीर के शक्ति केन्द्रों को जगाकर आदिशक्ति के शक्ति प्रवाहों से सम्बन्ध बनाकर मन, चित्त एवं विचार को शुद्ध कर सकता है, जिससे ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति होती है। यही परमानन्द है, जो शाश्वत् है।

अध्याय
२

महाशक्ति गायत्री का स्वरूप

महाशक्ति गायत्री का स्वरूप

स्वरूप

महामंत्र गायत्री मंत्र शिरोमणि है। गायत्री मंत्र का मूल स्वरूप इस प्रकार है-

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

(वाजसनेयी सं. 3/35)

अर्थात् सृष्टिकर्ता प्रकाशमान परमात्मा के प्रसिद्ध वरणीय तेज का हम ध्यान करते हैं। वे परमात्मा हमारी बुद्धि को सत् की ओर प्रेरित करें।

भगवती गायत्री के स्वरूप के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि भगवती गायत्री की कई रूपों में पूजा की जाती है। गायत्री माता का मन्दिर सर्वत्र है। भिन्न-भिन्न मन्दिरों में भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

ध्यान

माँ गायत्री की उपासना करते समय उनके स्वरूप को मन में स्थिर किया जाता है। वेद, उपनिषद्, पुराणों में ध्यान के स्वरूप का निरूपण हुआ है। वेदोक्त ध्यान इस प्रकार है-

ॐ तेजोऽसि शुक्रमंसि अमृतमसि धामनामासि
प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।
ॐ गायत्री एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत्। (बृहदा. 5/4/7)

हे देवी! तुम तेज हो, तुम शुक्रबल हो, तुम अमृत हो, परमधामनिवासिनी हो, तुम देवप्रिय हो, भयमुक्त हो, तुम देवताओं का यजन स्थान हो, एक पदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी गायत्री तुम दुर्विज्ञेय होने से अप्राप्त व्रत हो। हे तुरीय यथास्वरूप, रजोगुण से रहित एवं परंब्रह्म स्वरूप तुम्हें हम नमस्कार करते हैं।

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्तीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयांकुशकरां शुभ्रं कपालं गुणम्।
शंखं चक्रमयारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।। (गा. अ. सं.)

मुक्तामणि, विद्रुममणि, हेममणि, नीलमणि तथा स्फटिक मणि इन 5 मणियों के समान गायत्री माता हैं। 5 मुख और 3 नेत्र हैं। अनेक रत्नों से सुसज्जित चन्द्रमा, माता के मुकुट में विराजमान हैं। 24 तत्त्वों के वर्ण के समान उनका रूप है। शुभ्र कपाल है, अंकुश, गुण-रस्सी का कोड़ा तथा शंख, चक्र, कमल, हाथों में धारण करनेवाली हैं। वर्णित स्वरूपिणी अभय वर देनेवाली भगवती गायत्री को हम अपने हृदय में ध्यान करते हैं। गायत्री तंत्र में भी गायत्री माता के स्वरूप का निरूपण किया गया है।

चतुर्भुजां शशिकलां जटाजूटसमन्विताम्।
ऋक्सामयजुषां नाथां प्रफुल्लकमलेक्षणाम्।।
पंचाशद्वर्णग्रथितां मालाद्योतितहृत्स्थलाम्।
अनेकरत्ननिर्माणकण्ठदेशविराजिताम्।।
दिव्यगन्धप्रलिप्तांगी शुक्लवस्त्रपरिष्कृताम्।
शुक्लपद्मसमासीनांशुक्लवस्त्रोत्तरीयिणीम्।। *(गा. अ. सं.)*

चार जिनकी भुजाएं हैं, चन्द्रमा के समान जिनका रूप है, जटाओं के जूड़ा से जो युक्त है। ऋक, यजुः और साम वेद स्वरूप, अनाथों के नाथ- रक्षक और प्रफुल्ल कमल के समान नेत्र और 50 रंगों वाली ग्रथित माला तथा अनेक रत्नों का कण्ठाहार, नाना गंधों से

लिप्त अंग, शुक्लवस्त्रों से सुसज्जित एवं शुक्ल कमल के आसन पर आसीन, शुक्लवस्त्र की उत्तरीय धारण किये हुए माता के स्वरूप का मैं ध्यान करता हूँ।

गायत्री कवच के लिए ध्यान

गायत्री कवच के लिए गायत्री के दिव्य स्वरूप का ध्यान किया जाता है-

पंचवक्त्रां दशभुजां सूर्यकोटि समप्रभाम्।
सावित्रीं ब्रह्मवरदां चन्द्रकोटि सुशीतलाम्।।
त्रिनेत्रां सितवक्त्रां च मुक्ताहारविराजिताम्।
वराभयांकुशकशां हेम पात्राक्षमालिकाम्।।
शंखचक्राब्ज युगलं कराभ्यां दधतीं पराम्।
सितपंकज संस्थां च हंसारूढ़ां सुखस्मिताम्।।
ध्यात्वैवं मानसाम्भोजे गायत्री-कवचं पठेत्।

(गा.म. विज्ञान)

वेदमाता गायत्री पाँच मुँह, दस भुजा वाली, करोड़ों सूर्य के समान प्रभावती, सावित्री, ब्रह्मवरदा, करोड़ों चन्द्र के समान शीतल, तीन नेत्रों वाली, शीतल वाणी वाली, मोतियों का हार धारण करने वाली, वर, अभय, अंकुश, हेमपात्र, अक्षमाला, शंख, चक्र हाथों में धारण करनेवाली, श्वेत कमल पर स्थित, हंसारूढ़, मन्द-मन्द मुस्कराती हुई गायत्री का हृदय-कमल पर ध्यान करके तब गायत्री कवच का पाठ करना चाहिए।

शारदा तिलक के अनुसार ध्यान

महादेवी गायत्री के उपासक इच्छित मूर्ति को ध्यान में स्थापित कर ध्यान करते हैं। यद्यपि माँ गायत्री के अनेक रूप हैं, परन्तु शास्त्रकार शारदा तिलक के अनुसार गायत्री का मुख्य ध्यान इस प्रकार है-''भगवती गायत्री के पाँच मुख हैं जिन पर मुक्ता, वैदूर्य,

हेम, नीलमणि तथा धवल वर्ण की आभा सुशोभित है। त्रिनेत्रों वाली ये देवी चन्द्रमा से युक्त रत्नों का मुकुट धारण करती हैं तथा आत्म तत्त्व की प्रकाशिका हैं। ये कमल के आसन पर आसीन होकर रत्नों के आभूषण धारण करती हैं। इनके दस हाथों में क्रमशः-शंख, चक्र, कमलयुग्म, वरद तथा अभयमुद्रा, कोड़ा, अंकुश, शुभ्र कपाल और रुद्राक्ष की माला सुशोभित है।''

''मानव मात्र के लिए सभी उपासना पद्धतियों में गायत्री उपासना सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान- प्रज्ञान एवं सद्बुद्धि-सद्विचार की अधिष्ठात्री देवी गायत्री हैं। इसलिए देवी को अंतःकरण में स्थापित कर आराधना करना मनुष्य मात्र के लिये कल्याणप्रद है। परमपद प्राप्त करने का यह सुगम मार्ग है।''

शास्त्रीय वचन है कि-

गायत्र्युपासनाकरणादात्मशक्तिविवर्धते।
प्राप्यते क्रमशोऽजस्य सामीप्यं परमात्मनः।।

जप एवं वर्ण

गायत्री की उपासना करने से आत्मशक्ति में वृद्धि होती है और व्यक्ति अजन्मा परमात्मा के सामीप्य को प्राप्त कर लेता है। ''द्विजो भवति निर्भयः'' कहा गया है। द्विज से तात्पर्य है कि गायत्री उपासना से द्विजत्व प्राप्त कर लेना। व्रतशील जीवन क्रम ही द्विजत्व है, जिसको जाति-वंश से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि विशुद्ध आचार-विचार से सम्बन्ध हैं।

महर्षि वेदव्यास का वचन है कि -

चतुर्णामपि वर्णानाम् आश्रमस्य विशेषतः।
करोति सततं शान्तिः सावित्रीं उत्तमां पठेत्।।

चारों वर्ण और चारों आश्रमों में रहने वाले कोई भी साधक जो इस उत्तम गायत्री मंत्र का जप करते हैं, वे परम शान्ति प्राप्त करते हैं।

''गायत्री तु महेशानि परब्रह्मात्मिका मता''।

गायत्री ही परब्रह्म की ईश्वरीय शक्ति हैं। सभी मंत्रों एवं विद्याओं में शिरोमणि है।

"गायत्री कल्प" का कथन है-

त्रिकाल गायत्री महामंत्र के जप से व्यक्ति जल में रहकर भी उससे पद्मपत्र की भाँति पाप से कभी लिप्त नहीं होता है।

देवी भागवत में निर्वाण का साधन बताया है-

परब्रह्म स्वरूपा च निर्वाण पददायिनी।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृ देवता।। (देवी.भा.)

गायत्री परब्रह्म स्वरूप हैं। निर्वाण प्रदान करने वाली तथा ब्रह्म तेजयुक्त हैं। ब्रह्म की शक्ति ही उनका अधिष्ठातृ देवता है।

जप से पाप मुक्ति

गायत्री देवी सभी की रक्षा करती हैं। महर्षि व्यास का वचन है-

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीयं ततः स्मृता।

पापों से मुक्ति का उपाय गायत्री की उपासना है। योगिराज याज्ञवल्क्य कहते हैं-

गायत्र्याः पदमर्द्धं च ऋचोर्द्धमृच एव वा।
ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च।
गुरुदाराभिगमनं जप्येनैव पुनाति सा।। (गा. अ. सं.)

भाव यह है कि गायत्री का एक पद, आधा पद, एक ऋचा अथवा आधी ऋचा का जप करने वाले को देवी अनेक प्रकार के पापों से मुक्त करती हैं।

शास्त्र वचन है- "हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नारकार्णवे"।

अर्थात् नरक-सागर में गिरे हुए पापी पुरुषों को हाथ पकड़कर निकाल देने वाली गायत्री देवी ही हैं।

गायत्री की उपासना से सप्तभुवनों की उपासना हो जाती है। इसके ज्ञान से समस्त वाङ्मय का ज्ञान हो जाता है।

एतया जातया सर्वं वांगमयं भवेत्।
उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम्।।

यद्यपि परब्रह्म की उपासना के उपाय बहुत हैं तथापि प्रधान उपाय गायत्री की उपासना ही है। गायत्री का अर्थ परब्रह्म है। इसलिए इनकी उपासना श्रेष्ठ है।

छान्दोग्योपनिषद् परिशिष्ट कहता है कि गायत्री उपासना के प्रारम्भ में तथा अन्त में प्रणव का उच्चारण अवश्य करना चाहिए। महर्षि वेदव्यास का वचन है कि–

प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्द एव च।
देवोऽग्निः सर्वकार्येषु विनियोगः प्रकीर्तितः।।

अर्थात् प्रणव ऋषि ब्रह्मा हैं और गायत्री छन्द है, देवता अग्नि हैं, सभी कार्यो में जप हेतु विनियोग है।

ओंकार

शास्त्र कहता है कि मंत्र के शुरू में ओ३म् का उच्चारण अवश्य करना चाहिए।

सर्वमन्त्रप्रयोगेषु ओमित्यादौ प्रयुज्यते।
तेन संपरिपूर्णानि यथोक्तानि भवन्ति हि।।

ओंकार लगाने पर ही मंत्र सम्यक् रूप से पूर्ण होता है और अभीष्ट फल देता है। मंत्र का यदि अशुद्ध उच्चारण हो जाता है तो भी ओ३म् से यदि मंत्रोच्चार करते हैं तो ओ३म् युक्त अशुद्ध मंत्र भी शुद्ध मंत्र का फल देने वाला हो जाता है।

"तत्र सत्स्वपि परब्रह्मण उपासना बहुउपायेषु गायत्री एव उपासनायाः प्रधानोपायः"।

प्राग्दर्शितेषु शास्त्रेषु प्रसिद्धम् विशेषतः गायत्र्यर्थः परब्रह्म, एतदर्थमपि अनेन मंत्रेणैव उपासना श्रेयस्करी इति ज्ञायते।

गायत्री त्रिधाशक्ति हैं और ब्रह्मा की सृष्टि का प्रथम मंत्र गायत्री

मंत्र है। शास्त्रों में कहा गया है कि गायत्री संसार के प्रत्येक पदार्थ का मूल कारण है, क्योंकि ब्रह्म के स्फुरण से उत्पन्न गायत्री आदि शक्ति हैं। गायत्री के द्वारा जड़-चेतन सृष्टि में गति, शक्ति, प्रेरणा, प्रगति और परिणति होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं- बृहत्साम तथा साम्नां गायत्रीछन्दसामहम् (गीता अ. 10/35)

छन्दों में मैं गायत्री छन्द हूँ।

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं-

भूर्भुवः स्वरिति चैव चतुर्विंशक्षरा तथा।
गायत्री चतुरोवेदा ओंकारः सर्वमेव तु।।

भूर्भुवः स्वः तीन महाव्याहृतियाँ 24 अक्षर वाली गायत्री तथा चारो वेद निःसंदेह ओंकार (ब्रह्म) स्वरूप हैं।

कूर्म पुराण का कथन है कि - ओंकार ओंकारस्तुपरं ब्रह्म सावित्रीस्यातदक्षरम्।

गायत्री तथा ब्रह्म

महर्षि वेदव्यास का वचन है कि गायत्री और ब्रह्म भिन्न नहीं हैं, ब्रह्मस्वरूपी गायत्री की उपासना करना चाहिये।

नाभिन्नां प्रतिपद्येत गायत्री ब्रह्मणा सह।
सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित्।।

शंकरभाष्य की मान्यता है कि गायत्री प्रत्यक्ष अद्वैत ब्रह्म की बोधिका है।

ब्रह्म शक्ति से उद्भूत जगतव्यापिनी गायत्री शक्ति से सम्बन्ध जोड़कर सूक्ष्म प्रकृति की प्रत्येक गतिविधि की जानकारी उपासक प्राप्त कर सकते हैं।

उपासक को केवल यह जान लेना आवश्यक है कि किस विधि से अभीष्ट शक्ति को आवश्यकतानुसार प्रेरित किया जा सकता है।

उपासना से सद्ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर गायत्री माता की उपासना से प्राप्त अनुकम्पा मनुष्य को इतना सक्षम बना देती है कि सांसारिक, मानसिक आत्मिक क्षेत्र में इच्छित फल प्राप्त कर सकते हैं। इस निमित्त गायत्री की उपासना हेतु गायत्री मंत्र का जप करने का विधान है।

शब्द उच्चारण

गायत्री नौ शब्दों की शृंखला है। शब्दों के ध्वनि प्रवाह में बहुत शक्ति है। शब्द को ब्रह्म कहा गया है। जिह्वा से जो शब्द निकलते हैं उनका उच्चारण कंठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दन्त आदि मुख के विभिन्न अवयवों द्वारा होता है। शब्द उच्चारण के द्वारा मुख के जिन भागों से ध्वनि निःसृत होती है, उनके नाड़ीतन्तु शरीर के विभिन्न भागों तक फैलते हैं। फैलाव क्षेत्र में स्थित ग्रंथियों को स्पर्श करते हैं, जिससे उच्चारण का दबाव ऐसी ग्रंथियों पर अनायास पड़ता है।

मनुष्य के शरीर में दृश्य-अदृश्य बहुत सी ग्रंथियाँ हैं। ऐसी ग्रंथियों में शक्ति का निवास है। शब्दों के उच्चारण से प्रभावित ग्रंथियों में समाविष्ट शक्ति जागृत हो जाती है। ब्रह्म कंठ से स्वतः गायत्री मंत्र निःसृत हुआ, इसलिए मंत्र का गठन वैज्ञानिक दृष्टिकोणयुक्त है।

मंत्र शक्ति

गायत्री मंत्र में अद्भुत शक्ति है, जिसका परिचय प्रत्यक्ष रूप से होता है। वेणुनाद सुनकर सर्प लहराने लगता है। यदि सैनिक कदम मिलाकर किसी पुल पर चलते हैं तो सैनिको के कदमताल की ध्वनि से पुल टूटने की सम्भावना रहती है। इसलिये सैनिकों को कदमताल से पुल पार करने की मनाही रहती है।

तांत्रिक मंत्रोच्चारण के द्वारा बिच्छु आदि के डंको से प्रभावित व्यक्ति को आराम कर देने में सफल हो जाते हैं।

गायत्री मंत्रोच्चारण से अभीष्ट लाभ

मंत्रोच्चारण के क्रम शब्दों से उत्पन्न कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के परमाणुओं को लेकर इथर का परिभ्रमण करते हुए कुछ क्षणों में ही अपने स्थान पर लौट आता है। ऐसी स्थिति में परमाणुओं में विद्यमान विशेष विद्युत शक्ति स्थान विशेष को प्रभावित करती है। गायत्री मंत्रोच्चार के कारण "मुख के जो अंग क्रियाशील होते हैं, उन भागों में नाड़ी तंत्र कुछ विशेष ग्रंथियों को गुदगुदाते हैं।" ऐसी ग्रंथियों में स्फुरण होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध यौगिक-संगीत प्रवाह इथर तत्त्वों में फैलता है और कुछ क्षणों में होने वाली अपनी विश्व परिक्रमा से वापस आते-आते एक स्वजातीय तत्त्वों की सेना साथ ले आता है। यह क्रिया अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती है।

शब्द-संगीत एवं पंच भौतिक प्रवाह

शब्द-संगीत के शक्तिमान कम्पनों का पांचभौतिक प्रवाह और आत्मशक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की भावना, साधना, आराधना के आधार पर उत्पन्न किया गया समन्वित सम्बन्ध शक्ति गायत्री शक्ति को बलवान बना देती है, जो साधकों के लिए वरदान होता है।

जब उपासक श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक आराधना करता है, तो शब्द शक्ति और आत्म सम्बन्ध से युक्त गायत्री अत्यन्त प्रभावशाली होकर साधक को मनोवांछित फल प्रदान कराती है। गायत्री का प्रत्येक अक्षर शरीर में स्थित यौगिक ग्रंथि चक्र संस्थान से सम्बन्धित है। इसका परिचय हो जाने पर उपासक गायत्री की साधना करता है और फल प्राप्त करता है।

अनादि काल से गायत्री की पूजा अर्चना इस पृथ्वी लोक में हो रही है। गायत्री मंत्र का जप अभीष्ट साधना का सुलभ साधन है। जो नियमित रूप से पूजा-पाठ नहीं करते हैं, वे भी स्नान के पश्चात्

गायत्री मंत्र का जप 108 बार करते हैं, कम से कम 11 बार तो करते ही हैं। पूजा-पाठ, यज्ञ आदि के अवसर पर गायत्री मंत्र का जप करना अनिवार्य हैं और गायत्री जप के पश्चात् ही यजमान शुद्ध हो पाता है। किसी कारणवश यदि पूजा करने वाले पूजा के बीच में आसन छोड़कर विराम लेते हैं, तो 11 बार गायत्री जप कर अपने को शुद्ध कर लेते हैं। गायत्री जप आत्मिक कर्म है। यज्ञ या अनुष्ठान के शुभ अवसर पर देवी गायत्री का आह्वान किया जाता है। अन्य देवी-देवताओं की भांति गायत्री का भी मन्दिर प्रायः सभी जगह पाया जाता है। सर्वसाधारण के लिये गायत्री आराध्य देवी हैं। गायत्री ज्ञान-विज्ञान की मूर्ति है। इन्हें परमब्रह्म स्वरूपिणि कहा गया है।

त्रिकाल में गायत्री के तीन रूप

गायत्री की उपासना प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों काल में की जाती है। गायत्री माता का ध्यान काल के अनुसार है। प्रातः काल में ये सूर्यमण्डल के मध्य में विराजमान रहती हैं। उस समय इनका रंग लाल रहता है। दोनों हाथों में ये क्रमशः अक्ष, सूत्र और कमण्डलु धारण करती हैं। इनका वाहन हंस है। इस स्वरूप में ब्रह्म शक्ति गायत्री के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस रूप का वर्णन ऋग्वेद में है।

मध्याह्न काल में इनका युवा स्वरूप है, इनकी चार भुजायें एवं तीन नेत्र हैं। चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करती हैं।

गायत्री का वाहन गरुड़ है। यह वैष्णवी रूप हैं। यजुर्वेद में इस रूप का वर्णन है।

गायत्री के तीन स्वरूप हैं और इनके वाहन भी तीन है।

हंसस्था गरुड़ारूढ़ा तथा वृषभवाहिनी।
ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः ।।

ब्राह्मी हंस पर सवार हैं, सावित्री वृषभ वाहिनी हैं और सरस्वती

गरुड़ पर आसीन हैं। तपस्वी ब्राह्मी रूप का ऋग्वेदाध्यायिनी के रूप में ध्यान करते हैं। गायत्री के तीनों स्वरूपों के निवास स्थान का वर्णन भी देवी भागवत् में हैं।

रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी।
त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी।।

(गायत्री म. विज्ञान)

सावित्री रुद्रलोक में, सरस्वती विष्णुलोक में और ब्राह्मी ब्रह्मलोक में रहती है। तीनों स्वरूप प्राणियों पर कृपा प्रदान करने वाली हैं।

सायंकाल में गायत्री का रूप वृद्धावस्था में होना माना गया है। इस रूप में इनका वाहन वृषभ है। शुक्ल वर्ण है। चारों भुजाओं में क्रमशः त्रिशूल, डमरू, पाश और पात्र हैं। यह रूद्र शक्ति की परिचायिका है, जो सामवेद में वर्णित है।

प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत् पुनः।
वृद्धा सायं भगवती चिन्त्यते मुनिभिः सदा।। (देवी भागवत)

प्रातःकाल बालरूप में हैं, मध्याह्न में युवती और सायंकाल में वृद्धा भगवती का रूप है। उपासक तदनुसार ध्यान करते हैं। देवी भागवत् में गायत्री के तीन स्वरूपों का वर्णन है।

त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती।
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेऽतरा।।

गायत्री को संध्या, सावित्री और सरस्वती की संज्ञा दी गयी है। ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्रा भी कहा गया है। इनके रंग भी तीन प्रकार के हैं रक्त, श्वेत, कृष्ण।

इस संसार में सत्, असत् जो कुछ है वह ब्रह्म स्वरूपा गायत्री ही हैं और गायत्री मंत्र महामंत्र है-

"महामंत्र जितने जगमाही, कोऊ गायत्री सम नाही"

महर्षि वेद व्यास के शब्दों में - 'गायत्री मंत्र से बढ़कर अन्य कोई पवित्र मंत्र पृथ्वी पर नहीं है।'

गायत्री मंत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, कण्व, कपिल, मैत्रायणी, तैतिरीय आदि सभी वैदिक संहिताओं में एक ही रूप में उपलब्ध है।

"गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका"-(शंकर भाष्य) द्वारा यह प्रमाणित हो जाता है कि ब्रह्म ही गायत्री हैं। शास्त्र का वचन है कि-

अथो वदामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम्।
यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानंद लक्षणम्।।

गायत्री त्रिदेव

त्रिदेवमयी (वेदत्रयी) तत्त्व स्वरूपिणी गायत्री को मैं तत्त्वरूपा कहता हूँ, जिससे सच्चिदानंद लक्षण वाला ब्रह्म प्रकाशित होता है। गायत्री वा इदं सर्वम्'- यह समस्त जो कुछ संसार में है, गायत्री स्वरूप है। गायत्री को परमात्मा कहा गया है। "ब्रह्म गायत्रीति ब्रह्म वै गायत्री" अर्थात् ब्रह्म गायत्री है, गायत्री ही ब्रह्म है। सत्पथ ब्राह्मण का वचन हैं।

स्कन्द पुराण (काशी खंड 4/9/58) वृहत् संध्या भाष्य में कहा गया है कि-

गायत्र्येव परोविष्णुर्गायित्र्येव परः शिवः।
गायत्र्येव परोब्रह्मा गायत्र्येव त्रयीमता।।

अर्थात् गायत्री ही दूसरे विष्णु हैं और शंकर जी दूसरे गायत्री ही हैं। ब्रह्माजी भी गायत्री में परायण हैं क्योंकि गायत्री तीनों देवों का स्वरूप है।

"गायत्री पर देवतेति गदिता ब्रह्मैव चिद्रुपिणी"।

गायत्री परमश्रेष्ठ देवता हैं और चित्त रूपी ब्रह्म हैं, ऐसा गायत्री पुरश्चरण में कहा गया है।

छान्दोग्योपनिषद् -3/12/1 कहता है कि- "गायत्री वा इदं सर्वभूतम् यदिदं किंच"- यह विश्व जो कुछ है वह गायत्रीमय है।

महर्षि वेदव्यास का मत है-

नभिन्नां प्रतिपद्येत् गायत्रीं ब्रह्मणा सह।
सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित्।।

गायत्री और ब्रह्म अभिन्न हैं। ब्रह्म स्वरूपिणी गायत्री की उपासना अवश्य करें। देवी भागवत् में कहा गया है कि मंत्रों की अधिष्ठात्री गायत्री हैं।

पर ब्रह्म स्वरूपा च निर्वाणपददायिनी।
ब्रह्म तेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृ देवता।। (दे.भा.)

परब्रह्म स्वरूपा, ब्रह्म तेजोमयी निर्वाण पद प्रदायिनी महादेवी गायत्री मंत्रों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् शंकर भाष्य–3/12/15 में कहा गया है– "गायत्र्याख्यं मुखेनोक्तम्"।

गायत्री स्वरूप एवं गायत्री से प्रकाशित होने वाले ब्रह्म गायत्री के नाम से जाने जाते हैं।

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य लिखते हैं कि–'ब्रह्म ही गायत्री हैं और उसकी उपासना ब्रह्म प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है।'

मानव जीवन के परमसाध्य परमेश्वर की प्राप्ति का सरल मार्ग है– गायत्री उपासना। क्योंकि जो ब्रह्म है वही गायत्री है।

शास्त्र भी कहता है कि– 'गायत्री तु परम तत्त्व, गायत्री परमागतिः।'

श्रृंगी ऋषि का मत है–

सर्वात्मा हि सा देवी सर्वभूतेषु संस्थिता।
गायत्री मोक्ष हेतुश्च मोक्ष स्थानमसंशयम्।।

गायत्री देवी सभी में आत्मा रूप में अवस्थित हैं, जो निःसन्देह मुक्ति स्थल हैं और मोक्ष का मूल कारण है।

गायत्री परमोपयोगी

गुरु वशिष्ठ ने कहा है कि–आत्मलाभ के लिए गायत्री उपासना परमोपयोगी है। उनका वचन है कि जो पवित्रता एवं स्थिरतापूर्वक

गायत्री की उपासना करते हैं, वे आत्मलाभ प्राप्त करते हैं।

वर्तमान युग में भी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक महानुभावों ने गायत्री महात्म्य से सभी को अवगत कराया है। महात्मा गाँधी कहते हैं कि सतत गायत्री मंत्र के जप से रोगियों को आरोग्य लाभ मिलता है और गायत्री जप आत्मा की उन्नति के लिए उपयोगी है।

ब्रह्मज्ञ तारानाथ ने परब्रह्म की उपासना के लिए गायत्री उपासना का निर्देश दिया है।

प्रणवव्याहृतिभ्यांच गायत्र्या त्रितयेन च।
उपास्यं परमं ब्रह्म आत्मा यत्र प्रतिष्ठितः।।

प्रणव, व्याहृति और गायत्री इन तीनों से परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए, उस ब्रह्म में आत्मा अवस्थित है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि गायत्री उपासना ही सर्वश्रेष्ठ साधना है, जिसके द्वारा सर्वसिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

गायत्री उपासना से तीन दिव्य विभूतियाँ अमृत, पारस और कल्पवृक्ष मनुष्य भी प्राप्त कर सकता है। शास्त्रानुसार उपासना से ईश्वर सम्पर्क, ईश्वर सम्पर्क से आत्मबल का सम्वर्धन, आत्मबल के सम्वर्धन से सुव्यवस्थित और परिष्कृत जीवन, परिष्कृत जीवन से प्रखरता, प्रामाणिकता और प्रतिभा की प्राप्ति, प्रखरता से आकर्षण, जन सम्मान और जनसहयोग, जनसहयोग से सफलता, सफलता से प्रसन्नता, भौतिक समृद्धियाँ और आत्मिक विभूतियों की सहज उपलब्धता, यही क्रम है, जिसे अपनाकर साधक सिद्धि प्राप्त कर सकता है। गायत्री उपासना से अनेकानेक भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति के साथ ही जीवन में आई हुई विपत्तियों और बाधाओं का निराकरण भी हो जाता है।

उपासना के वैज्ञानिक एवं भावनात्मक दोनों ही आधार ऐसे हैं, जिनसे व्यक्तित्व का अन्तराल परिष्कृत हो जाता है।

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है। तीन शरीर, तीन लोक, तीन

गुण, तीन देवता, तीन शक्ति, तीन काल के रूप में इस त्रिपदा के शक्ति का विस्तार माना गया है। गायत्री उपासना के तीन फल भी है- अमृत, पारस और कल्पवृक्ष। गायत्री माता से प्रदत्त ये तीन वरदानों के अन्तर्गत समस्त भौतिक सम्पत्तियाँ और आत्मिक विभूतियाँ आ जाती हैं। आयु, प्राण, प्रज्ञा, पशु कीर्ति, द्रव्य और ब्रह्मवर्चस् जो सात प्रतिफल अथर्ववेद में बताये गये हैं, वे सभी अमृत, पारस, कल्पवृक्ष की परिधि में आते हैं। समृद्धियों का सम्वर्धन, अवरोधों का निराकरण हर किसी को अभीष्ट होता है। इन सभी की प्राप्ति अमृत, पारस और कल्पवृक्ष के द्वारा होती है। पृथ्वीवासी स्वर्गलोक की कामना करते हैं। स्वर्गलोक में देवताओं का वास है। उनके सुख-साधनों का स्रोत अमृत, पारस और कल्पवृक्ष हैं। त्रिपदा गायत्री की तात्त्विक उपासना में ये तीनों दिव्य वरदान सन्निहित हैं, जिन्हें उपासना के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अमृत मर्त्यलोक में उपलब्ध नहीं है, उपासना से यह ज्ञान हो जाता है, कि आत्मा शरीर नहीं है। वह शरीर से भिन्न है। त्रिपदा गायत्री की उपासना से आत्मा का उत्थान होता है और आत्मा दिव्य विभूतियों से सुसज्जित होकर दिव्यानुभूति प्राप्त करता है। वही उसके लिये अमृत है। आवश्यकता और आकांक्षा का भाव समाप्त हो जाता है और वह समभाव को प्राप्त करता है। समभाव शक्ति और सन्तोष का प्रतीक है।

पारस उस पत्थर का नाम है, जिसके स्पर्श से लोहा भी स्वर्ण बन जाता है। गायत्री उपासना से मनुष्य पुरुषार्थ प्राप्त करता है, जिससे संकल्प, साहस, उत्साह, उमंग आदि सृजनात्मक अंतःक्षमताओं का अभिवर्धन होता है। उपासना से इन्द्रियाँ संयमित हो जाती हैं तथा लालसा, माया-मोह, लोभ का नाश हो जाता है। पुरुष जब यह स्थिति प्राप्त कर लेता है, तब उसका पुरुषार्थ पारस के रूप में जीवन का कायाकल्प कर देता है। पारस का महत्त्व इसलिए है कि वह लोहे की तुच्छता को सोने की महानता में बदल देता है। आत्मिक पुरुषार्थ

रूपी पारस ठीक वही भूमिका इस जीवन में निभाता है। जिस प्रकार दीपक जलने पर अन्धकार दूर होता है तथा प्रकाश का आगमन होता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ जागृत होने पर सद्विचार प्रबल होकर मनुष्य का काया-कल्प कर देता है, जिससे वह लोहा से सोना हो ज़ाता है।

परिष्कृत व्यक्तित्व को कल्पवृक्ष के समतुल्य कहा गया है। गायत्री की विधिवत् उपासना सभी कल्मष का नाश कर देती है और सद्बुद्धि प्रदान करती है। गायत्री को सद्बुद्धि की देवी कहा गया है। इनकी उपासना से व्यक्ति का व्यक्तित्व परिष्कृत हो जाता है। जिसकी अन्तरात्मा परिष्कृत हो जाती है, वह दिव्य पुरुष बन जाता है। क्षुद्र आकांक्षा, लोलुपता आदि से निवृत्त होकर व्यक्ति त्रिताप से रहित हो, वही शान्ति और शीतलता का अनुभव करता है, जो अनुभूति कल्पवृक्ष से देवताओं को मिलती है। आदिशक्ति गायत्री का वेदमाता, देवमाता और विश्वमाता नाम भी है।

ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप में ये वेदमाता हैं, शरणागत व्यक्ति को देवतुल्य चरित्र का वरदान देती है। इसीलिए इन्हें देवमाता कहा जाता है। विश्व बन्धुत्व का बोध कराने वाले प्राणियों और पदार्थों की जन्मदात्री महामाया पराप्रकृति के रूप में गायत्री विश्वमाता ही है। यह सर्वविदित है, कि गायत्री उपासना से भौतिक एवं आध्यात्मिक परितुष्टि, समग्र बुद्धिमत्ता और पूर्णता की प्राप्ति होती है।

गायत्री से लाभ

गायत्री साधना से मनुष्य निर्मल एवं परिष्कृत हो जाता है। साधन से प्राप्त ज्ञान के प्रकाश में उचित-अनुचित का निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है और साधक यथोचित निर्णय करने के लिये सक्षम हो जाता है। वह दुष्कर्मों से विमुक्त हो जाता है और सत्कर्मों में अग्रसर हो जाता है। साधना का फल हमेशा मीठा होता है।

गायत्री महाशक्ति का आश्रय लेने वाले व्यक्ति के अन्तःकरण में ऐसी प्रबल, प्रचण्ड और प्रखर प्रेरणा शक्ति भर जाती हैं, जिसके फलस्वरूप वह हमेशा के लिये सन्मार्गगामी बन जाता है। गायत्री साधना के परिणामस्वरूप साधक का मन दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है और धर्माचरण की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इसके उदाहरण आदिकवि महर्षि वाल्मीकि हैं, जिन्होंने भगवती गायत्री का आश्रय लेकर कालजयी कृति की रचना की।

बीजोच्चारणतो देव्या विद्या प्रस्फुरिताऽखिला।
बाल्मीकेश्च यथा पूर्वं तथा सद्योऽभवत्कविः।।

गायत्री की महिमा अनन्त है। शास्त्र वचन है कि-

"गायत्र्या सर्वं संसिद्धिर्द्विजानां श्रुति संमता"।

वेद वर्णित सारी सिद्धियाँ गायत्री उपासना से मिल सकती हैं।

गायत्री उपासना के द्वारा मनुष्य में सतोगुण की वृद्धि होती है और तमोगुण का ह्रास होता है। मनुष्य के भटकाव की गति धीमी हो जाती है। कामेन्द्रियों की उत्तेजना शिथिल हो जाती है। कुमार्ग को छोड़कर लोग सन्मार्ग पर चलने लगते हैं। विवेक एवं ज्ञान का विकास होता है, जिसके कारण मानसिक कायाकल्प हो जाता है।

संयमित जीवनचर्या के कारण शारीरिक व्याधियों का स्वतः निराकरण हो जाता है। संयम, नियम, सादगी, त्याग, साहस, दया, प्रेम, उदारता और आस्तिकता आदि सद्गुणों का विकास होता है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास स्वतः सम्भव हो जाता है। व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में सत् तत्त्वों के आविर्भाव एवं विकास हो जाने से मनुष्य का जीवन आनन्दमय हो जाता है। साधक परमानन्द को प्राप्त करता है।

अध्याय ३

त्रिपदा गायत्री

त्रिपदा गायत्री

त्रिपदा की व्याख्या

शास्त्रों में गायत्री को त्रिपदा कहा गया है। त्रिपदा गायत्री के नाम से गायत्री विख्यात हैं। त्रिपदा इसलिए कहा जाता है कि इसमें तीन पाद हैं। 8-8 अक्षरों के तीन चरण, जिस मंत्र में हैं उसे त्रिपदा गायत्री कहते हैं। वेद-वेदान्त, उपनिषद्, पुराण एवं शास्त्रों में गायत्री का बृहत् रूप से उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि-

गायत्रस्य समिधस्तिस्त्र आहस्ततोमन्हामरिरिचे महित्वा (ऋग्वेद)

त्रिपदा गायत्री जीवन की तीन समिधायें हैं, जिनके ज्ञान से यज्ञ पूरा होता है। बाल्यावस्था, यौवनावस्था, वृद्धावस्था तीन जीवन समिधाएँ हैं, जो गायत्री में हैं।

रूद्रयामल तंत्र कहता है कि गायत्री त्रिपदा देवी त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी चतुर्विंशाक्षरा विद्या सा चैवाभिष्टदेवता।

गायत्री तीन चरणवाली विश्व की अधिष्ठात्री और तीन अक्षर (अ उ म) वाली हैं। 24 अक्षरवाली गायत्री अभीष्टफलप्रदा हैं।

सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर शब्द रूप में प्रकट हुए, ब्रह्म की इच्छा लीला करने की हुई। यह इच्छा उनकी पत्नी बन गई। ''प्रकृतिरूपी घड़ियाल पर ब्रह्म की चोट से ओंकार की झंकार हुई यह शब्द ब्रह्म है।''

सृष्टि का आरम्भ काल यही है, ॐ से तीन धाराएँ निकली, जिन्हें त्रिपदा कहते हैं। त्रिपदा गायत्री के तीन चरण, तीन लोक-पृथ्वी, आकाश एवं पाताल बन गये। सत्-चित्त्-आनन्द, सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् एवं सत्-रज-तम की तीन धाराएँ निःसृत हुई। इन तीन धाराओं का तीन देवियों, तीन व्याहृतियों के रूप में विवेचन शास्त्रों में उपलब्ध है।

ओंकाराद् व्याहृतितो गायत्री भवति,
गायत्र्याः सावित्री भवति, सावित्र्याः सरस्वती भवति,
सरस्वत्या वेदा भवन्ति, वेदेभ्यो लोकाः।

व्याहृतियों का विस्तार तीन चरणवाली गायत्री में हुआ है। गायत्री हृदय हुई, गायत्री से सावित्री, सावित्री से सरस्वती, सरस्वती से वेद और वेद से लोक उत्पन्न हुए। ऋतम्भरा प्रज्ञा, आत्मशक्ति का प्रादुर्भाव हुआ।

ब्रह्म तेजस्, सावित्री अर्थात् दूरदर्शी सूक्ष्म अन्वेषिणी, नीर-क्षीर विवेचनी, विवेक बुद्धि। सरस्वती अर्थात् कला, कुशलता, सृजनात्मक शिल्प, गंगा, यमुना, सरस्वती, त्रिलोक, त्रिदेव, त्रियज्ञाग्नियाँ, त्रिगुण आदि।

ओंकार में अ उ म तीन वर्ण हैं- भूः भुवः स्वः तीन व्याहृतियाँ हैं। गायत्री के तीन चरण है, इस प्रकार त्रिधा शक्तियाँ, शक्तियों की समन्वित रूप महाशक्ति को त्रिपदा गायत्री संज्ञा दी गयी है।

गायत्री की उपासना से आत्मबल, बुद्धिबल और समृद्धिबल तीनों की प्राप्ति होती है।

रहस्योपनिषद् में गायत्री

ऋग्वेद में कहा गया है ''यस्योरुषु त्रिषु विक्रमेणध्वधिक्षियन्ति

भुवनानि विश्वा'' इस श्लोक में पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौः को तीन लोक विश्व भुवना कहा गया है। गायत्री के तीन चरणों के विस्तार का उल्लेख रहस्योपनिषद् में है।

देव-अग्नि, वायु, सूर्य
अग्नि-आह्वनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि
वेद-ऋक्, यजु, साम,
लोक-भूः, भुवः, स्वः
काल-प्रातः, मध्याह्न, सायं,
गुण-सत्व, रज, तम,
अवस्था-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति,
आदित्य- वसु, रुद्र, आदित्य,
छन्द-गायत्री, त्रिष्टुप, जगति,
त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश,
शक्ति-इच्छा, ज्ञान, क्रिया,
ब्रह्म-स्वराट्, विराट्, वषट्,

व्याहृति शब्द की व्युत्पत्ति-वि-आहत्रिन् इसका अर्थ है उच्चारण, कथन, वर्णन तथा मंत्र विशेष'' (शब्द कल्पद्रुम भा.)

यजुर्वेद संहिता एवं शास्त्र में व्याहृति रहस्य

यजुर्वेद संहिता में गायत्री के साथ व्याहृतियाँ जुड़ी हुई हैं। अन्य वेदों में मात्र 24 अक्षरों का गायत्री मंत्र ही है। तैतरीय आरण्यक के 7/5/1/3 में कहा गया है, जो व्याहृतियों का रहस्य जानता है, तो देवता उसे बलि का पुण्य-फल प्रदान करते हैं। व्याहृतियों का उल्लेख उपनिषदों में अनेक स्थानों पर हुआ है। तैतरीय उपनिषद् तै0 आ0 के 7/51/1-3 को ज्यों का त्यों उद्धृत कर लिया गया है। छान्दोग्य

उपनिषद् 4/17/3 में तीन व्याहृतियों को तीन वेदों का मूल माना गया है। यह उद्धरण ऐत0ब्राह्मण के 5/32 के समान ही है, ऐत0ब्राह्मण के 2/32 की श्रुति है–

"भूरग्नि ज्योतिरिग्नरिति प्रातः सवनस्य चक्षुषी। इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्र इति। माध्यन्दिनस्य सवनस्य चक्षुषी। चक्षुष्पद्भिः सवनैः स्वर्ग लोक मोतिय एवं वेद"। अर्थात् तीनों व्याहृतियाँ क्रमशः अग्नि, इन्द्र और सूर्य की प्रतिनिधि हैं। वे ज्योतिर्मय हैं। वे प्रातः मध्याह्न एवं सायं के रूप में आदित्य के तीन नेत्र वे सविता देव सर्वत्र ज्योतिर्मय प्राणों का संचार करते हैं।

यज्ञ प्रयोजन में हुई त्रुटियों का निराकरण कर सकने की सामर्थ्य से युक्त होने के कारण उन्हें व्याहृति कहा जाता है। बौधायन के ही 27/3/4 में कहा गया है कि समस्त यज्ञ ओंकार सहित व्याहृतियों में समाहित है। उनके प्रयोग से यज्ञ पूर्ण होते हैं। ताण्डव ब्राह्मण 2/2/4/1–3 में व्याहृतियों की उपासना को समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली तथा समृद्धियाँ देने वाली कहा गया है। शांखायन ब्राह्मण के 6/12 में व्याहृतियों समेत अग्निहोत्र करने का विधान है और उन्हें प्रायश्चित प्रयोजन में प्रयुक्त करने का निर्देश है, इस उपासना में शारीरिक रोगों से निवृत्ति का भी संकेत है।

सात व्याहृतियाँ

शास्त्रों में सात व्याहृतियाँ–भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं का वर्णन भी आता है। सप्तमहाव्याहृति गायत्री–ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम् , ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्। (तै. आ. प्र. 10 अ. 27)

गायत्री में सन्निहित 24 देवी शक्तियाँ समस्त सृष्टि को आनन्दमय मधुमय बनाने की शक्ति से सम्पन्न हैं। वर्णित 24 देवी शक्तियाँ एकीकृत रूप में गायत्री महाशक्ति हैं, जो आनन्दयुक्त मधुमय मधुविद्या विज्ञान है। गायत्री में अध्यात्म तत्त्व प्रधान रूप से है। आत्मबल और अन्तर्जगत की अगणित सूक्ष्मशक्तियों को विकसित करके स्थूल सृष्टि में काम करने वाली सभी भौतिक शक्तियों को नियंत्रित करने का सामर्थ्य गायत्री में है। उपनिषदों में गायत्री मधुविद्या है। 24 शक्तियों से सम्पन्न गायत्री की महिमा का गान किया गया है।

तत्सवितुर्वरेण्यम्। मधु वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। भूः स्वाहा भर्गोदेवस्य धीमहि। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ् रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमानो वनस्पति मधु मा अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः। स्वः स्वाहा।

मधुर वायु चले, नदी और समुद्र रसमय होकर रहे, औषधियाँ हमारे लिये सुखदायक हों, पृथ्वी का रज हमारे लिये मंगलमय हो, द्युलोक हमारे लिये सुख प्रदान करे, वनस्पतियाँ हमारे लिये रसमयी हों, सूर्य हमारे लिये सुखप्रद हो, उनकी रश्मियाँ हमारे लिये कल्याणकारी हों, सब हमारे लिये सुखप्रद हो, मैं सबके लिये मधुर हो जाऊँ।

बीज मंत्र

गायत्री मंत्र सर्वशक्ति सम्पन्न मंत्र है। मंत्र तीन प्रकार के होते हैं। शक्तिपरक, अर्थपरक और प्रार्थनापरक। उनमें शब्द शक्ति ही आधार है। शक्ति परक मंत्रों में बीजाक्षरों को गिना जाता है—ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं, हुँ, यं, वं, रं, आदि बीज मंत्र हैं। इनका अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। उच्चारणों से उत्पन्न ध्वनि के दिव्य प्रभाव का ही महत्त्व है।

अर्थपरक मंत्र वे हैं, जिनमें प्रेरणाएँ सन्निहित रहती हैं। ऐसे मंत्र के अर्थ होते हैं और अर्थ जानने के पश्चात् ही सन्निहित शक्ति का ज्ञान हो सकता है। मंत्र को जप के द्वारा कार्यान्वित कर इससे मनोवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है।

कर्मयोग-भक्तियोग-ज्ञानयोग

जीव और ईश्वर के बीच भावनात्मक आदान-प्रदान का साधन प्रार्थनापरक मंत्र है। जीव अपनी इच्छा, आकांक्षा को ऐसे मंत्र के माध्यम से व्यक्त करता है और उनकी महिमा का गुणगान करता है। गायत्री में भूःभुवःस्वः को बीज मंत्र माना जा सकता है। गायत्री में नौ शब्द हैं, जिनमें प्रेरणा और पवित्रता की याचना है। इस महामंत्र में शक्ति, शिक्षा एवं प्रार्थना के तीनों तत्त्व विद्यमान हैं। शक्ति उद्भव को कर्मयोग, शिक्षा को ज्ञानयोग और प्रार्थना को भक्तियोग कहा गया है। त्रितत्त्वों का समावेश गायत्री के तीनों चरण में है।

तीन व्याहृतियों के तीन रूप एवं फल

तीन व्याहृतियों में ईश्वर द्वारा जीव को तीन प्रकार का सहयोग मिलने का आश्वासन है। भूः जीवन देनेवाला, भुवः-रक्षा करने वाला एवम् स्वः ऐश्वर्यदाता।

परमब्रह्म से ये तीन उपलब्धियाँ प्राप्त कर लेने के बाद साधक सिद्ध हो जाएगा। भूः को ब्रह्म तेजस् कहा जाता है। भुवः मे ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा निर्मित दुर्ग है, जिसके भीतर रहकर साधक शोक सन्ताप से रक्षित रहता है। स्वः ऐश्वर्यदान का प्रतीक है, जहाँ स्वः के सफल साधक हैं, वहीं ऐश्वर्य है। व्याहृति अंश को गायत्री का प्रथम चरण माना जाता है, इसमें ईश्वरोपासना का महात्म्य वर्णित है। शेष तीन चरणों को कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग कहा जाता है।

गायत्री की शक्तियों से सृष्टि-संचालन

गायत्री शक्ति की अधिष्ठात्री हैं। सृष्टि के संचालन में तीन शक्तियाँ काम करती रहती हैं—सृजन, विकास एवं परिवर्तन। इसी धुरी पर यह प्रकृति चक्र चल रहा है। शास्त्रानुसार जगत जड़ है। पदार्थ में चैतन्य शक्ति नहीं है। वह चिन्तनहीन है और निर्णय लेने में अक्षम है, लेकिन यह तो स्पष्ट है कि प्रकृति में हलचल की शक्ति है। प्रकृति बिल्कुल स्थिर नहीं है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी तथा मनुष्य आदि सभी सजीव उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं तथा उनका अन्त होता है। पत्थर भी स्थिर नहीं है। धीरे-धीरे इसका वर्धन होता है तथा समय पर अन्त भी होता है। सृजन, विकास और परिवर्तन को जो चेतनाशक्ति संचालित करती है, उसे ही त्रिपदा कहा गया है। तीनों रूपों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि का संचालन करते हैं। शक्ति के रूप में सरस्वती, लक्ष्मी और काली है, जो गायत्री महाशक्ति की तीन धाराएँ हैं। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर ये प्राणशक्ति विद्यमान है, जिसको ओजस्, तेजस् और वर्चस् की संज्ञा दी गई है। सौन्दर्य, बल, क्रियाशीलता, दक्षता आदि सद्गुण को ओजस् कहते हैं। ये मनुष्य को प्रतिभा सम्पन्न बनाते हैं। इनकी कमी मनुष्य को आभाहीन बना देती है। तेजस् मानसिक प्रखरता का नाम है। कुशाग्रबुद्धि, विवेक, दूरदर्शी गुण मनुष्य को क्षमता सम्पन्न बनाते हैं। शरीर मन से तथा मन शरीर से प्रभावित होता है। ओजस् शरीर में और तेजस् बुद्धि में विशिष्ट शक्ति उत्पन्न करता है। त्रिपदा गायत्री का तीसरा स्वरूप वर्चस् है। इसे आत्मबल या आत्मतेज की संज्ञा दी गई है। उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, श्रद्धा आदि सद्गुण वर्चस् से प्राप्त होते हैं। तपस्वी की तपस्यावृत्ति वर्चस् की देन है, अतः इसे ब्रह्म वर्चस् भी कहा जाता है। आत्मा के भीतर परमात्मा का अंश जितना

अवतरित होता है, उसी अनुपात से ब्रह्म वर्चस् का आभास मिलता है। वर्चस् ही देवत्व है। त्रिपदा गायत्री वरदान के रूप में ओजस्, तेजस्, और वर्चस् प्रदान करती है, और यह वरदान पाकर मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है। त्रिपदा गायत्री आध्यात्मिक त्रिवेणी है। गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम त्रिवेणी है, जिसे तीर्थराज प्रयाग के नाम से जाना जाता है। मानस में गोस्वामी तुलसी दास ने त्रिवेणी की महिमा को इस रूप मे व्यक्त किया हैं-

"मज्जन फल पेखिय तत्काला, काक होहि पिक बकहु मराला"

त्रिपदा गायत्री से लाभ

जिस प्रकार तीर्थ राज प्रयाग में स्नान कर कौए कोयल बन जाते हैं तथा बगुले हंस बन जाते हैं, उसी प्रकार इन्सान त्रिपदा गायत्री की आराधना कर अपने तन-मन का कायाकल्प कर लेता है। परमब्रह्म को सत्-चित्-आनन्द कहा गया है। मानव जीवन मे सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के रूप में त्रिपदा शक्तियों को व्यक्त किया गया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने त्रिपदा शक्तियों को कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के रूप में निरुपित किया है, मानवीय सत्ता का स्वरुप स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर है। इन तीनों के परिष्कार के लिये दृष्टि, नीति और मर्यादा का विधान शास्त्र में किया गया है तथा उसे ही कर्म, ज्ञान और भक्ति कहा गया है। यह अध्यात्म दर्शन है, व्यवहार में धर्म, अध्यात्म और आस्तिकता की संज्ञा दी गई है। धर्म मानव का स्वाभाविक गुण है। धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यपरायण होना एक ऐसा गुण है, जो मनुष्य को श्रेष्ठ बना देता है।

अध्यात्म क्षेत्र का क्षेत्रपाल अपने आप को पहचान लेता है और यह समझ लेता है कि वह शरीर नहीं आत्मा है तथा आत्मा के उत्कर्ष

के लिये विवेकपूर्ण मार्ग का अनुसरण करता है। आस्तिकता इस बात का ज्ञान करा देती है कि सुखी रहने के लिये सत्कार्य एवं सन्मार्ग जरुरी है। इसका भी उसको ज्ञान हो जाता है कि विपरीत आचरण दुःखों की जननीं है। उदारता, करुणा, दया, सेवा, सहायता जैसी सद्भावनाओं से मनुष्य अपने को भगवतानुरागी बना सकता है, जो परमब्रह्म के समीप पहुँचा सकता है। इस संसार में ईश्वर की सत्ता सर्वोपरि है और कण-कण में व्याप्त है। कहा गया है "ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्या जगत्" इस भाव को मनुष्य के हृदय में प्रतिष्ठित करने के लिये ही भगवान ने काकभुशुण्डी, कौशल्या, यशोदा, अर्जुन आदि महान आध्यात्मिक विभूतियों को अपने विराट रूप का दर्शन कराया है। जिस तरह संसार में ब्रह्मशक्ति सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार आद्यशक्ति गायत्री भी सर्वत्र व्याप्त हैं। त्रिपदा दिव्य ज्ञान दृष्टि गायत्री के त्रिपदा रूप को आराध्य बना कर मनुष्य दिव्य शक्ति का अधिपति हो सकता है और तत्त्व ज्ञानी बन सकता है। खगोलशास्त्र के अनुसार ब्रह्माण्ड को मध्य-नीचे-ऊपर तीन भागों में विभक्त किया गया है तथा इसे भू, भुवः और स्वः कहा गया है।

जीव जगत के भी तीन क्षेत्र है-जीव, प्रकृति और ब्रह्म। शरीर क्रियाशक्ति का प्रतीक है, सूक्ष्मशरीर ज्ञान शक्ति का प्रतीक है तथा भव शक्ति कारण शरीर का प्रतीक है। आत्मविवेचना के लिये आध्यात्मशास्त्र में इन्हीं तीनों का वर्णन है, ब्रह्म विवेचना में भूःभुवःस्वः तीन ब्रह्मवृत्तियाँ ब्रह्माण्डवाचक हैं।

गायत्री वेदमाता

गायत्री में प्रणव ओंकार परम ब्रह्म के प्रतीक हैं। वह एक है। शास्त्र ओंकार का विभेद करते हुए 'अउम्' कर दिया है। भूर्भुवः स्वः

इनका ही विस्तारित रूप है। इन तीनों ब्रह्मवृत्तियों के विवेचनात्मक रूप गायत्री के तीन चरण हैं। प्रत्येक चरण में तीन-तीन शक्तियाँ हैं। गायत्री के 9 शब्द यज्ञोपवीत के 9 धागे हैं, जिसे तत्त्वज्ञान के प्रतीक के रूप में धारण किया जाता है। शीर्ष समेत गायत्री के चार चरण होते हैं और गोपथ ब्राह्मण के गायत्री उपनिषद् में चतुष्पदी भी कहा गया है, परन्तु गायत्री त्रिपदा के नाम से विख्यात है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद गायत्री के तीनों चरणों के विवेचनात्मक विस्तारित रूप हैं। इसलिये गायत्री को वेदमाता कहा गया है। तीनों वेदों का विषय ज्ञान, कर्म और उपासना है, जिन्हें कालान्तर में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग कहा गया।

शास्त्र स्वीकार करता है कि विपत्ति के कारण आसक्ति, अभाव और अज्ञान है। महिषासुर, मधु-कैटभ और शुम्भ-निशुम्भ ये सभी पृथ्वी पर विपत्ति के कारक थे। त्रिपदा गायत्री की दिव्यशक्ति से तीनों संकटों का निवारण हुआ।

गायत्री से त्रिताप का निवारण

शास्त्र विपत्तियों को तीन भागों में विभक्त करता हैं- आधिभौतिक, आधिदैविक और आधिदैहिक। मनुष्य द्वारा निर्मित है आधिभौतिक। प्रारब्धवश उत्पन्न संकट जिस पर मनुष्य का कोई वश नहीं चलता है आधिदैविक है। विकृत मनोविकार के प्रति क्रियास्वरूप जो विपत्ति आती है, उसे आधिदैहिक विपत्ति कहते हैं। इन तीनों विपत्तियों का निवारण त्रिपदा गायत्री के आशीर्वाद से होता है। मानव आयु को तीन भागों में विभक्त किया गया है-बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। तीनों अवस्थाओं में जीवन को संतुलित बनाये रखने के लिये त्रिपदा गायत्री की अनुकम्पा प्राप्त करना आवश्यक है। त्रिपदा

गायत्री से जो दिव्य प्रकाश सुलभ होता है, उस प्रकाश से हम भवसागर से पार कर जाते हैं। "तत्त्वज्ञान का सारा क्षेत्र इन्हीं तीनों विचारधाराओं, प्रेरणाओं और आस्थाओं से प्रेरित है।" त्रिधाशक्ति सत्कर्म, सज्ञान और सद्‌भाव से प्राप्त होती है।

अध्याय
४

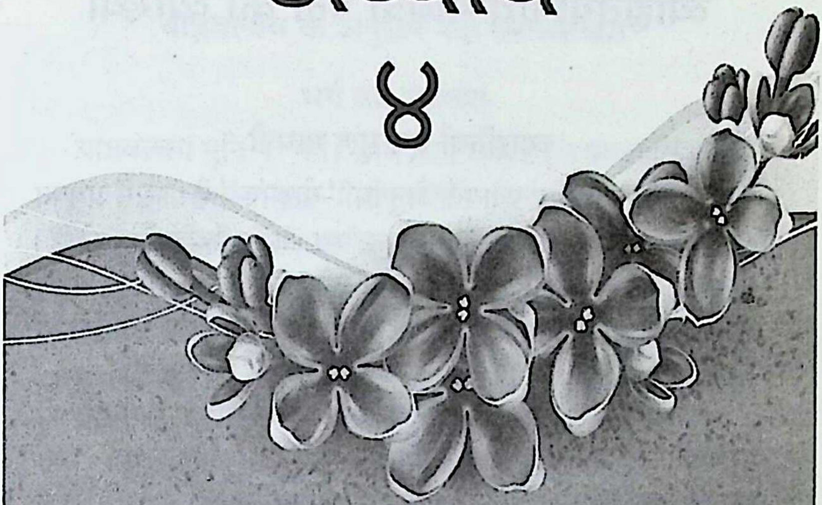

व्याहृतियाँ एवं गायत्री पदों की व्याख्या

व्याहृतियाँ एवं गायत्री पदों की व्याख्या

व्याहृतियाँ एवं मूल गायत्री

गायत्री सर्वसिद्धि प्रदायक अनुपम "महामंत्र" है। इसमें प्रयुक्त होने वाले ॐ को "प्रणव" भूः भुवः स्वः को व्याहृतियाँ कहते हैं। गायत्री की तीनों व्याहृतियों भूः भुवः स्वः को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश की संज्ञा दी गयी है। इसके साथ ही "तत् सवितुः वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्" ये गायत्री के 24 बीजाक्षर हैं।

यह गायत्री का प्रथम चरण है। प्रथम चरण की साधना से मनुष्य को परमगति की प्राप्ति होती है। यदि प्रणव ओ३म् और भूर्भुवः स्वः व्याहृतियों के साथ 24 अक्षरों की गायत्री का नियमित रूप से विधिपूर्वक श्रद्धा एवं विश्वास के साथ मनुष्य साधना करे तो निश्चित है कि मनुष्य परमेश्वर के ओजस्वी मुक्ति स्वरूप में लीन हो जाता है।

अनादि, अजन्मा, सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने स्वर्गलोक को कल्पवृक्ष दिया है और पृथ्वी लोक को गायत्री मंत्र दिया है। सुरलोक में इच्छाओं को पूरा करने के लिए कल्पवृक्ष है। पृथ्वी लोक में गायत्री मंत्र ऐसा मंत्र है, जो सबकुछ प्रदान करने वाला है। गायत्री 24 अक्षरों एवं 9 पदों से सुगठित है, जिसे अलौकिक शब्द शृंखला माना जाता है। गायत्री में ऐसी तात्त्विक शक्ति है, जिसके द्वारा सभी मनोकामनाओं की पूर्ति होती है। गायत्री की तात्त्विक समीक्षा करने पर स्पष्ट होता है कि ओ३म् परमब्रह्म अर्थात् ईश्वर हैं, जो सर्वशक्तिमान् हैं। भूः का अर्थ है आत्म ज्ञान होना (ज्ञानयोग) भुवः का अर्थ है कर्म करना (कर्मयोग) और स्वः का तात्पर्य है स्थिर होना (भक्तियोग)।

याज्ञवल्क्य के अनुसार पदों की व्याख्या

भर्ग की व्याख्या

याज्ञवल्क्य मुनि ने 'भर्गः' अर्थ का निरूपण इस प्रकार किया है-

तत्तस्य भर्गः-तेजो-धीमहि-चिन्तयामः

किम्भृतस्य भर्गं धीमहि-सवितुः-तथा च उक्तं याज्ञवल्क्यमुनिना।

(गा.अर्थ सं.)

जो सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक ब्रह्म हैं, उसके भर्ग नामक तेज का हम ध्यान करते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा है कि सविता के भर्ग का हम ध्यान करते हैं। वे आगे यह भी कहते हैं-

सविता सर्वभूतानां सर्वभावान् प्रसूयते।
सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते।। (गा.अर्थ सं.)

गायत्री में भर्ग है, जिसके सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि -

पुनः किंभूतस्य, देवस्य, दीप्तिक्रीडायुक्तस्य।
दीप्यते क्रीडते यस्माद्रोचते द्योतते दिवि।
तस्मादेव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदेवतैः।। (गा.अर्थ सं.)

जो सभी को प्रकाशित करता है, जो सभी में व्याप्त होकर क्रीड़ा करता है तथा देवलोक भी जिसकी स्तुति करते हैं, उस भर्ग का हम ध्यान करते हैं।

भर्ग का स्वरूप एवं गुण

याज्ञवल्क्य ने भर्ग के स्वरूप एवं गुण का भी वर्णन किया है-

पुनः किभूतं भर्गो धीमहि, यो भर्गो नोऽस्माकं
धियो बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयति धर्मार्थकाममोक्षेषु
अस्माकं बुद्धिः यो भर्गो नियोजयतीत्यर्थः।
तथा च योगियाज्ञवल्क्यः (गा.अर्थ सं.)

बुद्धि की प्रेरक शक्ति भर्ग

जो भर्ग हम सबकी बुद्धियों का प्रेरक है, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिये हम सबों की बुद्धि को प्रेरित करता है, वही भर्ग है। पुनः वचन है कि-

चिन्तयामो वयं भर्गं धियो यो नः प्रचोदयात्।
धर्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिवृत्तीः पुनः पुनः।। (गा.अर्थ सं.)

अर्थात् हम उस तेज स्वरूप सर्वव्यापक परमात्मा को अपने हृदय में ध्यान करते हैं, जो हम सबकी बुद्धि को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पदार्थों को प्रदान करने वाले हैं।

भर्ग की व्युत्पत्ति एवं क्रिया तथा रूप

याज्ञवल्क्य ने भर्ग की व्युत्पत्ति, क्रिया और रूप पर प्रकाश डाला है।

भृजिः पाके भवेद्धातुर्यस्मात् पाचयते ह्यसौ।
भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगदन्ते हरत्यपि।।
कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः।
भ्राजते तत्स्वरूपेण तस्माद्भर्गः स उच्यते।।
भेति भासयते लोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः।
ग इत्यागच्छतेऽजस्रं भगों भर्गः सउच्यते।
भरणात् भर्ग उच्यते वा पाठः।। याज्ञवल्क्य।। (गा.अर्थ सं.)

भृजिपाके धातु से भर्ग शब्द की उत्पत्ति है, जिसका आशय है पाककरना, पकाना अर्थात् पूरा करना। सरलार्थ है सृष्टि के संचालनार्थ प्रेरित करना। यह वह परमतत्त्व है जो सबको प्रकाशित करता है। जो प्रलयकाल में कालाग्निरूप होकर अपनी सप्तअर्थियों तथा रश्मियों से संहार करता है। 'म' का अर्थ है प्रकाश करना 'र' का अर्थ है रंगना तथा 'ग' का अर्थ है शीघ्रगमन करना। जन्म, पोषण से मरण तक प्राणिमात्र के हृदय में यह तत्त्व जीव रूप में निवास करता है।

महर्षि वेद व्यास ने भर्ग शब्द का अर्थ इस प्रकार निरूपित किया है-

अत्र यद्यपि प्राणिनां हृदये जीवरूपतया य एव भर्गः तिष्ठति स एव आकाशे आदित्यमध्ये पुरुषरूपतया विद्यते। अतोऽनयोर्भेदोनास्त्येव तथापि "धियोयोनः प्रचोदयात्।" प्राणिनां बुद्धेः प्रेरकत्वात् योहृदयवर्त्ती स एव चिन्तनीयः। अयं त्वन्न विशेषः सूर्य्यमण्डलमध्यवर्त्तिभर्गेण सह एकीभूताश्चिन्तनीयः। पुनः किंभूतं - भर्ग धीमहि वरेण्यं, वरणीयं प्रार्थनीयं जन्ममृत्युदुःखादिनाशाय ध्यानेन उपासनीयमित्यर्थः। (व्यासगद्यम्) तथाच योगियाज्ञवल्क्यः।। (गा.अर्थ सं.)

प्राणियों के हृदय में जो जीव रूप में विराजमान है वही विभिन्न देवों में पुरुष रूप में विद्यमान है। इस कारण बाह्यरूप से दोनों में कोई अन्तर नहीं है, फिर भी आन्तरिक रूप में तो भेद है ही। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' से बोध होता है कि सबके हृदय में चेतनवत् स्थित है वही चिन्तनीय है, कारण एक से दूसरा संचालित, प्रेरित तथा निर्देशित होता है। इसी कारण हृदयवर्ती भर्ग ही सूर्यमण्डलवर्ती है। जन्म, मृत्यु, दुःखादि के विनाश के लिये दूसरे का ध्यान आवश्यक है।

याज्ञवल्क्य मुनि द्वारा निरूपित गायत्री मंत्र का अर्थ इस प्रकार दिया गया है-

वरेण्यम् वरणीयंच जन्मसंसारभीरुभिः।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः।
जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च।
ध्यानेन पुरुषो यस्तु द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले।। (गा.अर्थ सं.)

जो सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा माया से सबको उत्पन्न करने वाला है और जो जन्म, मृत्यु-भय, त्रिविध दुःख निवृत्ति के लिये उपासनीय एवं सूर्यमंडल में ध्यान द्वारा दर्शनीय है, जो सभी का

साक्षी रूप से प्रकाशक है तथा सबकी बुद्धि का प्रेरक है, उस व्यापक ब्रह्मशक्ति का हम ध्यान करते हैं।

भारद्वाज स्मृति के अनुसार गायत्री पदों की व्याख्याः-

भारद्वाज के अनुसार दस पद एवं उनके अर्थ

महामुनि भारद्वाज द्वारा विरचित भारद्वाज स्मृति में गायत्री का अर्थ निरूपित किया गया है, जिसके अनुसार गायत्री में 10 पद हैं। गायत्री ज्ञान है भारद्वाज मुनि ने प्रत्येक पद का अर्थ देते हुए ज्ञान का भी सम्यक् निरूपण कर दिया है।

1. प्रथम तत् पद का अर्थः-
   तदिति द्वितीयैक वचनम, अनेक जगदुत्पत्ति स्थिति लयकारणी भूतमुपकथ्य मानं निरुपमंतेजः सूर्य मण्डला भिध्येयं परंब्रह्म अभिधीयते
2. द्वितीय पद -
   सवितुरिति षष्ठ्येक वचनं।
   षूञ्-प्राणीप्रसवे इत्यस्य धातोरेतद्रुपम्।
   सर्वस्य भूतजातस्य प्रसवितुरित्यर्थः।
   सवितुः का अर्थ है-सर्वभूत प्राणि मात्र को उत्पन्न करने वाला, माया विशिष्ट चेतना।
3. तृतीय शब्द वरेण्यम्-वरणीयं प्रार्थनीयं नियमादिभिः अपगत कल्मषैः सततं ध्येयमित्यर्थः।
   जो ध्यान करने योग्य है, वही वरेण्यं है।
4. भर्गः पद -भञ्जो आमर्दने, भृजि भर्जने, इत्येतयोर्धातोर्भजतां पाप भञ्जन हेतुभूतम् अथवा
   भ्राज दीप्तावित्यस्य धातोः भर्गः तेज इत्यर्थः।
   संक्षिप्त अर्थ है पापों को दूर करने वाला तेज

5. देवस्य-पद- वृष्टिदानादि गुणयुक्तस्य निरतिशय-स्येत्यर्थः दीप्यतेः: प्रकाशार्थत्वात्।
6. धीमहिपद- मध्ये चिन्तयामि निगमनिरुक्त विद्यारूपेण चक्षुषा योऽसावादित्यो हिरण्यमयः पुरुषः सोऽहमिति चिन्तयामि।
7. धियो-पद- इति द्वितीयायाः बहुवचनम्।
8. यः -पद- इति छान्दसत्वाल्लिड.व्यत्ययः यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरण्येमस्माभिः अभिध्यातं भर्गो जपतां पापभञ्जन हेतुभूतं धीमहि उपास्महे तत्तेजः।
9. नः-पद- नोऽस्माकम्
   जिसका अर्थ है हम सब की।
10. प्रचोदयात् - पद - श्रेयस्करेषु प्रचोदयातु प्रेरयेदित्यर्थः।। शब्दार्थ है - हमारी बुद्धि को कल्याणकारी शुभकर्म की ओर प्रेरित करें।

माधवाचार्य के अनुसार गायत्री पदों की व्याख्या

ऋग्वेद के भाष्यकार माधवाचार्य ने गायत्री का भाष्य इस प्रकार किया है-

> *तत् सवितुः वरेण्यं भर्गः देवस्य धीमहि धियः यः नः प्रचोदयात्।*

इत्येव तत्र दश पदानि अथात्र माधवाचार्यः।

01. तत् 02. सवितुः 03. वरेण्यं 04. भर्गः 05. देवस्य 06. धीमहि 07. धियः 08. यः 09. नः 10. प्रचोदयात्। इस प्रकार माधवाचार्य के अनुसार गायत्री में दस पद हैं।

माधवाचार्य कृत व्याख्या ''गायत्री अर्थ संग्रह'' में इस प्रकार दिया गया है-

यः सविता देवो नोऽस्माकं धियः कर्माणि धर्मादि विषया बुद्धि। वा प्रचोदयात् प्रेरयति तत्रस्य देवस्य सवितुः सर्वान्तर्य्यामितया प्रेरकस्य जगतस्यष्टुः परमेश्वरस्य वरेण्यं सर्वैः उपास्यतया ज्ञेयतया च सम्भजनीयं भर्गोऽविद्यातत्कार्य्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयं ज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजोधीमहि वयं ध्यायेम् इत्यर्थः।

जो सविता देवता हम सब के कर्मों का प्रेरक हैं, शुभाशुभ कर्मों में संलिप्त करके फल प्रदाता हैं, धर्मादि विषयक बुद्धि की जो प्रेरणा करता है उस सविता देवता का जो सर्वान्तर्यामी रूप से अथवा ज्ञेय रूप से आराधनीय भर्ग अर्थात् अविद्या तत्कार्य के भस्म करने वाला होने से जिसका नाम भर्ग कहा जाता है, ऐसा जो स्वयं ज्योति परब्रह्मस्वरूप तेज है, उस तेज का हम ध्यान करते हैं।

गायत्री में सविता देव को मनुष्य के सभी कर्मों का प्रेरक माना गया है अथवा जो धर्मादि विषयक बुद्धि को प्रेरित करता है उस सविता देवता का अथवा अन्तर्यामी रूप या ज्ञेय रूप में अविद्या को भस्म करने वाला भर्ग है ऐसा जो तेजोमय ब्रह्मस्वरूप तेज है, उसका ध्यान मनुष्य करता है।

गायत्री का ध्यान वेदोक्त ध्यान है-

ॐ तेजोऽसि शुक्रमसि अमृतमसि धामनामासि
देवानां मनाधृष्टं देवयजनमसि।
गायत्री एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पद्यपदासि
न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय पराय परोरजसे।

हे देवि तुम तेज हो, तुम शुक्रबल हो, तुम अमृत हो, मोक्ष-स्वरूप हो तुम, धामनामासि-तद्धाम परमं मम इत्यादि। तुम देव प्रिय हो। तुम अनाधृष्ट-भयरहित हो, तुम देवताओं का यजन स्थान हो।

हे एक पदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी गायत्री अपदासि अर्थात् दुर्विज्ञेय होने से अप्राप्तवत् हो।

नहि पद्य से नित्य प्राप्त होने से अप्राप्तवत् नहीं हो अथवा अभक्त जनों को कदापि प्राप्त नहीं हो। हे तुरीयावस्था रूप तथा रजोगुण से रहित और परम ब्रह्म तुम्हारे रूप को नमस्कार हो,

जो शास्त्रों में वर्णित है-

मुक्ता-विद्रुम-हेम-नील-धवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
युक्तामिन्दु-निबद्ध-रत्न मुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदा-ऽभयांकुशा-कशां-शूलं-कपालं गुणं
शंखं चक्रमथार-बिन्दुयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्रीदेव्यै नमः, ध्यानं समर्पयामि।

गायत्री तंत्र में भगवती का रूप

गायत्री तंत्र में चतुर्भज जटाओं का जुड़ा सहित चन्द्रमा के समान ऋक्, यजुः एवं सामवेद स्वरूप शुक्र कमलासीन भगवती का ध्यान किया जाता है। ब्रह्मादि देवताओं से स्तूयमान नित्य यौवन सम्पन्न गायत्री भगवती के रूप का ध्यान किया जाता है।

प्रातः आदि काल में संध्या का अंग स्वरूप गायत्री के ध्यान का भेद काशी खंड में निरूपित है। प्रातः काल में लोहितवर्णा, ब्रह्मदेवता, हंसारूढ़ा, अष्टवर्षा, रक्तमालाधरा, ऋग्वेद स्वरूपा, अभयदा रुद्राक्ष की माला धरण किये हुए अनुष्टुप छन्द युक्ता गायत्री देवी के ध्यान का निरूपण है।

मध्याह्न काल में संध्या का नवीन यौवन के पुष्ट अंगों से युक्त देवी के देवता रुद्र तथा कश्यप ऋषि हैं। वे यजुर्वेद स्वरूपा हैं। वे तीन अक्षर अकार, उकार, मकार स्वरूप वृषभारुढ़ देवी भक्तों को अभय दान देने वाली हैं। इस स्वरूप में परम उत्कृष्ट गायत्री देवी का ध्यान करना है।

सायं काल में सामवेद स्वरूपा गायत्री हैं। गरुड़ वाहन है। उनका देवता विष्णु है। ब्रह्म-विद्या स्वरूप में भगवती गायत्री का ध्यान सायंकाल में किया जाता है।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार गायत्री पदों की व्याख्याः-

शब्द-भाव एवं गुण तथा उनके व्यापक अर्थ

शास्त्रकार तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने शब्द परिचय एवं भाव तथा गुण पर प्रकाश डाला है और गायत्री के नौ पदों का अर्थ स्पष्ट किया है-

तत्- जीवन	सवितुः-शक्ति संचय	वरेण्यं-श्रेष्ठता
भर्गो-निर्मलता	देवस्य-दिव्यदृष्टि	धीमहि-सद्गुण
धियो-विवेक	योनः-संयम	प्रचोदयात्-सेवा

गायत्री गीता में कहा गया है कि यज्ञोपवीत के 09 तार 09 गुणों को धारण करने का आदेश करते हैं। 09 रत्नों की तुलना में 09 तारों की महिमा कहीं अधिक है। 09 रत्न हैं-लाल, मोती, मूंगा, पन्ना, पोखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, वैदुर्य।

नौ रत्नों के स्वामी भाग्यशाली समझे जाते हैं। परन्तु जिसके पास गायत्री एवं यज्ञोपवीत सहित नौ रत्न हैं, वे ही सही मायने में भाग्यवान हैं। तपोनिष्ठ पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य गायत्री महाविज्ञान में कहते हैं कि गायत्री नौ पदों की शृंखला हैं। उन्होंने प्रत्येक के गुण एवं उसके व्यापक भावार्थ पर प्रकाश डाला है।

01. तत्- जीवन विज्ञान - जीवन विज्ञान की जानकारी हो जाने से मनुष्य जन्म-मरण के रहस्य को समझ जाता है, जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। जीवन की अवधि भी निश्चित है। "विवाह जन्म-मरणस्य यदायत्र भविष्यति"। जन्म और मृत्यु दोनों के समय में मनुष्य को अत्यन्त कष्ट होता है- "जनमत मरत दुसह दुख होइ"। लोभ और मोह के कारण जीवन का अन्तिम काल और भी कष्टदायक हो जाता है। इसलिए जो इस तथ्य को समझ जाता है कि सत्कर्म ही उसे सुखी बना सकता है, वह सुखी जीवन का आनन्द उठाता है। सुख-दुःख में समभाव रखता है। समभाव आनन्द का पर्यायवाची है।

02. **सवितुः**- शक्ति संचय-शक्ति संचय की नीति जो जीवन में अपना लिया है, वह विद्वान एवं लक्ष्मीपात्र बनकर आनन्द के साधन को जुटा लेता है और उसका भोग करता है। लक्ष्मी पात्र मनुष्य दूसरों को भी सहायता करता है।

03 **वरेण्यं**-श्रेष्ठता-श्रेष्ठता से तात्पर्य है श्रेष्ठ विचार। जिसने अपने आदर्श जीवन में श्रेष्ठ विचार धारण कर लिया है वह भले ही गरीब हो किन्तु समाज में वह श्रेष्ठ माना जाता है।

04. **भर्गो**- निर्मलता-निर्मलता का अर्थ है निर्मल विचार। बुद्धि, मन एवं अन्तःकरण निर्मल रहने पर मनुष्य निश्चित रूप से प्रसन्न रहता है।

05. **देवस्य**- दिव्यदृष्टि-जो दिव्यदृष्टि वाले हैं, उन्हें सब अच्छा ही लगता है और सबके साथ उनका अच्छा व्यवहार रहता है तथा वे सबका सम्मान प्राप्त करते हैं।

06. **धीमहि**- सद्‌गुण-विनय, नम्रता, धैर्य, साहस, पराक्रम, सच्चाई आदि सद्‌गुण हैं, जो सद्‌गुणों को आत्मसात् कर लिया उसके जीवन में सुख ही सुख है।

07. **धियो**- विवेक-यह ऐसा गुण है जो मनुष्य को मनुष्य बनाए रखता है। विवेक का अभाव मनुष्य को पशु बना देता है। विवेक पूर्ण विचार आनन्दमय जीवन की पूंजी है।

08. **योनः**- संयम-सम्यक् विचार एवं उचित व्यवहार रखना ही संयम है। मनुष्य में शक्ति का भण्डार छिपा हुआ है। शक्ति का सही रूप में प्रयोग करना और मन को संयमित रखना ही संयम है। जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है वह कभी दुखी नहीं होगा। इसलिए सुखी जीवन की कुंजी संयम है।

09. **प्रचोदयात्** -सेवा-सेवा का अर्थ होता है दूसरे को सहयोग एवं सहायता करना। जीवन का यही लक्ष्य होना चाहिए कि सेवा द्वारा अपने को तथा दूसरे को समुन्नत बनाना। गायत्री साधना से मनुष्य में

यह गुण स्वतः विकसित हो जाता है तथा सद्‌गुण सम्पन्न व्यक्ति का जीवन हमेशा सुखमय बीतता है।

वेदमाता गायत्री के 5 मुख या 5 विभाग हैं। यज्ञोपवीत में भी 5 भाग हैं। 5 प्रमुख देवता भी माने गये हैं। गायत्री में 5 विभाग हैं–1. ॐ 2. भूर्भुवः स्वः 3. तत्सवितुर्वरेण्यं 4. भर्गो देवस्य धीमहि 5. धियो यो नः प्रचोदयात्।

यज्ञोपवीत एवं उसकी ग्रन्थियाँ

यज्ञोपवीत के 5 भाग हैं– तीन सूत्र, चौथी मध्यग्रंथियाँ, पाँचवीं ब्रह्मग्रंथि।

पाँच देवता हैं– ओ३म्–गणेश हैं, व्याहृति–भवानी हैं। गायत्री के प्रथम चरण ब्रह्मा हैं, द्वितीय चरण विष्णु हैं और तृतीय चरण महेश हैं। ये 5 देवता गायत्री के 5 प्रमुख शक्तिपुंज हैं।

प्रकृति के संचालक पंच महाभूत –पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं। जीव के 5 कोश हैं– अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश। 5 ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। 5 कर्मेन्द्रियाँ हैं– मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एवं चैतन्य पंचक हैं और आत्मा के भी 5 कोश हैं। इस प्रकार पंच प्रवृत्तियों वाली गायत्री को पंचमुखी कहा गया है।

एक वर्ष में 5 लाख नियमबद्ध जप करने के कार्यक्रम को गायत्री अभियान कहा जाता है। इसका परिणाम अत्यन्त शुभ व मंगलकारी होता है।

अध्याय ५

गायत्री के चौबीस अक्षरों के विवेचन

गायत्री के चौबीस अक्षरों के विवेचन

गायत्री की 24 शक्तियाँ और 24 नाम-12 वैदिक (आगम), 12 तांत्रिक (निगम)

याज्ञवल्क्य के अनुसार गायत्री में सन्निहित 24 अक्षर चौबीस महाशक्तियों के स्वरूप हैं। इनमें शब्द ज्ञान की ब्रह्मचेतना तथा प्रयोजन पूरा कर सकने की प्रचण्ड शक्ति है। गायत्री को ब्रह्मवर्चस् भी कहा जाता है। गायत्री का उपास्य सूर्य सविता है। भुवन-भाष्कर में सहस्र किरणें हैं। गायत्री में सहस्र शक्तियाँ सन्निहित हैं, जिनका वर्णन सहस्रनाम में किया गया है। इसमें अष्टोत्तर शत विशेष प्रचलित है। महर्षि विश्वामित्र तंत्र में 24 प्रमुख नामों का उल्लेख है, जिन्हें सर्वसाधारण भी जपते हैं। इनमें से 12 वैदिक वर्ग एवं 12 तांत्रिक वर्ग के हैं। वैदिक वर्ग को आगम और तांत्रिक वर्ग को निगम कहते हैं। वैदिक शक्ति के 12 रूप (1) आद्याशक्ति (2) ब्राह्मीशक्ति (3) वैष्णवी (4) शाम्भवी (5) वेदमाता (6) देवमाता (7) विश्वमाता (8) ऋतम्भरा (9) मन्दाकिनी (10) अजपा (11) ऋद्धि तथा (12) सिद्धि वैदिकी।

आद्य शक्तिस्तथा ब्राह्मी, वैष्णवी शाम्भवीति च।
वेदमाता देवमाता विश्वमाता ऋतम्भरा।।
मन्दाकिन्यजपा चैव, ऋद्धि सिद्धि प्रकीर्तिता।
वैदिकानि तु नामानि पूर्वोक्तानि हिं द्वादश।। (गा. सा. गु. वि.)

तांत्रिक शक्ति के भी 12 स्वरूप हैं- (1) सावित्री (2) सरस्वती (3) लक्ष्मी (4) दुर्गा (5) कुण्डलिनी (6) प्राणाग्नि (7) भवानी

(8) भुवनेश्वरी (9) अन्नपूर्णा (10) महामाया (11) पयस्विनि और (12) त्रिपुरा। इन्हें तांत्रिकी कहते हैं।

सावित्री सरस्वती ज्ञेया लक्ष्मी दुर्गा तथैव च।
कुण्डलिनी प्राणाग्निश्च भवानी भुवनेश्वरी।।
अन्नपूर्णेति नामानि महामाया पयस्विनी।
त्रिपुरा चैवेति विज्ञेया तान्त्रिकानि च द्वादश।।

(गा. सा. गु. वि. 3.1)

12 ज्ञान पक्ष-12 विज्ञान पक्ष

12 ज्ञान पक्ष और 12 विज्ञान पक्ष की शक्तियों को सम्मिलित कर 24 अक्षरों वाला गायत्री मंत्र का सुगठन परमब्रह्म ने किया। इसलिए गायत्री ब्रह्म चेतन हैं, समस्त ब्रह्माण्ड में गायत्री संव्याप्त हैं। समस्त जगत का संचालन गायत्री की प्रेरणा एवं व्यवस्था के अन्तर्गत हो रहा है।

मनुष्य में 24 शक्तियाँ-शक्ति धाराएँ

मनुष्य में भी 24 शक्तियाँ विद्यमान है। इनमें एक या अधिक शक्तियों की साधना करके साधक अपने में अन्तर्निहित शक्ति को जगाता है और मनोवांछित फल प्राप्त करता है। ब्रह्म चैतन्ययुक्त गायत्री आद्याशक्ति हैं, उपासक प्रातः काल के अरुणसूर्य के रूप में ध्यान करते हैं। गायत्री की सहस्त्र शक्तियों में जिन 24 दैवीशक्तियों की प्रधानता है, वे विभिन्न मानवीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने वाली शक्तिधाराएँ हैं।

24 सत्य-24 देवता-24 ऋषि-24 देवियाँ

ब्रह्मचेतना को प्रज्ञा कहा जाता है। अन्तःकरण की गहराई में प्रसुप्तावस्था में प्रज्ञा पड़ी रहती है। पुरुषार्थी साधना से इस शक्ति को जगाते हैं। गायत्री सर्वशक्तिमान हैं जिनकी असंख्य तरंगे हैं। गायत्री

शास्त्र में 24 सत्य, 24 देवता, 24 ऋषि आदि में गायत्री के अक्षरों का ही तत्त्वज्ञान विभिन्न पृष्ठभूमियों में विद्यमान है। गायत्री में सन्निहित शक्तियों की उपासना 24 दैवी शक्तियों के रूप में की जाती है।

विद्युत शक्ति एक है, लेकिन जिस यंत्र के साथ उसे जोड़ दिया जाता हैं वह उसी प्रयोजन को पूरा करती है। एक विद्युत केन्द्र से अनेक स्थानों पर विद्युत पहुँचाकर विभिन्न प्रयोजनों को पूरा किया जाता है। गायत्री भी एक है, लेकिन उनकी शक्तियों की उपासना विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभिन्न स्थानों पर एक साथ की जाती है। सभी शक्तियाँ गायत्री रूपी एक काया के 24 अवयव हैं, जो परस्पर पूरक हैं। साधक अपने प्रयोजन के लिये इनमें से एक की साधना कर फल प्राप्त करता है।

याज्ञवल्क्य के अनुसार गायत्री के 24 अक्षर-24 देवता

गायत्री मंत्र में समाविष्ट शब्दों एवं पदो में 24 अक्षर हैं। गायत्री के प्रत्येक अक्षर में अतिविशिष्ट भाव हैं। जप करते समय इन अक्षरों के पृथक-पृथक विशिष्ट भावों को ध्यान में रखकर जप किया जाय, तो जप पूर्णरूपेण फलित होता है। महर्षि याज्ञवल्क्य दैवीशक्ति सम्पन्न थे। दिव्य ज्ञान एवं दिव्य दृष्टि से वे गायत्री के हर अक्षर को पृथक-पृथक देवता के साथ सम्बन्ध स्थापित कर दिये हैं ताकि उपासक अभीष्ट फल की प्राप्ति कर सके।

अक्षराणां तु दैवत्वं सम्प्रवक्ष्यामतः परम्
अग्नेयं -तत्-प्रथमंज्ञेयं
वायव्यंच-स-द्वितीयकम्।

अर्थ- प्रथम तत् के अग्नि देवता हैं। द्वितीय 'स' के वायुदेवता हैं।

तृतीयं -वि- सूर्य्य दैवत्वं
चतुर्थं -तुः वैद्युतंतथा
पंचमं-व-यमदैवत्वं वारुणं-रे-षष्ठमुच्यते।

अर्थ- तृतीय-वि-के सूर्य देवता हैं।
चतुर्थ तु-के विद्युत देवता हैं।
पंचम -व-के यम देवता हैं।
षष्ठ अक्षर रे-के वरुण देवता हैं।
वार्हस्पत्यं सप्तमन्तु-ण-पार्जन्य मष्ठन-यम- विदुः।
एन्द्रं तु नवमं -भु-ज्ञेयं गान्धर्वं
दशमं -गं-तथा।

अर्थ- सप्तम - णा - के बृहस्पति देवता हैं।
अष्टम यम के पर्जन्य देवता हैं।
नवम -भ-के इन्द्र देवता है।
दशम -र्ग - के गन्धर्व देवता है।
पौष्णमेकादश -दे- प्रोक्तं मित्रावरूणं द्वादशं-व त्वस्टैव
त्रयोदश देवतात्वष्टा, चतुर्दश वसुदेवता।

अर्थ-

एकादश-दे-के पूसा देवता हैं। द्वादश-व-के मित्रा वरुण देवता हैं। त्रयोदश रूप के देवता त्वष्टा है। चतुर्दश धी के वसु देवता हैं।

मारुतं पंचदशकं -म-सौम्य षोडश के-हि-स्मृतम्।
सप्तदशं-धि-त्वाड़ि.गंर्भू अष्टादशे-यो-वैश्यदेवमतः परन्यः।।
आर्श्वं चैकोनविंशं यः प्रजापत्यं तु विंशकं नः
सर्वदेवमयं प्रोक्तमेकविन्शं प्र मतः परम्।

अर्थ- पंचदश म-के देवता मारुत हैं।
षोडश-हि-के देवता सोम हैं।
सप्तदश-धि-के देवता अंगिरस हैं।
अष्टदश-य-के देवता विश्वेदेव हैं।
उन्नीसवें-यः के देवता अश्वनी कुमार हैं।
बीसवें-नः-के देवता प्रजापति हैं।
इक्कीसवें-प्र-को सर्वदेवता स्वरूप कहा गया है।

अर्थात् पूर्वोक्त सब देवता इसके हो सकते हैं।

रौद्रं द्वाविंशकं चो प्रोक्तं त्रया विंशन्तु द ब्रह्मकम्।

वैष्णवं यात चतुर्विंश मेताद्यक्षर देवताः।

अर्थ- *बाइसवें -चो- के रुद्रदेवता हैं।*

तेइसवें -द- के ब्रह्मा देवता हैं।

चौबीसवें-यात्- के विष्णु देवता हैं।

ये सभी क्रमशः 24 अक्षरों के देवता हैं।

जप काले तु संस्मृत्य तासां सायुज्यातं ब्रजेत्।

यह निर्विवाद रूप से सर्वमान्य है कि जप के समय इन सभी देवताओं का गायत्री के अक्षरों के साथ चिन्तन एवं स्मरण करने से उन देवताओं की सायुज्यता स्वतः प्राप्त हो जाती है।

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा के अनुसार- गायत्री के 24 अक्षर-24 शक्ति केन्द्र

मंत्र शिरोमणि महामंत्र गायत्री चौबीस अक्षरों की श्रृंखला है। विश्वामित्र तंत्र में शक्ति के चौबीस स्वरूपों का वर्णन आया है, जिनमें प्रथम स्थान आद्यशक्ति गायत्री का है। गायत्री वह शक्ति है, जिनके द्वारा सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई।

ब्राह्मीशक्ति या आदिशक्ति गायत्री हैं, जिनकी सृष्टि के उद्भव और विकास में प्रमुख भूमिका रही है। पुराण में वर्णन है कि- ''सृष्टि के आदि में शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति हुई'' जिसे ॐ की संज्ञा दी गई। ॐ के तीन भाग हैं-अ, उ, म् जिसका विस्तृत रूप है भूः, भुवः, स्वः इसी से गायत्री के तीन चरण हुए हैं।

गीता के ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग त्रिचरण त्रिपदा गायत्री की परम्परा निहित है। गायत्री की उपासना से उपासक ब्रह्म सान्निध्य प्राप्त करता हैं। सांसारिक शोक, संताप, सुख-दुःख से आत्यन्तिक छुटकारा मिल जाता है। सूक्ष्म दैवी चेतना का प्रादुर्भाव उपासक के

मन-मस्तिष्क में जागृत होता है। भूः भुवः स्वः तीनों लोकों में 'ॐ' व्याप्त है, जो बुद्धिमान पुरुष ॐ ब्रह्म को जानता है, वही ज्ञानी है। सर्वव्यापी परम सत्ता ॐ का ध्यान करने पर मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है।

भूर्भुवः स्वत्रयो लोका व्याप्तमोम्ब्रह्म तेषु हि।
स एव तथ्यतो ज्ञानी यस्तद्वेश्रि विचक्षणः।।

गायत्री के चौबीस अक्षरों का ज्ञान शास्त्रों ने कराया है ताकि मनुष्य स्वयं में ब्रह्मशक्ति स्थापित कर सके।

गायत्री संसार के समस्त ज्ञान विज्ञान की आदि जननी हैं, चारों वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद गायत्री के सुपुत्र हैं। इस तथ्य को सभी स्वीकार करते हैं कि गायत्री वेदमाता हैं। वेद गायत्री की व्याख्या है। समस्त प्रकार की विद्याओं का भण्डार वेद को माना जाता है। परमेश्वर की इच्छाशक्ति के स्फुरण से ब्रह्मा हुए। उसी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की दूसरी इच्छा के स्फुरण की अभिव्यक्ति है-आदिशक्ति गायत्री। व्याहृतियाँ सहित गायत्री के चार चरण हैं। ब्रह्माजी ने एक-एक चरण की व्याख्या कर एक-एक वेद को प्रकट किया है। ॐ भूः भुवः स्वः से ऋग्वेद, तत्सवितुर्वरेण्यम से यजुर्वेद, भर्गोदेवस्य धीमहि से सामवेद एवं धियो यो नः प्रचोदयात् से अथर्ववेद की रचना हुई।

समस्त शास्त्र, दर्शन, ब्राह्मणग्रंथ, आरण्य, सूत्र, उपनिषद्, पुराण, स्मृति आदि के आधार वेद हैं। इनसे ही शिल्प, वाणिज्य, शिक्षा, रसायन, वास्तु, संगीत, आयुर्वेद, विज्ञान आदि अनेक शास्त्रों का सृजन हुआ। इन समस्त शास्त्रों का मूल गायत्री हैं। कालक्रम में चौरासी कलाओं का आविर्भाव हुआ है, जिनका मूल गायत्री है। गायत्री के 24 अक्षरों में संसार का समस्त ज्ञान-विज्ञान सन्निहित है। वस्तुतः ये सभी गायत्री के अर्थ विस्तार हैं।

गायत्री दिव्य ज्ञान का भंडार ही नहीं, अपितु व्यावहारिक ज्ञान का भी स्रोत है। असाध्य रोगों से निवृत्ति के लिये दिव्य औषधियाँ बनाने की विधियाँ संकेत रूप में गायत्री में उपलब्ध हैं। आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र आदि हथियार बनाने का विधान भी इनमें मौजूद है।

ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति अन्य लोकों के प्राणियों से सम्बन्ध स्थापित करने की कला, ग्रहों की गतिविधि का ज्ञान, अतीत तथा भविष्य को जानना, अदृश्य तत्त्वों के खोज से सम्बन्धित किसी विषय का ज्ञान आदि गायत्री की साधना से प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होकर इसी लोक में देवता स्वरूप हो सकता है।

अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा द्वारा सम्पादित "अखण्ड ज्योति" में गायत्री के चौबीस स्वरूपों को उद्‌भासित कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है।

आखर चौबीस परम पुनीता।
गावहिं वेद संत अरु गीता।।

तत्-आद्याशक्ति

तत्- प्रथमतः 'तत्' का स्वरूप है आद्याशक्ति।

'तत्' वर्णस्य तु देवीं तामाद्यां शक्तिं वदन्त्यथ।
देवतां च परंब्रह्म बीजमोंकारमेव च।।
विश्वामित्रमृषिं यंत्रं गायत्रीं फलमस्य च।
प्रज्ञादीक्षे विभूतिद्वे संस्कारित्वाऽऽप्तकामये।।

'तत्' अक्षर की देवी-'आद्याशक्ति', देवता-'परब्रह्म', बीज-ऊँ, ऋषि-'विश्वामित्र', यंत्र-'गायत्रीयंत्रम्', विभूति-'प्रज्ञा एवं दीक्षा' तथा प्रतिफल-आप्तकाम एवं सुसंस्कारिता हैं।

स-ब्राह्मी चेतना

'स'-'स' का स्वरूप ब्राह्मी चेतना है, जिसकी उपासना से सतोगुण की वृद्धि होती है। गायत्री माता के एक हाथ में पुस्तक, दूसरे में कमण्डल है जो सद्ज्ञान एवं सत्कर्म का द्योतक है। गायत्री शक्ति उपासक को यह वरदान के रूप में प्रदान करती हैं। सृजन के देवता ब्रह्मा हैं और शक्ति ब्राह्मी हैं। ब्राह्मी शक्ति सृजन का आधार है। ज्ञानी एवं विवेकी पुरुष गायत्री शक्ति की साधना से परम साध्य को प्राप्त करता है। देवी ब्राह्मी का वचन है-

'स' वर्णस्य देवी च ब्राह्मी ब्रह्मा तु देवता।
ऋषिर्वसिष्ठो यंत्र च ब्राह्मी, भूतिद्वयं पुनः।
श्रद्धायुक्ते च विद्यन्ते फलं सृष्टिः सुसंतति।।

'स' अक्षर की देवी-'ब्राह्मी', देवता-ब्रह्मा, बीज-ह्रीं, ऋषि-'वसिष्ठ', यंत्र-'ब्राह्मीयंत्र विभूति-'श्रद्धा एव युक्ता' और प्रतिफल-'सृजनशक्ति एवं सुसंतति हैं'।

वि-वैष्णवी

वि- वि का स्वरूप वैष्णवी है। विष्णु का नारी रूप वैष्णवी माना गया है। लक्ष्मी के रूप में भी पूजित हैं। वैष्णवी रूप के हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म है। ये चारों क्रमशः संकल्प, गति, शक्ति और सुषमा गायत्री उपासक को देवी वैष्णवी से वरदान रूप में प्राप्त होते हैं।

वैष्णवी पालन कर्ती हैं इसलिए सुखों का साधन प्रदान करती हैं, जो वैष्णवी रूप का ध्यान करता है, उसके लिये सांसारिक एवं आध्यात्मिक सब कुछ सुलभ है।

'वि' अक्षरस्य च देवी सा वैष्णवी देवता च सः।
विष्णुः 'णं' बीजमेतस्य वैष्णवी यंत्रमेव च।।
ऋषिः स नारदो भूती निष्ठाक्षेमे च सन्त्यपि।
फलं वर्चोऽथ तद्दिव्यं वैभवं द्वयमेव तु।।

'वि' अक्षर की देवी-'वैष्णवी', देवता-'विष्णु', बीज-'ण' यंत्र-'वैष्णवी' ऋषि-'नारद', विभूति-'निष्ठा एवं क्षेमा' और प्रतिफल-'वर्चस्' एवं दिव्य 'वैभव' हैं।

तु-शांभवी

तुः-तु आद्यशक्ति गायत्री का तीसरा रूप शांभवी है, जो परिवर्तन की शक्ति पुनर्जीवन एवं नवनिर्माण की शक्ति प्रधान रूप शिवशक्ति के नाम से जानी जाती है। शांभवी का वाहन वृषभ है और हाथ में डमरू है, जिसका अर्थ होता है पुरुषार्थ पूर्ण नव जागरण। शांभवी रूप में उनके मस्तिष्क के मध्य में तीसरा नेत्र है, जिसे ज्ञान चक्षु भी कहते हैं।

शांभवी की उपासना से तीसरा ज्ञान चक्षु खुल जाता है, जिसे गायत्री उपासना से ज्योतिर्मय बनाकर ब्रह्म-दर्शन किया जा सकता है।

प्राण में शिव शक्ति शांभवी का स्वरूप इस प्रकार है-

'तुः' अक्षरस्य च देवी शांभवी देवता शिवः।
बीजं 'शं' अत्रिरेवर्षिः शांभवी यंत्रमेव च।
भूती मुक्ताशिवे मुक्तिः फलं चानिष्टनाशनम्।।

'तुः' अक्षर की देवी-'शांभवी, देवता-'शिव', बीज-'शं', ऋषि-'अत्रि', यंत्र-'शांभवीयंत्र, विभूति-'मुक्ता एवं शिवा' तथा प्रतिफल-'मुक्ति प्राप्ति तथा अनिष्ट-निवारण' है।

व-वेदमाता

'व'-'व' प्रतीक है वेदमाता का जो गायत्री का वेदरूप है। वेद कहते हैं ज्ञान को, जिसकी शाखायें ऋक्, यजुः, साम और अथर्व हैं। इन्हीं के अन्तर्गत समाज में चेतना घूम रही है। ऋक् को धर्म, यजुः को मोक्ष, साम को काम और अथर्व को अर्थ का स्वरूप कहा जाता है।

गायत्री शक्ति से उत्पन्न चारों वेद हैं, इसलिए गायत्री को वेदमाता कहा जाता है। चारो वेद उनके पुत्र हैं। वेदों की रचना से पूर्व ब्रह्म शक्ति से स्फुरित होकर गायत्री का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके चौबीस अक्षरों में से एक अक्षर "व" है, जो वेदमाता के रूप में उपास्य है। ये वेदवाङ्मय की जन्मदात्री हैं। इनकी उपासना से वेदज्ञान, ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि होती है।

वेदमाता तत्त्वज्ञान, सद्ज्ञान, आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान से साधक को सम्पन्न कर देती हैं। सद्ज्ञान प्राप्ति हेतु इनकी उपासना करणीय है।

वस्य वर्णस्य देवी तु वेदमाताऽथ देवता।
आदित्यो बीजं 'ओं' एवं ऋषिर्व्यासोऽथयन्त्रकम्।।
विद्या सन्ति च भूती द्वे स्मृतिविद्ये क्रमात्तथा।
अस्य प्रतिफलं दिव्यस्फुरणं ज्ञानमुत्तमम्।।

'व' अक्षर की देवी-'वेदमाता', देवता-'आदित्य', बीज-'ओं', ऋषि-'वेदव्यास', यंत्र-'विद्यायन्त्रम्', विभूति-'स्मृति एवं विद्या' तथा प्रतिफल-'दिव्य स्फुरण व सद्ज्ञान' है।

रे-देवमाता

रे- "रे" स्वरूप में गायत्री देवी देवमाता हैं। देवमाता की उपासना से प्राप्त सद्ज्ञान और सम्पदा अर्जित कर मनुष्य विवेकवान् एवं ऐश्वर्यवान होकर दिव्य आनन्द प्राप्त करता है। उच्चस्तर पर पहुँचकर देव माता के रूप में गायत्री की उपासना करने से उपासक देवतुल्य हो जाता है। देवमाता गायत्री साधक को उच्चतर सोपान पर पहुँचा देती हैं, जिससे लोभ, मोह, वासना, तृष्णा से रहित होकर साधक दिव्य पुरुष बन जाता है।

देवमाता के स्वरूप का वर्णन है कि -

'रे' वर्णस्य च देवी तु देवमाताऽथ देवता।
इंद्रो बीजं च 'लृं' अस्य भृगुः स ऋषिरुत्तमः।।

यन्त्रं देवेशयन्त्रं च देवयानी तथैव च।
दिव्या भूती फलं सन्ति देवत्वं सच्चरित्रता।।

रे' अक्षर की देवी-'देवमाता', देवता-'इंद्र', बीज-'लृं', ऋषि-'भृगु', यंत्र-'देवेशयंत्रम्, विभूति-'दिव्या एवं देवयानी' तथा प्रतिफल-'देवत्व व सच्चरित्रता' है।

णि-विश्वमाता

णि-''णि'' वर्ण के स्वरूप में गायत्री माता विश्वमाता हैं। परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। उनकी शक्ति से उत्पन्न ब्रह्मशक्ति समस्त सृष्टि में व्याप्त हैं। ब्रह्मशक्ति से प्रस्फुटित शक्ति गायत्री शक्ति भी सर्वव्यापिनी है। ब्रह्मा जगत् पिता हैं।

आदिशक्ति गायत्री का एक रूप विश्वमाता है, जो विश्व व्यापिनी हैं। गायत्री परमात्मा की शक्ति हैं, जो अणु-अणु में व्याप्त हैं। यह जगत गायत्रीमय है। गायत्री पंजर स्तोत्र में यह भाव व्यक्त किया गया है कि गायत्री का ढाँचा विस्तार सम्पूर्ण विश्व है। ''गायत्री पंजर स्तोत्र'' में गायत्री के विराट रूप का वर्णन किया गया है।

''विराट दर्शन की यह मान्यता-भावना, विचार पद्धति एवं कार्यप्रणाली साधक की आत्मा को सच्चे आनन्द से ओतप्रोत कर सकती है''।

अणु-अणु में व्याप्त विराट रूप में गायत्री माता विश्वमाता के रूप में आराध्य हैं।

विश्वमाता 'णि' देवी सा विश्वकर्मा च देवता।
बीजं 'स्त्रीं' यन्त्रमस्यैवं मातृयन्त्रमृषिश्च सः।।
अंगिरा भूतिके ध्येया विराजा सन्ति वै क्रमात्।
सहयोगस्य संसिद्धिर्विराटानुभवः फलम्।।

अर्थात्-'णि' अक्षर की देवी-'विश्वमाता', देवता-'विश्वकर्मा', बीज-'श्रीं', यंत्र-मातृयंत्रम्, ऋषि-'अंगिरा', विभूति-'विराटा एवं ध्येया' और प्रतिफल-'विराटानुभूति एवं सहयोग सिद्धि हैं।

यं- ऋतम्भरा

यं- ''यं'' रूप में गायत्री माता देवी ऋतम्भरा हैं। गायत्री माता की विश्वमाता के रूप में साधना करने के फलस्वरूप ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में माता का वरदान प्राप्त होता है। इसी को प्रज्ञा भी कहते हैं। प्रज्ञा प्राप्ति के लिए ही ब्रह्म विद्या या ब्रह्म विज्ञान की रचना हुई। यह सद्ज्ञान प्राप्त हो जाने पर तत्त्वदर्शन का लाभ मिलता है, जिसके द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार की उपलब्धि ऋतम्भरा माता से वरदान के रूप में प्राप्त होती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति द्वारा पूर्णता की प्राप्ति हो सकती है। वासना, तृष्णा का अन्त हो जाता है तथा विचार धारायें और सद्‌बुद्धि माया से विरत हो जाती हैं। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना से साधक ओतप्रोत हो जाता है। ऋतम्भरा देवी की आराधना से ब्रह्मतेजस् के आलोक से साधक प्रकाशमान हो जाता है।

गायत्री को ऋतम्भरा प्रज्ञा भी कहते हैं। गायत्री-उपासना से ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है, ऋत (सत्) तत्त्व से साधक की प्रज्ञा को आपूरित कर देने वाली देवी को ऋतम्भरा कहा गया है। साधारण बुद्धि जब सत् तत्त्व से प्रेरित होती है तब उसकी संज्ञा मेधा-बुद्धि हो जाती है। सद्‌बुद्धि और सद्विवेक इसके पर्याय हैं। बुद्धि में केवल संकल्पन-विकल्पन होता है अर्थात् विचार करके किसी निर्णय पर पहुँचने की क्षमता होती है। परन्तु मेधा बुद्धि में उचित-अनुचित का निर्णय करने के पश्चात् उचित को स्वीकारने और अनुचित को अस्वीकारने की सामर्थ्य होती है। गायत्री मंत्र सारगर्भित शब्दों की शृंखला है। एक-एक शब्द में प्रेरणा शक्ति छिपी हुई है। शब्दों में सन्निहित सूक्ष्म प्रेरणा शक्ति मनुष्य को अनेक रूप में लाभान्वित करती है।

गायत्री मंत्र में प्रयुक्त शब्द-धीमहि सद्‌बुद्धि का प्रतीक है। सद्‌बुद्धि और सद्विवेक के याचक आद्याशक्ति, ऋतम्भरा देवी के साधक हैं। गायत्री मंत्र का सारांश है कि देवता सद्‌बुद्धि प्रदान करें

और सन्मार्ग पर जाने के लिये प्रेरित करें। सद्बुद्धि-सद्विवेक से ही सन्मार्ग उपलब्ध हो सकता है। साधक का हमेशा प्रयोजन रहता है सद्विवेक, मेधा शक्ति से युक्त होना, मेधा बुद्धि से उचित क्रिया-कलापों का निर्धारण मनुष्य कर सकता है। इसलिये यह प्रार्थना की जाती है-सं न शिशोहि भुरिजोरिव क्षुरम् ऋ. 8/4/16 अर्थात् हमारी बुद्धियों को छूरे के समान तीक्ष्ण बना दीजिये। सभी भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों का मूल प्रेरक तत्त्व-सद्बुद्धि है, जिसके द्वारा सांसारिक समृद्धियाँ और आत्मिक विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

चिन्तन मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। इसे विवेकशील बनाने के लिये मेधाशक्ति आवश्यक है। गायत्री मंत्र की साधना का उद्देश्य है मेधाशक्ति को जागृत करना। गायत्री में मेधाशक्ति धी-तत्त्व की आराधना सविता देवता के रूप में की गई है। अथर्ववेद भी इस ओर दिशा निर्देश करता है:-

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मेधांमाध्यंदिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वयसा वेशयामहे।। (अथर्व)

अर्थात् हम प्रातः, मध्याह्न और सायं को सूर्य-सविता की किरणों के माध्यम से मेधा-शक्ति प्राप्त करते हैं।

जो भी आत्मज्ञानी हुए हैं वे मेधा बुद्धि की उपासना से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुए हैं। यजुर्वेद भी मेधा शक्ति की अभ्यर्थना करता है-

यां मेधां देवगणः पितरश्चोपासते।
तया मामद्यमेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरुस्वाहा।। (यजु.)

जिस मेधा-शक्ति की देवगण, पितृगण आदि उपासना करते हैं, हे अग्नि देव! उसी मेधा शक्ति से हमें भी पूर्ण बना दें।

प्रज्ञा शक्ति के जागरण से मनुष्य के अन्तःकरण में उच्च आस्था प्रवाह का संचार होता है और यह प्रवाह जीव और ब्रह्म के बीच आदान-प्रदान का माध्यम बनता है। गायत्री ब्राह्मी शक्ति है। यह

ब्रह्माण्डीय चेतना का वह भाग है जो मनुष्य को परमपुरुषार्थ प्राप्त करने में अहं भूमिका निभाती है। गायत्री विद्या का उद्देश्य ही है कि आत्मा और परमात्मा के बीच में आदान-प्रदान के सम्बन्ध में अभीष्ट जानकारी उपलब्ध कराना। साधना से जब यह जानकारी मिलने लगती है तभी मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव में परिवर्तन होता है। वह ब्राह्मी शक्ति प्राप्त कर लेता है। उसे ही ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं।

"गायत्री का प्राकट्य आकाशवाणी द्वारा ब्रह्मनिर्देश से अन्तःप्रेरणा के रूप में हुआ माना जाता है। गायत्री की उपासना साधक में वही स्थिति प्रदान करती है, जिससे उसका अन्तर्मन निर्मल हो जाता है। फलस्वरूप साधक में ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। शास्त्रों में ऋतम्भरा प्रज्ञा की इस रूप में वन्दना की गयी है।

"हे गायत्री! आप ही बुद्धिमानों में प्रज्ञा, शक्तिप्राणों में शक्ति बनकर निवास करती हैं, आप ही कीर्ति, कांति, सृष्टि एवं मुक्तिदायिनी हैं। आप ही वेदों का सार हैं, यज्ञ कर्मों में स्वाहा-स्वधा हैं, आपका ही विस्तार आगम-निगम में हुआ है। आप ही देवपूजित संजीवनी है।" गायत्री साधना से अन्तःकरण में सद्ज्ञान एवं सद्बुद्धि का संचालन होता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा देवी सबके लिये कल्याणकारी हैं। इन्हें सद्ज्ञान गंगा की गंगोत्री माना जाता है।

यं स्वरूपा भगवती ऋतंभरा का वर्णन इस प्रकार है-

"यं" ऋतंभरा च 'यं' देवी विद्यते देवता पुनः।
हिरण्यगर्भो बीजं 'ऋं' भरद्वाजो महानृषिः॥
ऋतं यंत्रं विभूती च सत्या सा सुमुखी तथा।
न्यायः च स्थितप्रज्ञत्वं फलानि सन्ति यथाक्रमम्॥

'यं' अक्षर की देवी-'ऋतंभरा', देवता-'हिरण्यगर्भ', बीज-'ऋ', ऋषि-'भरद्वाज', यंत्र-'ऋतयंत्र', विभूति-'सत्या' एवं सुमुखी तथा प्रतिफल-'स्थिरप्रज्ञता व न्यास' हैं।

भ-मंदाकिनी

"भ" का वर्ण स्वरूप मंदाकिनी देवी हैं। गंगा का नाम मंदाकिनी है। गायत्री और गंगा की महिमा का भारतीय वाङ्मय में गुणगान किया गया है। पापोद्धारिणी गंगा, पापनाशिनी गायत्री दोनों मानव के बाह्य एवं अन्तःकरण को शुद्ध एवं पवित्र करती है। दोनों का जन्म, जयन्ती एक है-ज्येष्ठ शुक्ल दशमी भगीरथ के तप का फल है-इस पावन धराधाम पर गंगा जी का अवतरण।

ब्रह्माजी के विशेष प्रयत्न एवं कृपा का फल है-गायत्री की दिव्य धारा का अवतरण। महर्षि विश्वामित्र ने गायत्री महाशक्ति का उन्नयन कर राम-लक्ष्मण को हस्तान्तरित किया था, जिन्होंने असुर शक्तियों का उन्मूलन कर धर्म ध्वजा को सुप्रतिष्ठित किया। गंगा-यमुना का संगम मनुष्य को पाप मुक्त कर स्वर्ग का द्वार खोल देता है। गायत्री साधना परम सिद्धि प्रदान कर ब्रह्मलोक का द्वार खोल देती है। गायत्री के हाथ में भरा कमण्डल अमृत गंगा जल से ही परिपूर्ण है। इसलिए गायत्री की उच्चस्तरीय साधना गंगा तट पर रहकर गंगाजल में स्नान व पान से सुलभ हो जाती है।

गंगा जल धरती पर मन्दाकिनी के रूप में प्रवाहमान है और गायत्री सूक्ष्म प्रज्ञान निर्झरणी के रूप में सूक्ष्म प्रवाहमान है। गायत्री मन्दाकिनी स्वरूप में सभी पापों का नाश कर दिव्य निर्मल शक्ति से मनुष्य को सम्पन्न कर देती है, जो परमसिद्धि को प्राप्त करने का साधन है। मन्दाकिनी गायत्री देवी का मंत्र है-

'भ' वर्णस्य देवी तु माता मन्दाकिनी वसुः।
देवता बीजं 'उं' चैव गौतमोऽसावृषिस्तथा।।
निर्मला यन्त्रमेवं च निर्मला विरजे पुनः।
भूती सन्ति फलं चैव निर्माल्यं पापनाशम्।।

'भ' अक्षर की देवी-'मन्दाकिनी', देवता-'वसु', बीज-'उं',

ऋषि- 'गौतम', यंत्र-'निर्मलायंत्र' विभूति-'निर्मला' एवं विरजा' तथा प्रतिफल-'निर्मलता व पापनाश' हैं।

गों-'अजपा गायत्री'

''गों''- विश्वामित्र तंत्र में कहा गया है कि दक्षिणमार्गीय बारह स्वरूपों में एक स्वरूप 'अजपा' गायत्री महाशक्ति हैं। अजपा का अर्थ है, जिसका जप नहीं होता। अजपा महाशक्ति की उपासना से उपासक ईश्वर प्राप्ति के समीप पहुँच जाता है। गायत्री के अजपा स्वरूप को सोऽहम् साधना की संज्ञा शास्त्रों में दी गयी है। इसे हंस योग के नाम से भी जाना जाता है। गायत्री शब्द का अर्थ है- 'प्राणों को त्राण करने वाली' गय प्राण को और त्री त्राण करने वाली को कहते हैं।

गायत्री साधना में 24 प्राणायामों का विधान है। सोऽहम् साधना अत्यन्त उच्चस्तरीय स्वसंचालित प्राणायाम है, जिसमें सभी कार्य आत्मा, शरीर और मन के सहयोग की अपेक्षा नहीं करती है और स्वयं अभीष्ट की प्राप्ति करती है।

शरीर में श्वास प्रवेश की स्थिति में 'सो' की सूक्ष्म ध्वनि और निष्क्रमण की स्थिति में 'हम' की शब्दानुभूति होती है। इन सूक्ष्म ध्वनियों की अनुभूति केवल तन्मात्रा तक पहुँचाने वाली है ये ध्यान धारण नहीं होती हैं। 'सो' एवं 'हम' के शब्द प्रवाह की धारणा करने पर इस दिव्य ध्वनि का अनुभव स्वतः होने लगता है। 'सोऽहम्' ध्वनि-प्रवाह के श्रवण से दिव्य इन्द्रियानुभूति होती है।

शब्द ब्रह्म एवं नाद ब्रह्म के सम्बन्ध में शास्त्र कहता है कि सत्संग, प्रवचन, शब्द योग और भक्ति भरे भाव-संगीत नाद ब्रह्म है। साधक इसको अनहत् नाद कहते हैं। 'सोऽहम्' को ''नाद ब्रह्म का बीज कहा जाता हैं।'' जिसकी साधना में दिव्य ध्वनियां प्रकृति के सूक्ष्म भाग से उठती हैं और उसको सुनने की क्षमता साधक में उत्पन्न हो जाने पर रहस्य स्वयं प्रकट होने लगते हैं, जिनसे जगत् की सूक्ष्म

गतिविधियों का संचालन होता है। अजपा गायत्री की साधना में शरीर व मन गौण हो जाते हैं, अजपा गायत्री का आत्मा के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिससे साधना क्रिया स्वयं संचालित होने लगती है और अपनी धुरी पर स्वयं घूमने लगती है।

आत्मा और अजपा "सोऽहम्" की साधना के फलस्वरूप इनका आत्मा के साथ सम्बन्ध कायम हो जाता है और आत्मबल स्वयं गतिशील होकर शक्ति बन जाता है। साधक इस उच्चस्तरीय साधना से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है, जिसका सदुपयोग विश्व कल्याण के लिये किया जा सकता है। अजपा हंस योग है इसलिये गायत्री का वाहन हंस बताया गया है।

उपासक नीर-क्षीर विवेक सम्पन्न दिव्यदर्शी और आदर्शवादी बन जाता है। उत्कृष्ट चिन्तन से साधक परमहंस पद को प्राप्त करता है। अजपा शक्ति के रूप में गायत्री उपासना ब्रह्म सायुज्य प्राप्ति का निकटतम प्रवेश द्वार है।

'गों' देवीमजपामेवं देवतां मरुतं तथा।
बीजं 'यं' तमृषिं चास्य कथयन्ति पतंजलिम्।।
यंत्रं निरंजनां भूतिं सहजां च निरंजनाम्।
शान्तिं प्रतिफलं चास्य भयनाशं च सर्वतः।।

'गों' अक्षर की देवी-'अजपा', देवता-'मरुत', बीज-'यं', ऋषि-'पतंजलि', यंत्र-'निरंजनायंत्रम्', विभूति-'निरंजना एवं सहजा' तथा प्रतिफल-'शांति एवं भय का नाश।

दे-ऋद्धि

'दे'-वर्ण की देवी ऋद्धि तथा 'व' अक्षर की देवी सिद्धि मान्य हैं। गायत्री के मूर्तिरूप देवी-देवताओं में मंगल मूर्ति गणेश हैं। विवेक, बुद्धि और सद्ज्ञान स्वरूप गणेश गायत्री के प्रमुख शक्ति केन्द्र हैं। प्रकारान्तर से गणेश को गायत्री की प्रमुख शक्तिधारा कहा जा

सकता है। गणेश के साथ दो दिव्य शक्तियाँ ऋद्धि और सिद्धि रहती हैं। ऋद्धि तत्त्व आत्मिक विभूतियों की पर्याय है और सिद्धि भौतिक सफलता का प्रतीक है। ऋद्धि आत्मबल है और सिद्धि धनबल हैं। परब्रह्म के साथ परा और अपरा प्रकृति है, जिनके सहारे जड़-चेतन विश्व की गति गतिमान है। विवेक रूपी गणेश के साथ ऋद्धि-सिद्धि हैं, जिनके द्वारा आत्मिक और सांसारिक सफलता प्राप्त होती है। ऋद्धि अर्थात् आत्मज्ञान, आत्मबल, आत्मपरिष्कार, आत्मसन्तोष, आन्तरिक उल्लास, आत्मविस्तार, सुसंस्कारिता ऐश्वर्य और सिद्धि प्रतिमा, स्फूर्ति सामूहिकता, समृद्धि, विद्या, समर्थता, सहयोग, सम्पादन एवं वैभव की प्रतिरूप है। ऋद्धि और सिद्धि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ ऋद्धि है वहाँ सिद्धि भी रहेगी। विवेकवान आत्मिक और भौतिक दोनों शक्तियों से सुसम्पन्न रहते हैं। गायत्री उपासना का प्रतिफल ऋद्धि एवं सिद्धि की उपलब्धि है।

ऋद्धि स्वरूपों में गायत्री की तन्मय साधना से तुष्टि एवं गुणवत्ता की प्राप्ति और सिद्धि से तन्मयता और कार्य कुशलता प्राप्त होती है।

'दे' अक्षर की देवी 'ऋद्धि' देवता 'गणेश' का मंत्र है-

ऋद्धिं 'दे' वर्णदेवीं तु गणेशं देवतां तथा।
बीजं 'गं' च कणादं तं ऋषिमृद्धिं च यंत्रकम्।।
तुष्टिं भद्रां विभूतिम् च कथयन्ति द्वयं पुनः।
प्रतिफलं गुणवत्तां तां तुष्टिं च सुखदायिनीम्।।

''दे'' अक्षर की देवी-'ऋद्धि', देवता-'गणेश', बीज-'गं', ऋषि-'कणाद', यंत्र-'ऋद्धियंत्र', विभूति-'तुष्टा एवं भद्रा' तथा प्रतिफल-'तुष्टि एवं गुणवत्ता' हैं।

व-सिद्धि

'व' अक्षर की देवी-'सिद्धि', देवता-'क्षेत्रपाल' का मंत्र है-

सिद्धिं 'व' वर्ण देवीं च क्षेत्रपालं च देवताम्।

बीजं 'क्षं' कथयन्त्येवं अगस्त्यमृषिमस्य तु।।
सिद्धिं यंत्रं विभूती च सूक्ष्मां तां योगिनीं तथा।
फलं तन्मयतामाद्यं द्वितीयं कार्यकौशलम्।।

"व" अक्षर की देवी-'सिद्धि', देवता-'क्षेत्रपाल', बीज-'क्षं', ऋषि- 'अगस्त्य', यंत्र-'सिद्धियंत्रम, विभूति-'सूक्ष्मा एवं योगिनी और प्रतिफल-'तन्मयता एवं कार्य कुशलता हैं।

स्य-पंचमुखी सावित्री

'स्य'- गायत्री महामंत्र का तेरहवाँ अक्षर 'स्य' है और स्वरूप पंचमुखी सावित्री हैं। प्रकृति के पंचमहाभूत, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच तन्मात्राएँ-(शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श) पंचप्राण, पंचतत्त्व मिलकर सृष्टि में जीवन का संचालन करते हैं। उनकी अधिष्ठात्री सावित्री हैं। स्थूल शरीर में व्याप्त, सूक्ष्म शरीर पर पाँच कोशों का आवरण है। विज्ञान ने इन्हें फिजिकल बॉडी, एस्टल बॉडी, मेण्टल बॉडी, कोजल बॉडी और कॉस्मिक बॉडी नाम दिया है। भारतीय दर्शन में अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश कहा जाता है। इन्हें पंच देवता के प्रतीक पाँच शक्तियों को दक्षिण मार्गी साधना में गायत्री उपासना से और वाममार्गी साधना में सावित्री के द्वारा जागृत किया जाता है। सकाम साधना में प्रयोजन के अनुरूप बीजमंत्र का प्रयोग किया जाता है। पंचमुखी सावित्री के ज्ञानपक्ष का जीवन में पंचशील, श्रमशीलता, सुव्यवस्था, मितव्ययिता और सज्जनता का पालन किया जाता है। पंचशील ही पंचदेव हैं। अभीष्ट उद्देश्य के लिये अभीष्ट देवता की साधना की जाती है।

"सावित्री के पाँच मुख, पंच कोशों, पंचतत्त्वों एवं पंच प्राणो के प्रतीक हैं। दस भुजाएँ, दसों दिशाओं तथा दस इन्द्रिय शक्तियों का प्रतीक हैं। आयुध शंख से जागरूकता, अंकुश से आत्मा का अनुशासन,

चाबुक से निरालस्यता, चक्र से प्रगतिशीलता, गदा से शक्ति, पात्र से धारण क्षमता का बोध होता है। दोनों हाथों में कमल सभ्यता तथा सुसंस्कारिता का प्रतीक है। दान मुद्रा से देवत्व का तथा आशीर्वाद मुद्रा से सद्भाव का बोध होता है। कमल आसन प्रफुल्लित, विकासमान मनोभूमि का संकेत है।''

सावित्री देवी की साधना से ब्रह्म विद्या एवं सफलता की प्राप्ति होती है। सावित्री देवी (सविता देवता) का मंत्र है-

'स्य' देवीं कथयंत्येवं सावित्रीं देवतामथ।
सवितारं च बीजं तु 'ज्ञं' पुलस्त्यमृषिं पुनः ।।
सावित्रीं यंत्रमेतस्य कल्याणीष्टे विभूतिके।
साफल्यं ब्रह्मविद्यां च द्वयं प्रतिफलं तथा।।

''स्य'' अक्षर की देवी-'सावित्री', देवता-'सविता', बीज-'ज्ञं', ऋषि- 'पुलस्त्य', यंत्र-'सावित्रीयंत्रम्', विभूति-'कल्याणी एवं इष्टा' तथा प्रतिफल-'ब्रह्मविद्या एवं साफल्य' हैं।

धी-सरस्वती

''**धी**'' अक्षर की देवी सरस्वती के रूप में उपासना से उल्लास एवं कलात्मकता प्रतिफल की प्राप्ति होती है।

चेतना के दो पक्ष हैं एक प्रज्ञा और दूसरा बुद्धि। प्रज्ञा तत्त्व की अधिष्ठात्री के रूप में ऋतम्भरा हैं और मस्तिष्कीय प्रखरता के रूप में जब यह शक्ति सक्रिय होती है तो सरस्वती कहलाती हैं। सरस्वती विद्या और शिक्षा की देवी के रूप में पूजित हैं। वसन्त पंचमी को सरस्वती की आराधना विशेष रूप से प्रचलित है।

बुद्धि से व्यक्ति सच्चे अर्थ में मनुष्य बनता है और विद्या से श्रेष्ठ बनता है। सरस्वती की आराधना से बुद्धि संस्थान मस्तिष्क प्रखर होता है और बौद्धिक क्षमता का विकास होता है। मन और चित्त की चंचलता को दूर करने के लिये और मन्दबुद्धि को तीव्र करने हेतु

सरस्वती की साधना उपयोगी है। मानसिक विकार, तनाव, कल्पना शक्ति की कमी, अनिर्णय की स्थिति, विस्मृति, प्रमाद, दीर्घ सूत्रता, अरुचि आदि के निवारण के लिये सरस्वती साधना रामबाण है।

गायत्री महाशक्ति की एक महत्त्वपूर्ण धारा सरस्वती हैं, जो सद्बुद्धि एवं श्री (लक्ष्मी) प्रदान करने के साथ ही प्रतिफल के रूप में उल्लास एवं कलात्मकता देती हैं।

सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री गायत्री हैं, मनुष्य जिस विभूति के कारण अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है, वह विभूति बुद्धि है। सृष्टि में प्रमुख रूप से दो ही सत्तायें हैं प्रकृति और पुरुष। प्रकृति ने विश्व को प्रथम अवदान के रूप में बुद्धि प्रदान किया है। बुद्धि के बाद अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्रा, पंत्रतन्मात्रा से पंचमहाभूत, पंचमहाभूत से शरीर और उसके अवयव- ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ आदि 24 तत्त्वों का आविर्भाव हुआ, जिससे सृष्टि की रचना हुई। अतः सभी तत्त्वों में विशिष्ट स्थान है बुद्धि का। सांख्यदर्शन का वचन है-

आश्चयाश्च बुद्धिर्महत्वं स्वेतर सकलकार्य-
व्यापकत्वाद् महेश्वर्यच्च मन्तव्यम्।

यह बुद्धि संसार के समस्त कार्यों में प्रकाशित है। इसमें विशिष्ट सामर्थ्य है। बुद्धि का केन्द्र स्थान मस्तिष्क है। "मस्तिष्क की तीक्ष्णता, चतुरता, सूझ-बूझ, स्मरणक्षमता, व्युत्पन्नमति को आमतौर से बुद्धिमत्ता समझा जाता है।" यही आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता है। गायत्री महाशक्ति का अवतरण इसी प्रज्ञाशक्ति के रूप में होता है। इससे निकृष्ट भाव तिरोहित हो जाता है और उत्कृष्ट भाव का उदय होता है। बुद्धिबल से ही मनुष्य अखिलविश्व में शासन करता है। हिंसक से हिंसक पशुओं पर भी उसका नियंत्रण हो जाता है। प्रकृति पर नियंत्रण पाने, मौसम को प्रभावित करने से लेकर जीवन में आने वाली जटिल गुत्थियों को सुलझाने तक जिस आधार पर मनुष्य सफल हो सका है, वह केवल बुद्धि का ही प्रभाव है। बुद्धि मनुष्य का सर्वस्व है। विश्व में जितने

भी महापुरुष हुए हैं, उनकी सफलता का मूलमंत्र बुद्धि ही है। बुद्धि सहज रूप से सभी मनुष्यों को प्राप्त है। वस्तुतः सभी प्राणियों में बुद्धि संस्थित है। दुर्गासप्तशती का वचन है-''ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे'' (दुर्गासप्तशती अ.1/47)

विषय मार्ग का ज्ञान सभी जीवों को हैं परन्तु सद्ज्ञान केवल मनुष्य में ही विद्यमान है। मनुष्य की स्वाभाविक कामना है सद्ज्ञान और भगवती से इसके लिये वरदान हेतु प्रार्थना भी करता है।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

(दुर्गासप्तशती अ. 5/22)

जो बुद्धि का अधिष्ठाता है, वही स्वतः बल का अधिपति बन जाता है। यथा ''बुद्धिर्यस्य बलंतस्य''।।

बुद्धि प्राप्त होने से अधिक महत्त्वपूर्ण है, सद्बुद्धि का प्राप्त होना।

गायत्री का तृतीय चरण बुद्धि का ही बखान है, इसमें सविता देवता से प्रार्थना की गई है कि वे सबकी बुद्धि को शुद्ध करें। सही दिशा धारा अपनाने की प्रेरणा प्रदान करने की अभ्यर्थना की गई है। गायत्री की उपासना से उपासक का मनोबल, आत्मबल एवं बुद्धिबल बढ़ता है तथा उसका इहलोक एवं परलोक सुधर जाता है। महाभारत में गायत्री की महिमा का बखान किया गया है-

य एषां वेद गायत्री पुण्या सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति।।

(गायत्री महाविद्या तत्त्वदर्शन 8/24)

सब गुणों से भरी हुई वेदमाता गायत्री को जो जानता है, उसका इस संसार में कोई अनिष्ट नहीं होता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना स्वरूप गायत्री अर्थात् सद्बुद्धि बताया है। ''बुद्धिर्बुद्धिमतां

ह्यस्मि'' बुद्धिमानों में बुद्धि मैं हूँ। 'गायत्री छन्दसामहम्' श्रुतियों में गायत्री मैं हूँ।

बुद्धि की महिमा का बखान शास्त्रों ने बार-बार किया है। गायत्री बुद्धि की देवी हैं, बुद्धि और विवेक वरदान के रूप में गायत्री माता अपने पुत्रों को प्रदान करती हैं। बुद्धि और विवेक का अभाव मनुष्य को पशुवत् बना देता है। नीति वचन है कि काल किसी को डण्डा लेकर नहीं मारता है। केवल उसकी बुद्धि और विवेक हर लेता है। यह ऐसा दण्ड है, जो मनुष्य का सर्वनाश कर देता है। कुबुद्धि कुमार्ग पर जाने के लिये प्रेरित करती है और कुमार्ग पतन के गर्त में गिरा देता है। ठीक ही कहा गया है – *''विनाशकाले विपरीत बुद्धिः''*

जब मनुष्य का विनाशकाल आता है तब बुद्धि विपरीत हो जाती हैं।

''जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है''।

(दिनकर)

जाके मतिभ्रम भयउ खगेसा, ताके पश्चिम भयउ दिनेसा।
जाको प्रभु दारुण दुःख दीन्हा, ताकी मति पहले हर लीन्हा।।

(रामचरितमानस)

गायत्री के शीर्षरूप सरस्वती के साधक दुर्बुद्धि की चपेट में कभी नहीं आते। वे सद्बुद्धि से संचालित होते हैं तथा सुख एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।

उपासना का फलाफल-गायत्री को सहस्रधारा और सहस्रनाम कहा गया है। नाम और धारा का आशय है–गुण, प्रभाव और अनुदान। उपासक को गायत्री माता संकटों से बचाती हैं। लौकिक और पारलौकिक विभूतियों, भौतिक एवं आध्यात्मिक सम्पदाओं, दुर्लभ प्राप्ति और अनुपम उपलब्धियों से आराधकों को सम्पन्न कर देती हैं :-

1. सद्ज्ञान-विद्या-बुद्धि, मेधा-प्रज्ञा, मानसिक-बौद्धिक विभूतियों की प्राप्ति।

2. भवबन्धनों से मुक्ति-दुष्ट मनोवृत्तियों, अशुभ आकांक्षाओं के बन्धनपाश से मुक्ति।
3. भाग्योदय-उज्ज्वल भविष्य की उपलब्धि।
4. आरोग्य- नियम-संयम के पालन से आरोग्य एवं दीर्घ जीवन की प्राप्ति।
5. संकट निवारण-लोभ, मोह, क्रोध, छल जैसे अन्तरंग एवं बहिरंग दुर्गुणों की निवृत्ति।
6. अर्थ संतुलन-दुःख दारिद्रय, आलस्य, अपव्यय तथा ऋण का निवारण।
7. सुखी गृहस्थ जीवन- सुसंस्कृत एवं शान्तिमय पारिवारिक जीवन का मिलना।
8. सुसंतति-संतति प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्य का जीवन नर्क रहता है, यदि सन्तान सुसन्तान न हो।
9. भवसागर से मुक्ति-मनोविकारों और असंगत आचरण के फलस्वरूप जो संकट उत्पन्न होते हैं,
वे जीवन को दुःखमय बना देते हैं। इसलिए गायत्री की कृपा से यह स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती है।
10. अतीन्द्रिय-क्षमता जागृत हो जाती है।
11. सर्वतोमुखी उत्कर्ष- उपासना से भक्त भौतिकता से ऊपर उठकर अध्यात्म में प्रवेश करता है तथा उच्चतम स्थिति को प्राप्त करता है।
12 दिव्य विभूति- उत्तम आचरण, गुण, कर्म, स्वभाव में आशातीत परिवर्तन होता है। क्रमशः आध्यात्मिक सोपानों को पार कर आत्मतत्त्व का ज्ञान होता है और इष्टदर्शन से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

देवी भागवत पुराण ने गायत्री उपासना को सर्वोपरि बताया है। गायत्री उपासना ज्ञान और विज्ञान दोनों का समन्वय है। इसमें ब्रह्मविद्या

तथा योगसाधना दोनों का विधान है। प्रज्ञा, ब्रह्मतेज, ब्रह्मबल एवं आत्मबल का यह सटीक साधन है, इसलिए शास्त्रों ने गायत्री साधना को सर्वश्रेष्ठ माना है।

'**धी**'- सरस्वती का शास्त्रोक्त रूप है-

सरस्वती तु 'धी' देवी देवता च प्रजापतिः।
'ऐं' बीजं कश्यपश्चर्षिर्यन्त्रं चाऽपि सरस्वती।।
कथितान्यस्य भूती तु हर्षा च प्रभवा पुनः।
कलात्मता स उल्लासी द्वयं प्रतिफलं मतम्।

'धी' अक्षर की देवी-'सरस्वती', देवता-'प्रजापति', बीज-'ऐं', ऋषि- 'कश्यप', यंत्र-'सरस्वती यंत्र', विभूति-'हर्षा एवं प्रभवा' तथा प्रतिफल-'उल्लास एवं कलात्मकता' हैं।

म-महालक्ष्मी

'**म**'-'म' वर्ण की देवी महालक्ष्मी हैं। गायत्री की 'श्री' धारा लक्ष्मी है। गायत्री माँ वरदायिनी हैं। उनके वरदानों में एक वरदान लक्ष्मी हैं। लक्ष्मी शब्द सम्पत्ति का पर्याय है किन्तु वह चेतना का गुण भी है। लक्ष्मीवन्त व्यक्ति अपने सीमित साधनो से भी अर्थ का समुचित उपयोग कर सुसम्पन्न बन सकता है। इनका वाहन उल्लू मूर्खता का पर्याय है। धन का दुरुपयोग करना मूर्खता है।

लक्ष्मी को कमला भी कहा जाता है, इसी को संक्षेप में कला कहते हैं। न्यायपूर्वक धन अर्जित करना ही अर्थकला है, जिसके द्वारा अर्जित धन स्थायी होता है। लक्ष्मी का अभिषेक दो गजराज करते हैं, जो परिश्रम और मनोयोग के प्रतीक हैं। जिसकी मनोभूमि सुव्यवस्थित रहती है और जो मनोयोग पूर्वक परिश्रम करता है उसी के घर में लक्ष्मी वास करती है।

'श्री' साधना से चेतना केन्द्र में प्रसुप्त वे क्षमताएँ जागृत होती हैं, जिनके कार्यान्वयन से धन-वैभव की प्राप्ति सम्भव हो जाती है।

लक्ष्मी सौन्दर्य की देवी हैं। वे जहाँ रहेंगी वहाँ स्वच्छता, प्रसन्नता, सुव्यवस्था, श्रमनिष्ठा और मितव्ययिता का वास रहता है। महालक्ष्मी की साधना सदिच्छा एवं सम्पन्नता है।

महालक्ष्मी का स्वरूप है–

'म' वर्णस्य च देवी तु महालक्ष्मीस्तथैव च।
कुवेरो देवता बीजं 'श्रीं' ऋषिश्चाश्वलायनः।।
यन्त्रं श्रीः श्रीमुखी भूती तारिणी कथितान्यपि।
सम्पन्नत्वं सदिच्छा च द्वयं प्रतिफलं मतम्।।

हि–महाकाली

'हि'– 'हि' अक्षर की देवी महाकाली हैं। दुर्गा को महाकाली भी कहते हैं। महाकाल की सहधर्मिणी काली को माना गया है। समय का पर्याय है–काल। यदि समय का सदुपयोग किया जाये तो सांसारिक एवं आध्यात्मिक सम्पदाएँ उपलब्ध होगी।

काली को दुर्गा, चण्डी, अम्बा, शिवा, पार्वती आदि के रूप में मान्यता है। काली का एक रूप संघ शक्ति है। सामूहिक प्रयास से महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ सम्भव हैं।

दुर्गा अवतरण की कथा है कि असुरों द्वारा प्रताड़ित देवताओं का उद्धार करने के लिए प्रजापति ने देवी–देवताओं के साधनों एवं शक्तियों को संगठित कर दुर्गा या काली के रूप में प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न की, जिससे असुर शक्ति का विनाश एवं दैवी शक्ति की स्थापना हो सके। साहस, शौर्य तथा पराक्रम की प्रतीक काली हैं, जिनकी उपासना से आदि शक्ति का उदय होता है। महाकाली-के स्वरूप एवं आयुध का विवरण शास्त्र में वर्णित है कि–काली का विकराल मुख राक्षसी शक्ति को भयभीत करने वाला है। चार हाथों में क्रमशः खड्ग, दुष्टता के विनाश हेतु खण्डित सिर, धारण शक्ति का प्रतीक खप्पर, अभय मुद्रा सज्जनों के लिये आश्वासन है। उनके

मार्ग में शिवजी का आ जाना दिखाया जाता है, जो शिवत्व की मर्यादा रखने का प्रतीक है। शिव शाश्वत् एवं सत्य हैं।

महाकाली की उपासना से पाप वृत्तियों एवं शत्रु का नाश होता है। महाकाली का मंत्र है-

'ह्रि' देवी तु महाकाली महाकालश्च देवता।
बीजं 'क्लीं' कथितान्येवं दुर्वासाश्चैव स ऋषिः।।
कालिका यन्त्रमेवं च भूती भर्गा च वज्रिणी।
अस्य प्रतिफलं शत्रुनाशः कल्मषनाशनम्।।

'ह्रि' अक्षर की देवी-'महाकाली', देवता-'महाकाल', बीज-'क्लीं', ऋषि- 'दुर्वासा', यंत्र-'कालिकायंत्र', विभूति-'भर्गा एवं वज्रिणी' तथा प्रतिफल-'कल्मषनाश एवं शत्रुनाश' हैं।

शास्त्र में दस भुजाओं वाली काली का ध्यान भी है:-

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्।।

(दुर्गासप्तशती)

कमलजन्मा ब्रह्मा जी ने जिनका स्तवन किया था, वे अपने दस हाथों मे खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुंडि, मस्तक और शंख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। उनके समस्त अंग दिव्य आभूषणों से सुशोभित, उनके शरीर की कान्ति नीलमणि के समान वे दस मुख और दस पैरों से युक्त हैं।

धि-कुंडलिनी

'धि'-'धि' अक्षर की देवी कुंडलिनी है। आध्यात्मिक आकर्षण अत्यधिक शक्तिशाली है। सद्ज्ञान एवं सत्कर्म के साथ ही चुम्बकत्व के सहारे पराशक्तियों को आकृष्ट किया जा सकता है। मनुष्य शरीर

में सुप्तावस्था में चुम्बकत्व विद्यमान रहता है, जिसे पुरुषार्थी पुरुष साधना के द्वारा जागृत कर लेता है।

कुंडलिनी ऊर्जा को प्राण विद्युत, जीवनी शक्ति, अन्त: ऊर्जा, योगाग्नि आदि नामों से जाना जाता है। समस्त जीव कोशों को इसी महाशक्ति की प्राण प्रक्रिया गतिमान बनाती है।

नाड़ियों में एक चैतन्य विद्युत प्रवाहित रहती है, जिसके पृथ्वी के उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों की तरह दो ध्रुव हैं। चैतन्य विद्युत का उत्तरी ध्रुव, मस्तिष्क का मध्य विन्दु है, जिसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं यहीं पर सहस्रसार चक्र है, जो ब्रह्म चेतना से सम्बन्धित है। पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव केन्द्र के चुम्बकत्व की ग्रहण प्रणाली के अनुरूप सहस्रार चक्र में वह सामर्थ्य है कि व्यापक ब्रह्म चेतना के भण्डार में विद्यमान दिव्य शक्तियों में से अपने लिए आवश्यक क्षमताएँ आवश्यकतानुसार प्राप्त कर सके।

कुंडलिनी का एक सिरा ब्रह्मरंध्र में है, जिसे महाशक्ति कहते हैं क्योंकि यह कुण्डलाकार है। शेषनाग इसी का नाम है। यह महासर्प मूर्छितावस्था में रहता है, इसे मूर्छना से जगाया जाता है और उससे क्षमता प्राप्त की जाती है। गायत्री की 'धि' की विशेष उपासना से प्राप्त प्रचण्ड क्षमता-शक्ति के सहारे अनेक विशिष्ट आध्यात्मिक विभूतियों को प्राप्त किया जा सकता है।

कुण्डलिनी का दूसरा छोर मूलाधार चक्र है। शरीर के मेरुदण्ड में छः चक्र हैं, जिनमें मूलाधार चक्र सबसे नीचे मलद्वार के दो अंगुल ऊपर स्थित है। मनुष्य के शरीर में पदार्थ ऊर्जा का उत्पादन और वितरण मूलाधार चक्र से ही होता है। प्रजनन शक्ति, स्फूर्ति, हर्ष और साहस आदि विशिष्टताओं का यह उद्‌गम स्थल है।

मस्तिष्क और हृदय प्रधान अंग हैं। सूक्ष्म शरीर का मस्तिष्क सहस्रार चक्र है और हृदय मूलाधार चक्र है। मूलाधार चक्र पृथ्वी के दक्षिणी ध्रुव की तरह ही महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार दो ध्रुवों के बीच चेतना शक्ति

प्रवाह सुप्तावस्था में रहता है। इस स्थिति में मनुष्य किसी तरह अपना भरण-पोषण करता है। समुन्नत जीवन के लिए दिव्य ऊर्जा को जगाकर कुण्डलिनी को जागृत किया जाता है। कुण्डलिनी जागृत हो जाने पर मनुष्य महापुरुष हो जाता है। मूलाधार स्थित प्राण शक्ति और सहस्रार स्थित ब्रह्म चेतना के बीच आदान-प्रदान सम्भव हो जाना कुण्डलिनी जागरण है।

भौतिक और आध्यात्मिक क्षमताओं के मिलन का फल होता है-चमत्कारिक परिणाम। कुण्डलिनी तंत्र को विद्या के क्षेत्र में प्रमुखता दी गई है। भूलोक का प्रतिनिधि है मूलाधार चक्र और ब्रह्मलोक का प्रतिनिधि है सहस्रार के बीच सम्पर्क मार्ग-मेरुदण्ड। मेरुदण्ड में ही षड्चक्र है। सातवाँ आध्यात्मिक केन्द्र है सहस्रार, जिसके जागृत होने पर साधक दिव्य शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है।

मूलाधार चक्र का इस समस्त क्रिया-कलाप में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। शौर्य, साहस, पराक्रम, उत्साह, उल्लास, स्फूर्ति, उमंग जैसी अनेक विशेषताएँ और क्षमताएँ यहीं से उत्पन्न होती हैं।

प्रजनन केन्द्रों का सूत्र संचालन मेरुदण्ड के सुषुम्ना केन्द्र से होता है इसलिए यह भी कुण्डलिनी शक्ति प्रवाह से सम्बन्धित है। इस प्रवाह को जननेन्द्रियों की ओर से मोड़कर ऊर्ध्व शक्ति केन्द्रों की ओर प्रवाहित कर देने पर अन्ततः महाशक्ति केन्द्र में पहुँच जायेगी।

तात्पर्य यह है कि कामेच्छा प्रवृत्ति को सृजनात्मक दिशा में मोड़कर आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है। सहस्रार चक्र आध्यात्मिक भक्ति भावना का केन्द्र होने के साथ ही ब्रह्मशक्ति का प्रमुख केन्द्र है। मूलाधार चक्र प्राण संधान का केन्द्र है, परन्तु दोनों केन्द्रों पर मूर्छना का आवरण है। इससे शक्तियाँ क्रियाशील अवस्था में नहीं रहती हैं। इन दो केन्द्रों को जगाकर इनके बीच कुण्डलिनी साधना से शक्ति सम्पर्क स्थापित कराकर यदि समन्वित शक्ति का विकास किया जाए तो अभीष्ट की उपलब्धि निश्चित है।

सृष्टि में प्रकृति और पुरुष सर्वोपरि सत्ताएँ हैं। मानवीय नर-नारी सत्ता में "नारी सत्ता" मूलाधार में अवस्थित कुण्डलिनी महाशक्ति है और नरतत्त्व सहस्रार स्थित परब्रह्म है। इन्हीं को शक्ति और सिद्धि कहते हैं। इनका मिलन ही कुण्डलिनी जागरण है। अधोगत ऊर्जा को ऊर्ध्व गति ऊर्जा में परिणत करने की प्रक्रिया कुण्डलिनी जागरण है। कुण्डलिनी साधना में कामबीज को शक्तिबीज में बदल दिया जाता है। कामेच्छा-भोगेच्छा को दिव्येच्छा में परिवर्तित कर परमध्येय को प्राप्त किया जा सकता है।

कुण्डलिनी जागरण के लिए शास्त्रकारों ने अपने-अपने मतानुसार प्रक्रिया निर्धारित की है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम एवं योग के द्वारा कुण्डलिनी जगाने की योगपद्धति का निर्धारण किया है। गायत्री साधना के द्वारा कुण्डलिनी जागरण की क्रिया सुगम है। हठयोग, प्राणयोग, तंत्रयोग आदि की साधना से भी इष्ट की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु वे कठिन हैं। गायत्री साधना की विशेषता यह है कि त्रुटि होने पर भी कुछ न कुछ फल अवश्य मिलता है।

अतः कुण्डलिनी देवी की उपासना अभीष्ट फलदायक है। साधना का प्रतिफल ओजस्विता एवं उन्नति है।

उपासना मंत्र-

'धि' वर्णस्य च देवी तु प्रोक्ता कुंडलिनी तथा।
देवता भैरवो बीजं 'लं' ऋषिः कण्व एव च।।
भैरवं यन्त्रमेतस्य धृतिः सा प्रतिभा तथा।
विभूती फलमोजस्वितोन्नतिः कथितानि च।।

'धि' अक्षर की देवी-'कुंडलिनी', देवता-'भैरव', बीज-'लं', ऋषि- 'कण्व', यंत्र-'भैरवयंत्र', विभूति-'धृति एवं प्रतिभा और प्रतिफल-'ओजस्विता तथा 'उन्नति' हैं।

यो-ज्वालामुखी

'यो'-गायत्री महामंत्र के 'यो' अक्षर की देवी ज्वालामुखी हैं। गायत्री के नामों में एक नाम प्राणाग्नि है, जो ब्रह्म चेतना प्रवाह के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। मनुष्य की आवश्यकताएँ एवं प्रयोजन अनेक हैं। विशेष प्रयोजन की पूर्ति के लिए ब्रह्म शक्ति से उत्पन्न देवी देवताओं में से विशिष्ट देवी देवता की उपासना की जाती है। इस निमित्त ऋषि मुनियों ने प्राण विज्ञान का सृजन किया, जिसके द्वारा प्राण-विद्युत की शक्ति अर्जित की जा सके। प्राणविद्युत की अधिष्ठात्री प्राणाग्नि हैं, जो गायत्री का ही स्वरूप हैं। जीवन का सार तत्त्व प्राण है। प्राण ही जीवन है। जब तक प्राणी में प्राण रहता है, तभी तक वह जीवित समझा जाता है। प्राण शब्द की व्युत्पत्ति "प्र" उपसर्ग पूर्व अन् धातु से होती है। 'अन्' धातु चेतना वाचक है। प्राण का प्रयोग जीवनी शक्ति के रूप मे किया जाता है। "प्रश्नोपनिषद्" में प्राण की व्याख्या संकल्प रूप में की गई है। संकल्प शक्ति की प्रेरणा से सृष्टि का विकास हुआ।

विकास के क्रम में जीव के निमित्त पंचतत्त्व एवं पंचप्राणों का भी प्रादुर्भाव हुआ। प्राण तत्त्व की प्रखरता और प्रचण्डता की स्थिति को प्राणाग्नि कहते हैं। प्राणाग्नि दिव्य क्षमता है, जिसके प्रकट होने पर पापों का नाश होता है। प्रखर प्राणाग्नि सम्पन्न व्यक्ति तपस्वी हो जाता है। प्राणाग्नि के रूप में गायत्री की उपासना से प्राण शक्ति को प्रखर और प्रचण्ड बनाया जा सकता है तथा जागृत प्रखर प्राणशक्ति साधक को परमपुरुषार्थ की प्राप्ति कराती है। प्राणाग्नि देवी का पर्याय रूप ज्वालामुखी है, जिसकी साधना का प्रतिफल पुष्टि एवं आरोग्य है।

इनका मंत्र है–

ज्वालामुखी तु 'यो' देवी जातवेदश्च देवता।
बीजं 'रं' स ऋषि चास्य याज्ञवल्क्योऽथ यन्त्रकम्।।
ऊर्जो भूती च स्वाहाऽथाजरा पुष्टिस्तथैव च।
आरोग्यं च फलं पूर्णं कथितानि क्रमादिह।।

'यो' अक्षर की देवी–'ज्वालामुखी' (प्राणाग्नि), देवता–'जातवेद', बीज–'रं', ऋषि– 'याज्ञवल्क्य', यंत्र–'ऊर्जायंत्र', विभूति–'स्वाहा एवं अजरा' तथा प्रतिफल–'पुष्टि एवं आरोग्य' हैं।

यो-भुवनेश्वरी

'यो'– गायत्री महामंत्र के 'यो' अक्षर की देवी भुवनेश्वरी हैं। सामान्यतः मनुष्य की दो आवश्यकताएँ हैं–आध्यात्मिक आवश्यकता एवं भौतिक आवश्यकता। मनुष्य के जीवन में भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी आवश्यक है। उत्तम भौतिक उपलब्धियों की पूर्ति के लिए गायत्री के जिस रूप की उपासना की जाती है, उन्हें ही भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा और महामाया के नामों से पुकारा गया है। विश्व की समृद्धि एवं ऐश्वर्य की स्वामिनी भुवनेश्वरी देवी हैं। भुवनेश्वरी के प्रसाद से मनुष्य ऐसी उच्च स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह असीमित ऐश्वर्य का स्वामी है।

साधक भुवनेश्वरी की साधना दूसरे रूप में भी करते हैं। समस्त भुवन की चेतनात्मक आनन्दानुभूति से सम्पन्न देवी भुवनेश्वरी हैं।

ऐश्वर्य की उपलब्धि आत्मिक पुरुषार्थ से ही सम्भव है। पुरुषार्थ की प्राप्ति हेतु चैतन्य शक्ति की अनुकम्पा आवश्यक है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सन्निहित हैं। पुरुषार्थ प्राप्ति के लिये भगवती भुवनेश्वरी की साधना की जाती है। साधना की

प्राप्ति फल सुयश एवं ऐश्वर्य है। इनका मंत्र है—

'यो' देवी भुवनेश्वरी तु देवता च पुरन्दरः।
बीजं 'खं' जमदग्निश्च स ऋषिर्यन्त्रकं विभुः।।
गौरी विश्वोत्तमे भूती यश ऐश्वर्यमेव च।
फलं च क्रमशः सर्वाण्येतान्युक्तानि ते मया।।

'यो' अक्षर की देवी-'भुवनेश्वरी', देवता-'पुरंदर', बीज-'खं', ऋषि- 'जमदग्नि', यंत्र-'विभूतियंत्र', विभूति-'गौरी एवं विश्वोत्तमा' तथा प्रतिफल-सुयश एवं ऐश्वर्य' हैं।

नः-भवानी

'नः'- गायत्री महामंत्र के 'नः' अक्षर की देवी भवानी हैं। भवानी के रूप में आदिशक्ति गायत्री की उपासना करने से भर्ग तेज की वृद्धि होती है। भवानी एक शक्तिधरा हैं। दुर्गा, चण्डी, भैरवी, कंकाली भी इनका नाम है। इनकी गतिविधि संघर्षशील है। वाहन सिंह है, जो आक्रमण का प्रतीक माना जाता है। धर्म का एक पक्ष सेवा है तो दूसरा पक्ष अनीति का विरोध भी है। प्रतिरोध करने वाली शक्ति को भवानी कहते हैं।

पुराणों में भवानी को संकट निवारिणी के रूप में निरूपित किया गया है। संकट निवारण के लिए संघर्ष की परिकल्पना की गई है। दुष्टता एवं अनीति के उन्मूलन के लिये देवी भवानी सतत् संघर्षशील रहने वाली हैं। सेवा, सद्भावना एवं प्रोत्साहन प्रदान करती हैं।

आत्मशोधन भवानी शक्ति का गुण है। सामाजिक विकृतियों को वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप में निवारण हेतु सतत् प्रयत्नशील रहने के प्रतीक को चण्डी कहते हैं।

सृजन और संघर्ष का दैवीरूप है भवानी जो शौर्य और साहस के साथ संघर्ष पथ पर अग्रसर होने के लिये प्रेरित एवं मार्ग दर्शन करती

हैं। साधना से भवानी शक्ति का जागरण एवं संवर्धन होता है। 'नः' का प्रतिफल संघर्षशीलता एवं अजेयता है।

'नः' वर्णस्य भवानी च देवी रुद्रश्च देवता।
बीजं 'हुं' चैवमस्यर्षिः स वैशम्पायनस्तथा।।
यन्त्रं दुर्गा ध्रुवामोघे भूती द्वे फलमस्य च।
अजेयताऽथ संकल्पसिद्धिः प्रोक्तानि च क्रमात्।।

'नः' अक्षर की देवी 'भवानी', देवता-'रुद्र', बीज-'हुं', ऋषि-वैशंपायन', यंत्र-'दुर्गायंत्र', विभूति-'ध्रुवा एवं अमोघा' और प्रतिफल-संकल्पसिद्धि एवं अजेयता' हैं।

प्र-अन्नपूर्णा

'प्र'-अन्नपूर्णा 'प्र' अक्षर की देवी हैं। गायत्री आदिशक्ति के रूप सर्वविदित है। विभिन्न देवियाँ आदिशक्ति गायत्री की अभिव्यक्तियाँ हैं। एक अभिव्यक्त स्वरूप अन्नपूर्णा हैं। अन्नपूर्णा अन्न की अधिष्ठात्री देवी है।

आज के संदर्भ में अन्नपूर्णा देवी का महत्त्व सर्वाधिक है, इसलिए अन्नपूर्णा की शक्ति को विकसित करने का विधि-विधान ऋषि मुनियों ने बताया है। गायत्री साधना की दो विधियाँ है-वैदिक विधि और तंत्र विधि। तांत्रिक विधि से गायत्री के जिस रूप की उपासना की जाती है, उसे अन्नपूर्णा के नाम से जाना जाता है, परन्तु वैदिक रीति से उपासना करने पर जब अन्नपूर्णा प्रसन्न होती हैं तो सत्पात्र को अभीष्ट फल देती हैं।

अन्नपूर्णा गायत्री की वह चेतना शक्ति हैं, जिसका अवतरण साधक पर होने से साधक को कोई अभाव नहीं रहता है। साधना से सद्बुद्धि और विवेक उत्पन्न होते हैं, जिससे सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। सन्तोष परमधन है, जो साधक को सहज प्राप्त हो जाता है। अन्नपूर्णा देवी जहाँ विराजमान हैं वहाँ धन-धान्य का

प्राचुर्य रहता है। शर्त यह है कि आस्था दृढ़ होनी चाहिए। श्रम, एवं संतुलन के साथ जो उपार्जन करता है, वह अन्नपूर्णा देवी का प्रिय है, किन्तु उपार्जन एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है सदुपयोग। साधक उपार्जन एवं सदुपयोग दोनों का भाव अपने मन में समाविष्ट कर अन्नपूर्णा देवी की कृपा से सुसम्पन्नता प्राप्त कर सकता है। अन्नपूर्णा की साधना में देवता, ऋषि, बीज, यंत्र विभूति तथा प्रतिफल है-

'प्र' वर्णस्य देवी तु साऽन्नपूर्णास्ति देवता।
पूषा बीजमहो 'अं' च पिप्पलादश्च स ऋषिः।।
अन्नपूर्णेश्वरी यन्त्रं तृप्ता पूर्णोदरी तथा।
सन्ति भूती फलं तृप्तिरभावान्मुक्तिरेव च।।

'प्र' अक्षर की देवी-'अन्नपूर्णा', देवता-'पूषा', बीज-'अं', ऋषि- 'पिप्पलाद', यंत्र-'अन्नपूर्णेश्वरीयंत्र', विभूति-'तृप्ता एवं पूर्णोदरी' तथा प्रतिफल-'तृप्ति व अभावमुक्ति' हैं।

चो-महामाया

'चो'- देवी महामाया 'चो' अक्षर की देवी हैं। गायत्री सद्बुद्धि की देवी हैं, जो मनुष्य को माया के जाल से निकाल कर सद्बुद्धि देती हैं। जिस रूप में गायत्री देवी सद्बुद्धि प्रदान करती हैं उसी रूप को महामाया कहते हैं। भ्रान्ति को माया कहते हैं, इसके विपरीत निर्भ्रान्ति को महामाया कहते हैं। माया का सम्बन्ध सांसारिक पदार्थ से है और महामाया का सम्बन्ध आध्यात्मिक है।

जीव माया के बन्धन में बन्धकर मृगमरीचिका में भटकता रहता है। आत्मज्ञान से वह बन्धन मुक्त हो जाता है। आत्मज्ञान देने वाली शक्ति को महामाया के नाम से जाना जाता है। शास्त्र में गायत्री की साधना से साधक को भ्रान्ति से मुक्ति और दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। ज्ञान चक्षु के उन्मीलित होने से साधक जीवन के रहस्य को समझ पाता है और यही समर्पण महामाया की उपासना की ओर साधक को

प्रवृत्त करती है। सफल साधना से बन्धनमुक्ति तो प्राप्त होती ही है-ब्रह्मानुभूति भी होती है।

भगवती महामाया की अनुकम्पा से यही अनुभूति साधक को परब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करा देती है। महामाया के संक्षेप में देवी, देवता आदि इस प्रकार हैं-

'चो' देवी तु महामाया महादेवोऽथ देवता।
बीजं 'हं' प्रोक्तमेतत्स ऋषिः कात्यायनस्तथा।।
योगिनी यंत्रमेतच्च भूती मेधाऽथ पाशिनी।
विद्यंते तत्त्वदृष्टिश्च भ्रममुक्तिः फलं द्वयम्।।

'चो' अक्षर की देवी-'महामाया', देवता-'महादेव', बीज-'हं', ऋषि-'कात्यायन', यंत्र-'योगिनीयंत्र' विभूति-'मेधा एवं पाशिनी तथा प्रतिफल-'तत्त्वदृष्टि व भ्रममुक्ति' हैं।

द-पयस्विनी

'द'- गायत्री के 'द' अक्षर की देवी हैं- ''पयस्विनी''। स्वर्ग की कामधेनु को पयस्विनी भी कहा जाता हैं। गाय ही पयस्विनी है। दुग्धपान करानेवाली को पयस्विनी की संज्ञा दी गई है।

कामधेनु के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जिस किसी वस्तु की याचना की जाती है, कामधेनु वह प्रदान करती हैं। समर्पित भाव से याचना करने पर गायत्री माता याचक को इच्छित फल प्रदान करती हैं, इसलिये उनके एक रूप को पयस्विनी के नाम से जाना जाता है। पयस्विनी रूप में साधना से साधक के अन्तःकरण में यथा-रूप शक्ति का अवतरण होता है, जो उसकी कामना को भावना में बदल देती है।

''जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी''।

सद्भाव के आगमन से साधक का मन आनन्द और उल्लास से तृप्त हो जाता है। पयस्विनी के रूप में ''गायत्री माता प्रेरित-प्रदत्त

प्रवृत्ति हैं, जो अन्तरात्मा में उच्चस्तरीय अध्यात्म आस्था के रूप में साधकों को वैसा ही आनन्द देती हैं जैसे- बच्चे को अपनी माता का दुग्ध पान करते समय होता है। इसी को आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द और परमानन्द कहते हैं।''

साधक आत्मकाम की स्थिति में पहुँच जाता है। उसकी लालसाओं का अन्त हो जाता है। असीम सन्तोष और आनन्द की प्राप्ति होती है। इसे अध्यात्म में अजर स्थिति कहा गया है। आत्मज्ञान हो जाने पर साधक अमरता का अनुभव करता है। सद्बुद्धि सत्कर्म से युक्त होकर वह यशस्वी हो जाता है। उसका यश अमर रहता है।

गायत्री का पयस्विनी नाम सार्थक है और साधक इस रूप में साधना कर कामधेनु की कृपा सदा के लिए प्राप्त करता है। पयस्विनी रूप में देवी, देवता, ऋषि आदि इस प्रकार हैं-

'द' तु पयस्विनी देवी देवता वरुणस्तथा।
बीजं 'वं' धौम्यं एवर्षिर्यन्त्रं वरुणयन्त्रकम्।।
विभूती च स्वधार्द्रे द्वे विद्यन्तेऽपि फलं तथा।
स्नेहः सरसता चेयं द्वयं देवि यथाक्रमम्।।

'द' अक्षर की देवी-'पयस्विनी', देवता-'वरुण', बीज-'वं', ऋषि- 'धौम्य', यंत्र-'वरुणयंत्र', विभूति-'स्वधा एवं आर्द्रा तथा प्रतिफल 'स्नेह व सरसता' हैं।

यात्-त्रिपुरा

'यात्'- गायत्री के 'यात्' अक्षर की देवी त्रिपुरा हैं। भगवती त्रिपुरा महादेवी गायत्री की अन्तिम किन्तु प्रमुख शक्ति हैं। विश्वामित्र तंत्र में दक्षिण मार्गी एवं वाममार्गी शक्तियों का निरूपण किया गया है।

दक्षिण मार्गी गायत्री साधना त्रिपदा कहलाती है। वाम मार्गी गायत्री साधना त्रिपुरा के नाम से प्रसिद्ध हैं। त्रिपदा गायत्री- सत्यम्,

शिवम्, सुन्दरम् एवं सत्, चित्, आनन्द तथा स्वर्ग, मुक्ति, शान्ति और ज्ञान, कर्म, भक्ति हैं, जिनकी विशेष उपलब्धि के लिए त्रिपदा साधना मार्ग का अनुसरण किया जाता है।

वाममार्गी साधना त्रिपुरा मार्ग पर अग्रसर होकर उत्पादन, भौतिक-अभिवर्धन- विकासोन्मुख-परिवर्धन-धन, बल, कौशल, धैर्य, स्फूर्ति, पराक्रम आदि शक्तियों का साधक विकास करते हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि "आत्मिक प्रयोजनों के लिए त्रिपदा का और भौतिक प्रयोजनों के लिये त्रिपुरा का आश्रय लिया जाता है"।

त्रिपुरा शक्ति को त्रिपुर सुन्दरी या त्रिपुर भैरवी की संज्ञा दी गई है। श्रीमद्भागवत एवं अन्य पुराणों में भी त्रिपुरा देवी के "प्रचण्ड पराक्रम" का वर्णन मिलता है। त्रिपुर सुन्दरी सौभाग्य से सम्पन्न करने वाली देवी हैं।

त्रिपुर सुन्दरी का अनुग्रह प्राप्त होने पर साधक का अन्तःकरण एवं बाह्य आनन्दमय उल्लास से भर जाता है तथा वर्तमान एवं भविष्य सुखद सौन्दर्यमय हो जाता है।

मनुष्य के जीवन में अज्ञान, आलस्य, प्रमाद और पतन जैसे भाव पराभव की दशा में पहुँचा देते हैं, जिससे बाहर निकलने का मार्ग-त्रिपुर सुन्दरी की साधना है। इनकी साधना से साधक में साहस और पुरुषार्थ जैसे सकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं, जिससे नकारात्मक भाव विनष्ट हो जाते हैं और सकारात्मक भाव साधक के जीवन को सुख-समृद्धि से परिपूर्ण कर देते हैं। देवी त्रिपुर भैरवी मानव को अभयदान प्रदान करती हैं।

महिषासुर, मधुकैटभ, शुंभ-निशुंभ, रक्तबीज, वृत्रासुर जैसी असुर शक्तियों का प्रभाव एवं कृत्यों के कारण देव-मानव त्रस्त हुए तो

पराक्रमी भैरवी शक्ति ने ही भयाकुल त्रस्त धरा को भयमुक्त किया। विशेष परिस्थिति में विशेष साधना पद्धति का सृजन हुआ। साधना के तंत्र सम्प्रदाय का उदय हुआ।

''तंत्र सम्प्रदाय में इस त्रिविध शक्ति संधान को दुर्गा, काली एवं कुण्डलिनी का नाम दिया गया है''। मनुष्य में कुंडलिनी शक्ति विद्यमान है। साधक द्वारा इसे जागृत करने पर शरीर में विद्यमान अमृत कुण्ड प्रवाहित हो जाता है, जिससे साधक सदानन्द की अवस्था प्राप्त कर लेता है।

शक्ति प्रभा सम्पन्न दुर्गा देवी आभ्यान्तरिक एवं बाह्य आसुरी शक्तियों का विनाश करती हैं। नियम पूर्वक आराधना करने पर आध्यात्मिक एवं भौतिक मनोवांछित फल प्रदान करती हैं। दुर्गासप्तशती में भगवती दुर्गा ने स्वयं अपने श्री मुख से यह वरदान दिया है–

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः।।

अभीष्ट फल हेतु फलार्थी को अपने सत्कर्मों से भगवती को प्रसन्न करने की चेष्टा करनी चाहिए। दुर्गा सप्तशती में यथार्थ अभिव्यक्ति है कि

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना।

त्रिविध शक्ति को ही चण्डी, महाशक्ति, अम्बा आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। नवरात्र, शिवरात्रि, दीपावली आदि के शुभ अवसरों पर कालरात्रि, महारात्रि एवं मोहरात्रि के रूप में विशिष्ट उपासना की जाती है।

''क्रियायोग, जपयोग यज्ञादि द्वारा त्रिपदा की और प्राणयोग, हठयोग और तंत्रयोग से त्रिपुरा की साधना की जाती है। त्रिपदा योगाभ्यास की अधिष्ठात्री हैं, और ''त्रिपुरसाधना'' पुरश्चरण, तपश्चरण की अधिष्ठात्री हैं।

त्रिपुरा देवी का स्वरूप है:-

यात् वर्णस्य देवी तु त्रिपुरा देवताऽथ च।
त्र्यम्बकः 'त्रीं' च बीजं तन्मार्कण्डेयश्च स ऋषिः।।
त्रिधा यंत्रं च विद्यंते त्रिशूलाऽथ त्रिधाऽपि च।
विभूती तापमुक्तिः सा त्रिगुणाधिकृतिः फलम्।।

'यात्' अक्षर की देवी-'त्रिपुरा', 'देवता-'त्रयम्बक, बीज-'त्री', ऋषि-'मार्कंडेय', यंत्र-'त्रिधायन्त्र', विभूति-त्रिधा एवं त्रिशूला तथा प्रतिफल-त्रिगुणाधिकार एवं त्रितापमुक्ति है।

गायत्री माता में सन्निहित चौबीस अक्षरों में सन्निहित शक्तियों का अलग-अलग विवेचन किया गया है, परन्तु ध्यातव्य है कि सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति एक ही है, जिनके क्षेत्रान्तर्गत जड़-चेतन अनेक शक्तियाँ क्रियाशील हैं। चौबीस शक्तियों की सम्मिलित रूप महाशक्ति गायत्री हैं। जिनके विभिन्न शक्तिस्वरूप हैं। प्रत्येक की अपनी विशिष्ट क्षमतायुक्त महिमा है, जो विभिन्न धाराओं में प्रवाहित हैं परन्तु उनका मूल उद्गम एक ही है। जिस प्रकार शरीर में स्थित हृदय 72 हजार नाड़ियों को रक्त प्रदान करता है किन्तु प्रत्येक नाड़ी का अपना स्वरूप और उत्तरदायित्व है। उसी प्रकार चौबीस शक्ति धाराएँ अपने मुख्यालय महाशक्ति से जुड़ी रहने पर भी अपने-अपने क्षेत्र में क्रियाशील हैं तथा सम्बद्ध साधक को मनोवांछित फल प्रदान करती हैं।

24 शक्ति प्रवाहों की गंगा गायत्री

सभी शक्तियों का शक्तिपोषण महाशक्ति करती हैं। अतः आदिशक्ति गायत्री विश्वचेतना की प्रेरणापुंज हैं, जो चौबीस शक्ति प्रवाहों की गंगोत्री हैं।

गायत्री मंत्र जप से 24 देवी शक्तियों की आराधना हो जाती है, इसलिये गायत्री की महिमा का बखान शास्त्रों ने किया है। मानस में संत तुलसीदास ने भी इन शब्दों से इसे सम्पुष्ट किया है:-

आखर चौबीस परम पुनीता।
गावहिं वेद संत अरु गीता।।

दैनिक पूजा-आराधना, अनुष्ठान एवं पुरश्चरण, दक्षिण मार्गी एवं वाममार्गी विधिविधान से किया जाता है। अभीष्ट फल प्राप्ति के लिए अलग-अलग बीजमंत्र से साधना की जाती है।

बीजमंत्र लगाने का स्थान-संपुट पाठ

मंत्र का संक्षिप्त रूप बीज मंत्र कहलाता है। काम विस्तार बीज में सन्निहित रहता है। गायत्री के तीन चरण के तीन बीज हैं- भूः भुवः स्वः। इन व्याहृतियों का बीज है ''ॐ''। गायत्री के 24 अक्षर का भी एक-एक बीज है। प्रत्येक अक्षर में सार शक्ति सन्निहित है। तांत्रिक प्रक्रिया में बीज मंत्र को साधारणतः प्रयोग किया जाता है। एक या कई बीजों समेत उपासना की जाती है। 24 अक्षरों के 24 बीज निम्नांकित है-

(1) ॐ (2) ह्रीं (3) श्रीं (4) क्लीं (5) हों (6) जूं (7) यं (8) रं (9) लं (10) वं (11) शं (12) सं (13) ऐं (14) क्रों (15) हुं (16) हलीं (17) पं (18) फं(19) टं (20) ठं (21) डं (22) ढं (23) क्षं (24)लूं।

भूःभुवःस्वः के पश्चात् तत्सवितुः से पहले का स्थान बीज लगाने का स्थान है। प्रचोदयात् के पश्चात् भी इन्हें लगाया जाता है। इस

प्रक्रिया को सम्पुट जप कहते हैं। सम्पुट में किसे कहाँ लगाना चाहिए, इसके लिये किसी विज्ञ के निर्देशन में सम्पुट का सम्पादन करना चाहिए। इसके प्रत्येक बीज मंत्र का अपना यंत्र है। तंत्रसाधना में बीज यंत्र की स्थापना की जाती है।

गायत्री मंत्र के 24 अक्षरों को 24 देवताओं का बीज माना गया है। प्रत्येक अक्षर से एक देवता सम्बन्धित हैं। इस महामंत्र को 24 देवताओं का संयुक्त परिवार कहा जाता है। गायत्री संहिता में कहा गया है–

गायत्र्यां वर्णमेककं साक्षात् देवरूपकम्।
तस्मात् उच्चारणस्तस्य त्राणमेव भविष्यति।।

गायत्री का प्रत्येक अक्षर देवता स्वरूप है।

देवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः।
आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम्।।
तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम्।
सावित्रं पंचमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम्।।
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम्।
नवमं भगदैत्यं दशमं चौर्यमैश्वरम्।।
गणेशमेकादशकं त्वाष्टं द्वादशकं स्मृतम्।
पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैंद्राग्नं च चतुर्दशम्।।
वायव्यं पंचदशकं वामदैव्यं च षोडशम्।
मैत्रावरुण दैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम्।।
अष्टादशं वैश्वदेवमुनविंशतिमातृकम्।
वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम्।।
एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम्।
त्रयोविशं च कौबेरमाश्विनं तत्त्वसंख्यकम्।।
चतुर्विंशतिवर्णानां दैवतानां च संग्रहः।

24 अक्षरों में निहित्त 24 देवताओं के नाम

(1) अग्नि (2) प्रजापति (3) चन्द्रमा (4) ईशान (5) सावित्री (6) आदित्य (7) बृहस्पति (8) मित्रावरुण (9) भग (10) ईश्वर (11) गणेश (12) त्वष्टा (13) पूषा (14) इन्द्राग्नि (15) वायु (16) वामदेव (17) मैत्रावरुण (18) वैश्वदेव (19) मातृक (20) विष्णु (21) वसुगण (22) रुद्रगण (23) कुबेर (24) अश्विनीकुमार।

गायत्री ज्ञान की महिमा

साधना विज्ञान की दृष्टि से गायत्री मंत्र का हर अक्षर बीज मंत्र है। प्रत्येक अक्षर का अपने आप में स्वतंत्र अस्तित्त्व है। गायत्री एक गुलदस्ता के समान है, जिसमें 24 पुष्प हैं, जिनकी अपनी-अपनी महत्ता और सत्ता है। समन्वित रूप में यह एक महाशक्ति है। गायत्री एक ऐसी औषधि है, जो बहुमूल्य शक्तितत्त्व युक्त है। यद्यपि गायत्री के हर अक्षर का महत्त्व अपना-अपना है, किन्तु समन्वित शक्ति के रूप में जब यह प्रकट होती है, तब इनकी शक्ति असीम हो जाती है। गंगोत्री से आरम्भ होकर गंगा की निर्मल धारा में विभिन्न प्रदेशों की मिट्टी, वायु, वनस्पति, रासायनिक पदार्थ घुलकर गंगा-जल को पवित्र और पुष्टिदायक बना देते हैं। उसी प्रकार 24 अक्षरों के 24 तत्त्वों का सम्मिश्रण हो जाने से अन्तः आकाश में एक विद्युन्मयी सूक्ष्म सरिता प्रवाहित हो जाती है। इसी अध्यात्म गंगा का नाम गायत्री है। जिस प्रकार गंगा नदी में स्नान से शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है, उसी प्रकार अन्तः आकाश वाहिनी विद्युन्मयी गायत्री शक्ति के प्रवाह से आन्तरिक, बाह्य, आत्मिकबल एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। आन्तरिक जागृति का उद्भव होता है, जो स्वसंचालित क्रिया से मनुष्य को आध्यात्मिक-विकासोन्मुखी बना देती है। उपासक

असाधारण शक्ति से सम्पन्न होकर मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर होता है।

गायत्री 24 शक्तिधाराओं का एकीकरण है, जो अपनी–अपनी विशेषताओं से युक्त है। गायत्री प्रवाह में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रवाह सन्निहित हैं, इसलिये भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उपलब्धियाँ गायत्री उपासना से सम्भव हैं।

तत्त्वज्ञानियों ने गायत्री मंत्र में निहित तथ्यों को खोज निकाला है, तथा उनका शोध निष्कर्ष है कि –

24 अक्षर 24 शास्त्र

1. ब्रह्मविज्ञान के 24 महाग्रंथ हैं–4 वेद, 4 उपवेद, 4 ब्राह्मण, 6 दर्शन, 6 वेदान्त।

तत्त्वज्ञानियों का मत है कि 24 अक्षरों के व्याख्या के लिये 24 शास्त्रों की रचना हुई है।

गायत्री की 24 देवी शक्तियाँ

गायत्रीशास्त्र ने 24 शक्तिधाराओं के स्वरूप का निर्धारण किया है। तत्त्व दृष्टि सामान्यजन के पास नहीं हो सकती है। अत: तत्त्वदर्शन के प्रतीक प्रतिमाओं के माध्यम से शक्ति स्वरूप का निर्धारण शास्त्र में किया गया है। उनके स्थूलदर्शन से प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्म भावों का संचार होता है, जिसकी परिणति श्रद्धा और भक्ति के रूप में हो जाती है। उनके वाहन और आयुध भी प्रतीकात्मक होते हैं तथा मनुष्य के लिये प्रेरणादायक होते हैं।

मनुष्य का अन्तर्जगत विलक्षण शक्तियों का आगार है। उन शक्तियों का जागरण गायत्री महामंत्र द्वारा होता है। ये गायत्री महामंत्र के 24 अक्षर 24 दैवी शक्तियों के प्रतिष्ठान हैं, इनमें से प्रत्येक प्रतिष्ठान में शक्तियाँ और सिद्धियाँ भरी हुई है, जिनको प्राप्त कर ईश्वरीय तत्त्वों का अधिकारी बना जा सकता है। प्रमाणस्वरूप–

चतुर्विंशाक्षरी विद्या परं तत्त्व विनिर्मिता।
तत्कारात् यात्कारं पर्यन्तं शब्द ब्रह्म स्वरूपिणी।।

'तत्' शब्द से 'प्रचोदयात्' शब्द पर्यन्त 24 अक्षरोंवाली गायत्री पराविद्या से ओत-प्रोत है। यद्यपि दैवी शक्तियाँ निराकार हैं। फिर भी उनसे सम्बन्ध स्थापित करने, आकर्षित करने, अपने अन्दर धारण करने के लिये जो उपासना की जाती है, वह निराकार रूप में सम्भव नहीं है। इसलिए उनके रूप की कल्पना की जाती है। उपासकों की सफलता के लिये स्वरूप की कल्पना की गई है।

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।
उपासकानां सिद्धयर्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना।।

संसार में मातृ स्नेह और मातृवात्सल्य सबसे उत्कृष्ट होता है। गायत्री माता हैं, जिनके 24 स्वरूप हैं, उनसे सम्बन्ध स्थापित कर मनोवांछित फल की प्राप्ति की जा सकती है। मात्र बुद्धि प्राप्त होना एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक सफलता है। इसका अगला सोपान है- मातृ सेवा, जिसे उपासना की संज्ञा दी गयी है। उपासना गायत्री माता की वात्सल्यमयी अवदान लेकर आती हैं और साधक पर ऐश्वर्य की वर्षा करती हैं, आध्यात्मिक उपलब्धियों से उनके भण्डार को भर देती हैं।

24 देवी-शक्तियों का स्वरूप

(1) आदिशक्ति—एक मुख, दो हाथ, सहज छवि, हाथों में पुस्तक एवं जल कमण्डल। ये सद्ज्ञान एवं श्रद्धा स्नेहयुक्त पात्रता के प्रतीक हैं। वाहन हंस है जो नीर-क्षीर विवेक का प्रतीक है। यह उज्ज्वलता का भी प्रतीक है। आदिशक्ति की आराधना से व्यक्ति में विवेक का आविर्भाव होता है और विवेकी का उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित है।

(2) ब्राह्मी—चार मुख, चार हाथ। चतुर्मुखी ब्राह्मी देवी शक्ति, प्रतिभा, ईमानदारी, जिम्मेदारी और वीरता आदि वृत्तियों के भाव को मनुष्य में जागृत करती हैं। देवी के चार हाथ, चार पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रतीक हैं। तीन हाथों में क्रमशः पुस्तक, माला, कमण्डल धारण करती हैं तथा चौथा हाथ आशीर्वादी मुद्रा में है। पुस्तक से वेदज्ञान, माला से ध्यान, कमण्डल से करुणभाव की प्राप्ति होती है। आशीर्वाद मुद्रा से ब्राह्मी देवी शक्ति सतत् मानव को सुख समृद्धि का आशीर्वाद देती हैं। वाहन हंस है जो शुभ का प्रतीक है।

(3) वैष्णवी—एक मुख, चार हाथ। चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करती हैं। शंख वायुमंडल में विद्यमान नकारात्मक शक्तियों का नाश करता है। भागवत पुराण में उल्लेख है कि जहाँ शंख ध्वनि होती है वहाँ लक्ष्मी का वास होता है। शंख लक्ष्मी का भ्राता है। ऐसी भी मान्यता है कि शंख नकारात्मक शक्तियों को नष्ट कर देता है। चक्र से सृष्टि चक्र का बोध होता है और यह अनुशासन का भी प्रतीक है। चक्र दुष्ट संहारक है। गदा से शक्ति का बोध होता है, जो सुव्यवस्था एवं निर्माण का प्रतीक है। कमल निर्मलता और दिव्यता का प्रतीक है। वैष्णवी शक्ति का वाहन गरुड़ है। वाहन गति का प्रतीक है, वह सदा चलते रहने का संकेत देता है।

(4) शाम्भवी—मस्तक पर गंगा और द्वितीया का चन्द्र। यह सद्ज्ञान एवं मानसिक शान्ति का प्रतीक है। इनके चार हाथ हैं। तीन हाथों में त्रिशूल, डमरु, कमण्डल है, चौथा हाथ आशीर्वाद मुद्रा में है। त्रिशूल मनुष्य के तीन शत्रु-वासना, तृष्णा, अहंकार का नाश करता है। डमरु विश्व कल्याण का भाव उद्घाटित करता है। कमण्डल पात्रता का प्रतीक है। आशीर्वाद मनोकामना की पूर्ति का प्रतीक है।

(5) वेदमाता—एक मुख, चार हाथ। चारों हाथ में चारों वेद है। ब्राह्मी चेतना से निःसृत ज्ञान की चार धाराओं का बोध इनसे होता है।

(6) देवमाता—एक मुख और दो हाथ। मात्र भावयुक्त इनकी छवि है। इनकी गोद में बालक है। बालक देवत्व का प्रतीक है। दूसरा हाथ आशीर्वाद मुद्रा में है। ये आसन पर विराजमान हैं, जो सुव्यवस्था का प्रतीक है।

(7) विश्वमाता—एक मुख चार हाथ। एक हाथ में शंख है, जो जागरूकता का प्रतीक है। दूसरे हाथ में कमण्डल, जो धारणाशक्ति का प्रतीक है। तीसरे हाथ की अंगुली उठी रहती है, जो एक ओंकार की सर्वव्यापकता की ओर इंगित करती है। चौथा हाथ आशीर्वाद मुद्रा में है। आसन भूमण्डल है, जो विश्वबन्धुत्व का बोध कराता है।

(8) ऋतम्भरा—एक मुख, चार हाथ। एक हाथ में दीपक, दूसरे में श्रीफल, तीसरे हाथ में माला तथा चौथा हाथ आशीर्वाद मुद्रा में है। दीपक प्रज्ञा-विवेक और ज्ञान ज्योति का प्रतीक है। श्रीफल श्रेष्ठ प्रतिफल-सत् परिणाम का प्रतीक है। माला प्रभु का सतत् स्मरण का प्रतीक है। आसन-सहस्त्र दल कमल अध्यात्म के उच्चासन का प्रतीक है।

(9) मन्दाकिनी—एक मुख, चार हाथ। एक हाथ में कमल है, जो सौम्यता तथा निर्मलता का प्रतीक है। दूसरे हाथ में जलपात्र है, जो दिव्यभाव धारण करने का प्रतीक है। तीसरे हाथ में पुस्तक है, जो ज्ञान प्रवाह का तथा चौथे हाथ में माला जो सतत् ध्यान का बोध कराता है। इनका आसन मगर है, जो विघ्न बाधाओं को पार करने की क्षमता का प्रतीक है।

(10) अजपा—एक मुख, चार हाथ। इनके नेत्र अर्धनिमीलित हैं, जो अन्तर्दृष्टि का प्रतीक है। चार हाथों में से दो ध्यान मुद्रा में हैं, जो अन्त:करण की गहराइयों में जाने का तथा समझने को संकेतित करता है। तीसरे हाथ में माला है, जो प्रभु को सतत् स्मरण करने का निर्देश देता है। चौथे हाथ में कमल है, जो शुचिता का प्रतीक है।

(11) **ऋद्धि**—एक मुख, दो हाथ। दायें हाथ में चवँर है, जो मनुष्य के विकारों के निवारण को दर्शाता है। बायें हाथ में मोदक है, जो यह बतलाता है कि भौतिक लाभ गौण है।

(12) **सिद्धि**—एक मुख, दो हाथ। बायें हाथ में मोदक है, जो भौतिक साधन का बोध कराता है, दायें हाथ में चवँर है, जो अनिष्ट विचारों का निवारण करती है। स्वावलम्बी और तत्परता की मूर्ति खड़ी मुद्रा में स्थित हैं।

(13) **सावित्री**—पाँच मुख तथा दस हाथ। पाँच मुख पंचकोशों, पंचतत्त्वों तथा पंचप्राणों के प्रतीक हैं। आत्मा पर पाँच आध्यात्मिक आवरण है। प्रत्येक आवरण को कोश कहते हैं। अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश तथा आनन्दमयकोश को पंचकोश कहते हैं, जिनका तात्त्विक परिष्कार कर परमब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। मानव शरीर पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु-पंचतत्त्वों से बना है, जिनका परिष्कार कर स्वस्थ जीवन प्राप्त किया जा सकता है। पंचप्राण- प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान हैं, जिनके नियमन से अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है। इनके दस हाथ, दस दिशाओं एवं दस इन्द्रियों के प्रतीक हैं। आयुध-शंख से जागरूकता, अंकुश से आत्मानुशासन, चाबुक से निरालस्यता, चक्र से गतिशीलता, गदा से शक्ति, पात्र से धारण क्षमता का बोध होता है। हाथ में कमल है, जो सुसंस्कारिता का प्रतीक है। एक हाथ दान मुद्रा में है जो देवत्व का प्रतीक है। एक हाथ आशीर्वाद मुद्रा में है, जिससे देवी कृपा सुलभ है।

कमलासन पर विराजमान हैं, जो प्रफुल्लित विकासवान् मनोभूमि की ओर इंगित करता है।

(14) सरस्वती—एक मुख, चार हाथ-उल्लासपूर्ण हर्षित छवि। दो हाथों में वीणा जो कला का प्रतीक है, एक हाथ में पुस्तक धारण करती हैं। पुस्तक ज्ञान का प्रतीक है। चौथा हाथ परामुद्रा में है। वाहन मयूर है, जिसका पंख मनोहारिणी सौन्दर्य का प्रतीक है।

(15) लक्ष्मी—एक मुख, चार हाथ। ये दूरदर्शिता, दृढ़संकल्प, श्रम एवं आस्था के प्रतीक हैं। दो हाथों में कमल हैं, जो निर्मलता, कोमलता के प्रतीक हैं। एक हाथ दान मुद्रा में है। दान धर्म का एक लक्षण है। इसलिए इसे दान का प्रतीक माना जा सकता है। एक आशीर्वाद मुद्रा में है, जो मनुष्य को अभय प्रदान करता है। इनका वाहन उल्लू है। यह रात में ही देख सकता है। अतः गहन अंधकार को चीर कर प्रकाश को पाने का प्रतीक है।

(16) महाकाली—एक मुख चार हाथ। मुख आकृति विकराल है। यह मुखाकृति असामाजिक तत्त्वों को भयाक्रांत करने वाली है। श्री दुर्गासप्तशती एकादश अध्याय में उनके विकराल मुखमंडल का वर्णन किया गया है-

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तुते।।

दाढ़ो के कारण महाकाली विकराल रूपवाली हैं, मुण्डमाल से विभूषित हैं, मुण्डमर्दिनी चामुण्डा रूप है उनका। मुण्डमाल के कारण ये भयंकरस्वरूपा हैं। महाकाली नास्तिकों के हृदय में महाभय का संचार करती हैं।

एक हाथ में खड्ग है, जो दुर्वृत्तियों का संहारक है। एक हाथ अभय मुद्रा में है, देवी सत् पुरुषों को अभय प्रदान करती है। तृतीय हाथ में नरमुण्ड तथा चतुर्थ हाथ में खप्पड़ है। रास्ते में पड़े हुए शिव पर पैर पड़ जाने पर अचम्भित मुद्रा में दृष्टिगत होती हैं। यह इंगित करता है कि शिवत्व की मर्यादा की रक्षा हर हालत में होनी चाहिए।

(17) कुण्डलिनी—एक मुख, चार हाथ। तीन हाथों में क्रमशः बाँसुरी, सर्प, कमण्डल है, चौथा हाथ आशीर्वाद मुद्रा में है। बाँसुरी सुषुप्तावस्था से जागृतावस्था को प्राप्त कराने का प्रतीक है। सर्प मानव शरीर में विद्यमान असमान शक्ति को जागृत करने का प्रतीक है। कमण्डल शुभ शक्तियों को धारण करने का प्रतीक है। आशीर्वाद मुद्रा से लोकहित के लिये प्रतिबद्धता का बोध होता है। उनका वाहन कछुआ है, जो दीर्घायु का प्रतीक है। क्योंकि कछुओं की आयु लम्बी होती है।

(18) ज्वालामुखी—प्राणादि-एक मुख, चार हाथ। एक हाथ स्त्रुवा धारण किए हैं, जो यज्ञकार्य का प्रतीक है। अंकुश शक्ति के नियंत्रण की क्षमता का प्रतीक है। श्रीफल- यज्ञकर्म की पूर्णाहुति श्रीफल से की जाती है। इसलिए श्रीफल पूर्णता प्रदान करने के संकल्प का प्रतीक है। एक हाथ आशीर्वाद मुद्रा में है, जो "सर्वेभवन्तु सुखिनः" की ओर संकेत करता है। आसन पर विराजमान हैं। आसन यज्ञकुण्ड शक्ति के यज्ञार्थ-लोकहितार्थ उपयोग की प्रतिबद्धता है। आसन पर विराजमान ज्वालामुखी 'सर्वजन हिताय सर्वजनसुखाय' की देवी शक्ति हैं।

(19) भुवनेश्वरी—एक मुख चार हाथ। एक हाथ में अंकुश और दूसरे हाथ में पाश है, दाहिने दोनों हाथों में एक अभय मुद्रा और दूसरा वरमुद्रा में है।

अंकुश नियंत्रण का प्रतीक है और पाश पापियों को बांधने का प्रतीक है। आसन-शासनपीठ सर्वोच्च सत्ता का प्रतीक है।

(20) भवानी—एक मुख आठ हाथ। भवानी के स्वरूप की दुर्गा के रूप में भी मान्यता है। शंख, गदा, पद्म, बंदमुट्ठी, चक्र, तलवार, पाश तथा आशीर्वाद मुद्रा से सुसज्जित आठ हाथ। शंख से

भद्रजन की सहायता का उद्घोष-प्रतीक है। गदा शक्ति का प्रतीक है, पद्म निर्विकारिता, बंदमुट्ठी संगठन, चक्र से गति, तलवार से दोषनाश, पाश से आसुरीशक्ति को बान्धने तथा आशीर्वाद मुद्रा से सज्जनों को आश्वस्त करने का भाव है। आश्वस्त करने के भाव के प्रतीक ये सभी आयुध हैं। वाहन सिंह है, जो शौर्य का प्रतीक है।

भवानी की दुर्गा के रूप में आराधना की जाती है, जो उनका ध्यानस्वरूप है-

'ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्र गदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे।।

दुर्गा देवी तीन नेत्रोंवाली हैं। श्रीअंगो की प्रभा विद्युत के समान है। वे सिंह के कन्धे पर बैठी हुई भयंकर प्रतीत होती हैं। चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किए हुए हैं। दुर्गास्वरूप उनके दस हाथ हैं। आठ आयुधों के अतिरिक्त दो हाथों में दो और आयुध हैं- घण्टा और त्रिशूल। घण्टा नाद से भगवती दुर्गा पौरुष को जगाती हैं, और त्रिशूल से त्रिताप का नाश करती हैं।

नवरात्र की अवधि में भगवती दुर्गा की विशेष रूप से आराधना की जाती है। वर्ष में चार नवरात्र का विधान शास्त्र में है। शारदीय नवरात्र, आश्विन मास के शुक्लपक्ष प्रतिपदा से नवमी तक पूजा का विधान है और दशमी को विसर्जन किया जाता है। चैत्र में वासंती नवरात्र चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त, आषाढ़ शुक्लपक्ष प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त तथा माघशुक्ल प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त ये तीन नवरात्र शारदीय नवरात्र के अतिरिक्त मनाये जाते हैं। उनके साथ ही लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा भी की जाती है। भगवती दुर्गा कई

रूपों में पूजित हैं। उनका वैष्णवी रूप है और वे वराही रूप धारिणी भी हैं। वैष्णवी रूप में-

शङ्ख चक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तुते।।

वराह रूपिणी रूप में -

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तुते।।

नृसिंह रूप में भी भगवती दुर्गा की आराधना की जाती है।

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तुते।।

इस रूप में भगवती भयंकर नृसिंह रूप में दैत्यों के वध के लिये उद्योग करने वाली तथा त्रिभुवन की रक्षा में संलग्न रहने वाली नारायणी रूप हैं। सभी रूपों में दुर्गा भगवती सभी काल में पृथ्वीलोक में असुर शक्तियों का नाश करती हैं।

(21) अन्नपूर्णा—अन्नपूर्णा के एक मुख चार हाथ है। चारों हाथों में अन्नपात्र और चम्मच धारण की हुई हैं। चारों अन्नपात्र अन्नदान के हेतु हैं। आसन-देवपीठ का प्रतीक हैं

(22) महामाया—एक मुख, चार हाथ। एक हाथ इंगित करता है, दूसरे हाथ में श्रीफल है, तीसरे हाथ में पाश है, चौथे हाथ में दण्ड है। इंगित वाला हाथ देवानुशासन का संकेत करता है। अनुशासन मानने पर मनुष्य को श्रीफल अर्थात् श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है। पाश प्रतीक है- मर्यादा तोड़ने पर पाशबद्ध होने का। दण्ड से-दण्ड भोगने का बोध होता है। दुर्गासप्तशती के प्रथम अध्याय में देवी शक्ति महामाया का जो रूप वर्णन किया गया है-

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।।

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।।

जगदीश्वर भगवान् विष्णु की योगनिद्रा जो भगवती महामाया हैं, उन्हीं से यह जगत् मोहित हो रहा है। ये भगवती महामाया देवी ज्ञानियों के चित्त को भी बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती हैं। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को मुक्ति के लिये वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या, संसार बन्धन और मोक्ष की हेतुभूता सनातनी देवी हैं तथा सम्पूर्ण देवों की अधीश्वरी देवी हैं। अतः महामाया, माया-मोह से ग्रसित व्यक्ति को उबार सकती हैं। प्रसन्न होने पर मुक्ति के लिये वरदान देती हैं, वे सर्वेश्वरी हैं। इनका वाहन हंस है जो हित-अहित निर्धारण के विवेक का प्रतीक है।

(23) पयस्विनी—एक मुख, चार हाथ। तीन हाथों में कलश, कमल और कमण्डल है। कलश से दुग्धपान की प्राप्ति होती है, जो पोषण के लिये आवश्यक है। अतः कलश पोषण के दिव्य क्षमता का प्रतीक है। कमल से सुसंस्कारिता का बोध होता है। कमण्डल से वैराग्य का ज्ञान होता है। चौथा हाथ आशीर्वाद मुद्रा से भक्तवत्सलता का परिचय देता है। आसन कमल का अर्थ कलुषित विचारों से मुक्ति।

(24) त्रिपुरा—तीन मुख प्रतीक हैं तीन सृष्टि के, त्रिगुण के और त्रिकाल के ''चार हाथों में त्रिशूल से त्रिताप नाश का, फल से श्रेष्ठ परिणाम प्राप्ति का, कमण्डल से पात्रता का और आशीर्वाद मुद्रा से दिव्य अनुदान का बोध होता है'' वाहन हंस उज्ज्वलता का प्रतीक है। गायत्री एक हैं किन्तु महाशक्ति के रूप में चौबीस देवी शक्तियों का समुच्चय हैं। एक या एक से अधिक देवी शक्तियों की

उपासना एक साथ सम्भव है और एक साथ सर्वसिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। इनमें से प्रत्येक शक्ति अनन्त फलप्रदा है। आर्तभाव से एकाग्रचित्त होकर साधना करने पर साधक भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को निश्चित रूप से प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता है मातृबुद्धि को अपने में धारण करने और माता गायत्री की शरण में अपने को समर्पित करने की।

जिस प्रकार त्रिपदा गायत्री के ब्राह्मी, वैष्णवी और शाम्भवी तीन रूप हैं तथा साधना का समय और विधान पृथक-पृथक है, उसी प्रकार गायत्री के प्रत्येक अक्षर की पूजा पद्धति भी अलग-अलग है।

साधक के स्वभाव, संस्कार और भाव को ध्यान में रखकर मार्गदर्शक साधना विधान का निर्धारण करते हैं।

वाममार्गी साधना में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है, किन्तु दक्षिणमार्गी साधना सरल होने के कारण सर्वसुलभ है। मानवीय त्रुटि हो सकती है, किन्तु न्यूनाधिक फल की प्राप्ति अवश्य होगी।

अतः गायत्री माता की आराधना-उपासना सर्वविध मंगलप्रदा है।

24 अक्षरों की 24 ग्रन्थियाँ

मनुष्य शरीर शक्तियों का भंडार है। गायत्री इन शक्तियों को जागृत करती हैं। गायत्री के 24 अक्षर क्रमशः इस प्रकार हैं- 1. तत् 2. स 3. वि 4. तुर 5. व 6. रे 7. ण 8. यं 9. भर्गो 10. दे 11. व 12. स्य 13. धी 14. म 15. हि 16. धि 17. यो 18. यो 19. नः 20. प्र 21. चो 22. द 23. या 24. त्।

शरीर में 24 ग्रंथियाँ हैं—1. तापिनी 2. सफला 3. विश्वा 4. तुष्टि 5. वरदा 6. रेवती 7. सूक्ष्मा 8. ज्ञाना 9. भर्गो 10. गोमती 11. देविका 12. वराही 13. सिंहनी 14. ध्याना 15. मर्यादा 16. स्फुटा 17. मेधा 18. योगमाया 19. योगिनी 20. धारिणी 21. प्रभवा 22. उष्मा 23. दृश्या 24. निरंजना।

गायत्री के अक्षर ग्रंथियों के नाम एवं शक्ति की समन्वय तालिका-

01	तत्	तापिनी	सफलता
02	स	सफला	पराक्रम
03	वि	विश्वा	पालन
04	तुर्	तुष्टि	कल्याण
05	व	वरदा	योग
06	रे	रेवती	प्रेम
07	ण	सूक्ष्मा	धन
08	यं	ज्ञाना	तेज
09	भर्	भर्गा	रक्षा
10	गो	गोमती	बुद्धि
11	दे	देविका	दमन
12	व	वराही	निष्ठा
13	स्य	सिंहनी	धारणा
14	धी	ध्याना	प्राण
15	म	मर्यादा	संयम
16	हि	स्फुटा	तप
17	धि	मेधा	दूरदर्शिता
18	यो	योगमाया	जागृति
19	यो	योगिनी	उत्पादन
20	नः	धारिणी	सरसता
21	प्र	प्रभवा	आदर्श
22	चो	उष्मा	साहस
23	द	दृश्या	विवेक
24	यात्	निरंजना	सेवा

गायत्री के 24 अक्षर जब तापिनी, सफला, विश्वा आदि ग्रंथियों को गुदगुदाते हैं, तो इनमें भरी हुई शक्तियों को वे साधक में जागृत

करती हैं। सफलता, पराक्रम, पालन, कल्याण, योग, प्रेम, घना, तेज, रक्षा, बुद्धि, दमन, निष्ठा, धारणा, प्राण, संयम, तप, दूरदर्शिता, जागृति, उत्पादन, सरसता, आदर्श साहस, विवेक, सेवा के भाव तेज हो जाते हैं। इनके अलग-अलग और सम्मिलित शक्ति भाव साधक को अभीष्ट प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर करा देता है। सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम अलभ्य लाभ के रूप में प्राप्त हो जाता है। विवेक, तेज, संयम आदि सद्‌गुण साधक को आदर्श जीवन प्रदान करता है। अज्ञान, आसक्ति और अभाव के कारण दुःखी जीवन सुखमय हो जाता है।

गायत्री महामंत्र की उपासना से आत्मिक कायाकल्प हो जाता है। सतोगुणी तत्त्वों का विकास होने लगता है। दुर्गुण, कुविचार, दुःस्वभाव, हीनभावना के स्थान पर उत्साह, सत्यनिष्ठता, संतोष, शान्ति, श्रमशीलता आदि सद्विचार का उदय साधक के मन में स्वतः हो जाता है और वह जीवन में नया कलेवर प्राप्त करने में सफल हो जाता है। विवेक तत्त्व ज्ञान एवं सद्‌बुद्धि से अज्ञानजन्य दुःखों का निवारण हो जाता है। जीवन में सुख दुःख का चक्र चलता ही रहता है। जो गायत्री का नियमित रूप से जप करता है वह सांसारिक दुःखों को अपने आत्मबल से झेल लेता है। दुःखों में भी वह धैर्य एवं साहस नहीं खोता है।

गायत्री मंत्र दैवी शक्ति

गायत्री केवल मंत्र ही नहीं है। यह दैवी शक्ति है। ईश्वरी कृपा प्राप्त करने का विश्वसनीय साधन है। गायत्री की उपासना से ईश्वरीय कृपा प्राप्त होती है। गायत्री त्रिगुणात्मक है। उनकी उपासना से सत्‌गुण बढ़ता है तथा रजोगुणी शक्ति के आविर्भाव से मनुष्य की सुप्त शक्तियाँ जागृत होकर सांसारिक जीवन के संघर्ष में अनुकूल परिस्थितियाँ बनाती हैं। उत्साह, साहस, आशा, अवसर पहचानने की

शक्ति एवं कर्मशीलता आदि सद्गुण मनुष्य में आते हैं। आशातीत परिवर्तन के फलस्वरूप कायाकल्प हो जाता है।

विपत्ति और विपरीत परिस्थितियों से उबरने के लिए धैर्य, साहस, विवेक और प्रयत्न की आवश्यकता है। विपत्ति में फँसे व्यक्ति यदि गायत्री की साधना करें तो निश्चित रूप से गायत्री द्वारा इन तत्त्वों का उद्भव साधक के मन में होगा और मुसीबतों का मुकाबला करने की क्षमता आ जाएगी।

अध्याय
६

गायत्री महिमा

गायत्री महिमा

मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिये शास्त्रों में वर्णित साधना के सर्वोत्तम एवं सुलभ साधनों में गायत्री साधना का मार्ग श्रेष्ठतम है। वैदिक युग से आज तक महापुरुषों द्वारा गायत्री की महिमा का बखान किया गया है।

गायत्री का प्रभाव

गायत्री अनन्त ज्ञान सागर है, इस ज्ञान सागर के गर्भ में जो कुछ है, वह इतना परिमार्जित और सारगर्भित है कि मनुष्य यदि भलीभाँति समझ कर अपने जीवन में उसका सदुपयोग करें तो मनुष्य का लोक-परलोक सब प्रकार से सुख-शान्ति सम्पन्न हो सकता है। गायत्री का सन्देश आध्यात्मिक एवं सासांरिक दोनों दृष्टियों से अत्यधिक सहयोगी एवं उपयोगी है। गायत्री साधना मनुष्य को सत्, चित्त, आनन्द एवं पवित्रत्ता के भाव से परिपूर्ण कर देती है। महाभारत में भीष्म पितामह ने गायत्री के प्रभाव का वर्णन किया हैः-

यानपात्रे च याने च प्रवासे राजवेश्यति।
परां सिद्धिमाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन्।।
न च राजभयं तेषां न पिशाचान्न राक्षसान्।
नाग्न्यम्बुपवन व्यालाद्भयं तस्योपजायते।।
चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमस्य विशेषतः।
करोति सततं शान्ति सावित्रीं यं पठ्यते।।

नाग्निर्दहति काष्ठानि सावित्री यं पठ्यते।
न तेषां बालोम्रियते न च तिष्ठति पन्नगाः।।
न तेषां विद्यते दुःखं गच्छन्ति परमां गतिम्।
ये शृण्वन्ति महद्ब्रह्म सावित्री गुणकीर्तनम्।।
गवां मध्ये तु पठतो गावोऽस्य बहु वत्सलाः।
प्रस्थाने वा प्रवासे वा सर्वावस्थां गतः पठेत्।।

जो व्यक्ति सावित्री का जप करते हैं, उनको धन, पात्र, गृह सभी भौतिक वस्तुएँ सुलभ होती है। उन्हें राजा, दुष्ट, राक्षस, अग्नि, जल, वायु और सर्प किसी से भय नहीं लगता। जो लोग इस उत्तम गायत्री मंत्र का जप करते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णो एवं चारों आश्रमों में सफल रहते हैं। जिस स्थान पर गायत्री का पाठ किया जाता है, उस स्थान में अग्नि काष्ठों को हानि नहीं पहुँचाती। बच्चों की आकस्मिक मृत्यु नहीं होती, न ही वहाँ सर्प रहते हैं। जो लोग गायत्री के गुणों से भरे वेद को ग्रहण करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट एवं क्लेश नहीं होता है तथा जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। गायों के बीच गायत्री का पाठ करने से गौओं का दूध अधिक पौष्टिक होता है। घर हो अथवा बाहर चलते-फिरते सदा ही गायत्री का जप करना चाहिए। गायत्री बुद्धि को शुद्ध करती हैं। मनुष्य को सात्त्विक और ऐश्वर्यवान् बनाती है।

विभूतियों का भण्डार गायत्री

विभूतियों का भण्डार गायत्री श्रेष्ठ विभूतियों का महाभण्डार है। माता गायत्री के श्रीमुख से परिचयात्मक ये शब्द उद्भासित करते हैं, कि इस सृष्टि में जो कुछ भी श्रेष्ठ है, वह सभी माता में विद्यमान है। वह वात्सल्यमयी माता अपने पुत्रों को यह आत्मभाव प्रदान करती है:-

अहं बुद्धि रहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा।।

कान्तिः शान्तिः पिपासा च निद्रा तन्द्रा जराजरा।
विद्याविद्या स्पृहा वांछा शक्तिश्चाशक्तिरेवच।।
वसा मज्जा च त्वक् चाहं दृष्टिर्वागनृतानृता।
परामध्या च पश्यन्ती नाड्येऽहं विविधाश्च याः।
किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि।
सर्वमेवाहमित्येव निश्चयं विद्धि पद्मज।।

माता गायत्री का कथन है-मैं क्या नहीं हूँ? इस संसार में मेरे सिवाय और कुछ नहीं है। बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वांछा, शक्ति, अशक्ति, वसा,, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, असत्, सत्, वाणी, परा, मध्यमा, नाड़ी संस्थान आदि निश्चय ही सबकुछ मैं हूँ।

माँ गायत्री सद्बुद्धि के साथ ही ब्रह्मपद भी प्रदान करती हैं।

देवाधिदेव महादेव गायत्री को वेदमाता कहते हैं। वही आदिशक्ति हैं, वही विश्व की जननी हैं। मैं उन्हीं गायत्री की उपासना करता हूँ। भगवान महादेव ने कहा है कि सिद्धि प्राप्ति के लिए गायत्री साधना श्रेष्ठ साधन है।

गायत्री कामधेनु

विद्वानों ने गायत्री को कामधेनु कहा है। इसका आश्रय लेकर सबकुछ प्राप्त किया जा सकता है।

भूलोकस्यास्य गायत्री कामधेनुर्मता बुधैः।
लोक आश्रयणेनामुं सर्वमेवाधिगच्छति।।
गायत्र्येव तपो योगः साधन ध्यानामुच्यते।
याति निष्फलतामेतत् ध्रुवं सत्यं हि भूतले।।

गायत्री ही तपयोग साधन है। इसे ही सिद्धियों की माता कहा गया है। अतः गायत्री से बढ़कर अन्य कोई शक्ति नहीं है।

ऋषि-मुनि परमहंस के मंतव्य

भगवान मनु का वचन है कि-"ब्रह्माजी ने तीन वेदों का सार तीन चरणवाली गायत्री मंत्र निकाला है"। महामुनि पराशर जी ने अपना अभिमत दिया है कि भक्तिपूर्वक गायत्री का जप करनेवाला मुक्त होकर पवित्र हो जाता है।

सौनक ऋषि का मत है-आपत्तिकाल के समय विपत्ति का निवारण करने के लिए गायत्री का दस हजार जप करना चाहिए।

महर्षि व्यास जी कहते हैं- काम्य सफलता तथा तप की वृद्धि के लिए गायत्री से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। ऋषि श्रेष्ठ भारद्वाज कहते हैं कि ब्रह्म सायुज्य के लिए गायत्री ही है। अनुचित काम करनेवालों में गायत्री माता की कृपा से दुर्गुणों का लोप हो जाता है। नारद जी की उक्ति है कि 'गायत्री भक्ति का ही स्वरूप है, जहाँ भक्तिरूपी गायत्री है वहाँ श्री नारायण का निवास होने में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।'

गायत्री महाविज्ञान के गायत्री तत्त्व में कहा गया है कि -

अथो वदामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम्
यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।।

(गा. म. विज्ञान-1/12)

तत्त्व स्वरूपिणी गायत्री को मैं त्रिदेवमयी कहता हूँ, जिससे सच्चिदानन्द लक्षण वाला ब्रह्म प्रकाशित होता है।

राजर्षि विश्वामित्र ने कहा है कि संसार के आवागमन से मुक्ति का मार्ग गायत्री हैं।

सप्रभं सत्यमानन्दम् हृदये मण्डलेऽपि च।
ध्यायञ्जपेत्तदित्येतन्निष्कामो मुच्यतेऽचिरात्।।

(गा. म. विज्ञान-पृ-12)

प्रकाश सहित सत्यानन्द स्वरूप ब्रह्म को हृदय में और सूर्यमण्डल में ध्यान करता हुआ, कामना रहित हो गायत्री मंत्र को यदि जपें, तो अविलम्ब संसार के आवागमन से मुक्ति मिलती है।

लोकमान्य गंगाधर तिलक ने विचार व्यक्त किया है कि गायत्री मंत्र में यह भाव विद्यमान है कि मनुष्य कुमार्ग छोड़कर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करता है।

योगी अरविन्द ने युग को सन्देश दिया है कि ऐसी शक्ति गायत्री में है, जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है।

स्वामी रामकृष्ण का उपदेश है कि-"गायत्री का जप करने से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। यह मंत्र छोटा है, किन्तु इसकी शक्ति बड़ी भारी है।"

स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि सद्बुद्धि का मंत्र गायत्री मंत्र है, इसलिए गायत्री मंत्र को मुकुटमणि कहा गया है।

जगद्गुरु शंकराचार्य का मत है कि "आत्मज्ञान प्राप्ति करने की दिव्य दृष्टि जिस बुद्धि से प्राप्त होती है, उसकी प्रेरणा गायत्री द्वारा होती है। गायत्री आदि मंत्र है।"

प्रो. आर. निवासन ने लिखा है कि-"जब गायत्री मंत्र का अधिकारी व्यक्ति गायत्री के अर्थ और रहस्य, मन और हृदय को एकाग्र करके इसका शुद्ध उच्चारण करता है तब उसका सम्बन्ध दृश्य सूर्य में अन्तर्निहित, महान् चैतन्य शक्ति से हो जाता है।"

महिमामण्डित महाशक्ति गायत्री की महिमा वर्णनातीत है। हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता। गायत्री की महिमा भी अनन्त है, जिसकी अभिव्यक्ति परिसीमन से परे है। सर्वसिद्धि दात्री गायत्री की साधना सर्व शुभफल प्रदा है। माँ गायत्री के नियमित स्मरण एवं विधिवत् साधना से मोक्ष की प्राप्ति सुनिश्चित है।

अध्याय ७

गायत्री साधना के सोपान-प्राणायाम पंचकोश शुद्धि

गायत्री साधना के सोपान-प्राणायाम, पंचकोश शुद्धि

गायत्री मनुष्य के आध्यात्मिक, धार्मिक एवं सुव्यवस्थित लौकिक जीवन का अविच्छन्न अंग है। ऐसी स्थिति में गायत्री के विभिन्न रहस्यों के साथ-साथ अपने शरीर के मर्म तथा अवयवों के बारे में जानना आवश्यक है। गायत्री और मानव शरीर के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अतः अपने शरीर के कार्यकलाप का वैज्ञानिक विश्लेषण कर अन्तर्निहित खामियों का ज्ञान हो जाना आवश्यक है। गायत्री विद्या के जिज्ञासुओं और प्रयोगकर्ताओं को अपने विषय में भली-भाँति परिचित होना चाहिए, ताकि जीवन में सफलता मिलने में कठिनाई न हो।

गायत्री के पाँच मुख हैं। पहले गायत्री से लाभ उठाने के लिये उनकी बारीकियों की जानकारी तथा प्रयोग विधि को जान लेना आवश्यक है।

गायत्री के रूप में पंचमुखी गायत्री के पाँचों मुख उनके पाँच भाग हैं- (i) ॐ (ii) भूः भुवः स्वः, (iii) तत्सवितुर्वरेण्यम, (iv) भर्गो देवस्य धीमहि, (v) धियो यो नः प्रचोदयात्

गायत्री के इन पाँचों भागों में यह सन्देश छिपा हुआ है कि मानव अपने जीवन के बाह्य एवं आन्तरिक समस्याओं का स्वयं हल कर सकता है। पंचदेव के रूप में भी गायत्री पूजित हैं-

1. ॐ गणेश-व्याहृत भवानी तथा गायत्री का प्रथम, द्वितीय एवं

तृतीय चरण क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। उक्त पाँच देवताओं की सम्मिलित शक्ति गायत्री हैं।

ज्ञान के चार विभाग चार वेद हैं और पाँचवा यज्ञ है। ये पाँचों गायत्री के पाँचों मुख हैं। अतः ज्ञान-विज्ञान और धर्म-कर्म गायत्री शक्ति से प्रस्फुटित हुए है।

पंचभूतों से निर्मित इस शरीर में विद्यमान सूक्ष्म सत्ता आत्मा के ऊपर चढ़े हुए हैं, जिन्हें पंचकोश कहा जाता है। गायत्री मंजरी में कहा गया है कि -

बिभर्ति पंचावरणान् जीवः कोशास्तु ते मताः।
मुखानि पंच गायत्र्यास्तानेव वेद पार्वति।।

(गा. म. विज्ञान 12)

जीव जिन पंच आवरणों को धारण करता है, वे ही पंचकोश कहलाते हैं तथा उन्हीं को गायत्री के पाँच मुख कहते हैं।

विज्ञानमयान्नमय-प्राणमय-मनोमयाः।
तथानन्दमयश्चैव पंच कोशाः प्रकीर्तिताः।।

(गा. म. विज्ञान 13)

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश पंच कोश कहलाते हैं।

यस्तु योगीश्वरोह्येतान् पंच कोशास्तु वेधते।
स भवसागरं तीर्त्वा बन्धनेभ्यो विमुच्यते।।

(गा. म. विज्ञान 14)

जो योगी इन पाँच कोशों के बन्धन को बेधता है, वह भव सागर को पार कर सभी बन्धनों से छूट जाता है।

पंचकोशों में अनेकानेक ऋद्धि-सिद्धियाँ विद्यमान हैं। जो इनके रहस्यों को जान लेता है, वह ज्ञानी महापुरुष जन्म के रहस्य को जान लेता है। पंचकोश अनन्त सुख-सुविधाओं को देने वाला है। यह आनन्द का उद्गम है। पंचकोशों की विकृति ही जीवन को

दुःखी बनाती है। ''पाँच तत्त्व, पाँच कोश, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच देव, पाँच योग, पाँच अग्नि'' आदि पंचेक पंचक गायत्री के पाँच मुखों से सम्बन्धित है। आत्म उन्नति के पाँच सोपान है। उनमें से जिस सोपान को साधक पार कर लेता है, वह उसी श्रेणी का ऋषि बन जाता है। अतः गायत्री गूढ़ तत्त्वों का ब्रह्मज्ञान है। ब्रह्मज्ञान के साधक सफल हो जाने पर परंब्रह्म के परमधाम को प्राप्त कर लेते हैं।

अन्नमय कोश

पंचकोश का प्रथम कोश अन्नमय कोश है, जिससे शरीर बनता है और विकसित होता है। अन्न और जल जीवन के आवश्यक तत्त्व हैं। कहा गया है कि जल ही जीवन है, इसलिये अन्नमय कोश को स्वस्थ रखने के लिये सात्विक भोजन करना चाहिए। तामसी पदार्थ के सेवन से अन्नमय कोश दूषित हो जाता है और अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। स्वास्थ्य के लिये स्वस्थ जीवन पद्धति अपनाना चाहिए। स्वस्थ जीवन के लिये उपवास, आसन, तत्त्व शुद्धि, तपश्चर्या चार मुखी जीवन पद्धतियाँ हैं।

व्रत

अन्नमय कोश की शुद्धि के लिये व्रत का विधान किया जाता है। गीता में उपवास के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि -

''विषयाविनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः''

उपवास से विषय- विकार की निवृत्ति होती है।

आसन

आसन का सीधा प्रभाव शरीर पर पड़ता है। शरीर के प्रधान नस-नाड़ियों और मांसपेशियों के अलावे सूक्ष्म कोशिकाओं का भी आकुंचन-प्रकुंचन आसन के द्वारा होता है, जिससे शरीर के विकार

का नाश हो जाता है। शरीर में नस-नाड़ियों की सुरक्षा आसन के द्वारा होती है।

"सर्वांगासन, वद्ध पद्मासन, पादहस्तासन और उत्कटासन से हाथ-पैर की नसें और मांस पेशियाँ सबल होती हैं। मेरुदंड, पसलियाँ, फेफड़े, हृदय, अमाशय, आँतों की दुर्बलता और जिगर की दुर्बलता आदि पश्चिमोत्तान आसन, मयूरासन, सर्पासन, धनुषासन से दूर होती हैं।

तत्त्वशुद्धि

तत्त्वशुद्धि- मिट्टी, जल, वायु, अग्नि और आकाश पाँच तत्त्वों से प्राणियों के शरीर बने हुए हैं। सांख्यशास्त्र का कथन है कि उत्पत्ति, विकास एवं विनाश इन तत्त्वों की मात्रा में परिवर्तन के कारण ही होता है।

आयुर्वेद शास्त्र का मत है कि शरीर में वात, पित्त एवं कफ का असंतुलन रोग का कारण है। अतः तत्त्वों की गड़बड़ी के कारण मनुष्य रोगी बन जाता है, इसलिये पंचतत्त्वों की शुद्धि की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

विशेषतः आकाश तत्त्व अन्य चार तत्त्वों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है, इसलिये अधिक प्रभावशाली है। शून्य आकाश में 'इथर' तत्त्व व्याप्त है। वाणी इथर में तरंग पैदा करती है। वाणी के तत्त्व शब्द, भाव, विचार एवं इच्छा-आकांक्षा, आकाश में तरंग रूप में प्रवाहित हैं। मनुष्य के स्वनिर्मित विचारों में भी चुम्बकत्व होता है, जो आकाश में प्रवाहमान सजातीय विचार को खींचकर मन को प्रभावित करता है। इसलिये जब मन में कुविचार उत्पन्न होता है, तो वह इथर में प्रवाहित कुविचार को खींचकर मनुष्य के मन को और भी कुत्सित कर देता है। कुत्सित मन स्वास्थ्य को खराब कर देता है। अतः मन में अशुद्ध विचार कभी नहीं लाना चाहिए। तत्त्वशुद्धि पर

ध्यान देना चाहिए। तप, परोपकार, सेवा, दान एवं पुण्य का कार्य तप है। तप गायत्री साधना का प्रधान अंग है। अतः इन मानवीय गुणों का विकास करनेवाली गायत्री साधना करने पर मनुष्य तपस्वी हो जाता है।

प्राणमय कोश

प्राणमयकोश प्राण, शक्ति एवं सामर्थ्य का द्योतक है। गायत्री शक्ति सर्वत्र व्याप्त है। जिस प्रकार यह सर्वत्र व्याप्त है, वैसे ही सम्पूर्ण विश्व में प्राण चैतन्य सर्वत्र व्याप्त है। साधक गायत्री शक्ति को आकृष्ट कर अपने में धारण कर लेता है और प्राणमय कोश को सतेज कर अधिकाधिक मात्रा में प्राण को ग्रहण कर लेता है। इस क्रिया के निमित्त प्राणायाम सर्वोपरि साधन है।

प्राणायाम विधि

प्राणायाम विधि से वायु में से प्राण खींचकर अपने शरीर में स्थापित किया जाता है। प्राणायाम एक क्रिया पद्धति है, जिसके द्वारा साधक आमाशय में मेरुदंड के दोनों ओर स्थित सूर्यचक्र को सक्रिय कर देता है। इसके पश्चात् वहीं से एक प्रकार का विद्युत प्रवाह समस्त नाड़ियों में प्रवाहित हो जाता है। इसमें विद्यमान ओजस् शक्ति क्रियाशील हो जाती है।

"योगदर्शन साधना पाद के सूत्र 52–54 कहते हैं कि प्राणायाम से अविद्या का अंधकार दूर हो जाता है और ज्ञान की ज्योति प्रकट हो जाती है। मन एकाग्र हो जाता है, विवेक जग जाता है"। आत्मोन्नति का सुप्रभाव शरीर पर पड़ता है। फलस्वरूप रक्तसंचार, नाड़ी संचालन, पाचनक्रिया, स्नायु शक्ति, प्रगाढ़ निद्रा, स्फूर्ति और मानसिक विकास हो जाते हैं।

बाहर की साँस अन्दर जाकर कार्बोनिक एसिड को शरीर से बाहर निकाल देती है, इससे ऑक्सीजन की आपूर्ति होती है, जो कोशिकाओं को सबल बना देती है।

प्राण

प्राणायाम वह विशिष्ट क्रिया है, जिसके द्वारा प्राण का नियमन किया जाता है। योगाचार्य कहते हैं, कि प्राण माया से उत्पन्न है। वायु को ही प्राण कहा जाता है। प्राण शक्ति एक है जो समस्त शरीर में व्याप्त है। प्राण का कार्य जीवन चलाना है। हृदय की धड़कन जीवन का प्रतीक है।

इसका विकास योगाभ्यास के द्वारा किया जाता है। पतंजलि ऋषि ने मनुष्य मात्र के कल्याण हेतु अष्टांग योग का विधान किया है। धारणा, ध्यान व समाधि योग के अन्तर्गत आते हैं, जो आत्मोत्थान एवं कैवल्य आनन्द की प्राप्ति के साधन हैं। प्राणायाम अन्तरंग एवं बहिरंग योग के बीच सेतु का काम करता है। प्राणायाम के साथ वृत्ति निरोध करके एवं आत्मस्थ होकर साधक मुक्ति प्राप्त कर सकता है। प्राण साधना का सुगम तरीका स्वामी रामदेव जी ने अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पहुँचाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

प्राण शक्ति से विद्या, चतुराई, अनुभव, दूरदर्शिता, लगन, शौर्य, जीवनीशक्ति, ओज, पुष्टि, पराक्रम, पुरुषार्थ, महानता आदि शक्ति का सम्वर्धन होता है।" प्राण द्वारा ही श्रद्धा, निष्ठा, दृढ़ता, एकाग्रता प्राप्त होती है, जो भवबन्धन को काटकर आत्मा को परमात्मा से मिलाती है।

दीर्घ जीवन, उत्तम स्वास्थ्य, चैतन्यता, स्फूर्ति, उत्साह, क्रियाशीलता, कष्ट, सहिष्णुता, बुद्धि की सूक्ष्मता, सुन्दरता, मनमोहकता आदि विशेषताएं प्राण शक्ति की देन हैं। पाश्चात्य विद्वान भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मानव शरीर में प्रतिक्षण होने वाली क्रिया प्रणाली का संचालन प्राणशक्ति का परिणाम है।

मनुष्य को गहरी साँस लेने की आवश्यकता है ताकि अधिक से अधिक ऑक्सीजन शरीर प्राप्त कर सके, जिससे वायु फेफड़े से प्रत्येक भाग में जाकर रक्त की सफाई कर सके। अधूरी साँस लेने

वालों के फेफड़े का बहुत सा भाग निकम्मा पड़ जाता है। फेफड़े के जिस वायुकोष्ठ में साँस की वायु नहीं पहुँचती है, उसमें कफ दमा, खांसी, क्षय आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये गहरी साँस अवश्य लेना चाहिए, जिससे कि रक्त संचार में अपेक्षित गतिशीलता रहे। नाक से ही साँस लेना चाहिए। नाक से फेफड़ों तक जो हवा पहुँचाने वाली नली गयी है, उसकी रचना इस प्रकार हुई है कि वह वायु को उचित रूप में संशोधन परिमार्जन कर के भीतर पहुँचाए। नासिका के छिद्रों में छोटे-छोटे बाल होते हैं, जो वायु को छानकर भीतर पहुँचाते हैं। नासिका में एक तरह का तरल पदार्थ का स्राव होता रहता है, जिससे वायु का कचड़ा चिपक जाता है। मुँह से साँस लेने पर परिष्कृत वायु भीतर नहीं जाती है। संगीत से फेफड़े मजबूत होते हैं, क्योंकि कण्ठ, हृदय, आमाशय, आँत यकृत आदि का संगीत से व्यायाम हो जाता है। गाने के समय विद्युत तरंगे उत्पन्न होकर स्नायु तंत्रों को तरंगित करती रहती हैं। इससे शिथिल अंगो में गति उत्पन्न होती है। यही कारण है कि संकीर्तन आदि को धर्म का माध्यम माना जाता है।

समस्त शरीर में एक ही प्राण क्रियाशील है, किन्तु स्थान भेद से इनका नाम अलग-अलग है। शरीर में पाँच महाप्राण और पाँच लघु प्राण हैं। प्राण, अपान,समान, उदान और ब्यान पाँच महाप्राण हैं, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्य नामक 5 लघुप्राण हैं, जो क्रमशः छींकना, पलक झपकना, जम्हाई लेना, खुजलाना, हिचकी आदि क्रियाओं को संचालित करते हैं।

प्राण तत्त्व एक प्रकार की विद्युत शक्ति है। सूक्ष्म शरीर में कुछ ऐसे भ्रमर चक्र हैं, जिनके साथ प्राण मिलकर एक विशेष क्रिया करते हैं। 5 महाप्राणों को ओजस् व 5 लघुप्राणों को रेतस् कहते हैं, जो एक दूसरे के सहायक एवं पूरक हैं। जैसे दोनों नथुने एक दूसरे के सहायक हैं, उसी प्रकार महाप्राण और लघुप्राण आपस में सम्बद्ध

तथा सहायक है। प्राण तत्त्व एक है, लेकिन दो भाग में विभाजित किया गया है।

"प्राण वायु का निवास स्थान हृदय है। समीप में ही नाग है"। अपान गुदा और मूत्रेन्द्रिय के बीच में मूलाधार के निकट रहता है। उसके पास कूर्म का निवास है।

'समान' और कृकल नाभि में रहते हैं। उदान और देवदत्त का स्थान कण्ठ है"। व्यान और धनञ्जय का मिश्रण सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। इसमें आकाश तत्त्व की अधिकता है। व्यान का केन्द्र मस्तिष्क का मध्य भाग है। शब्द एवं मस्तिष्क का पोषण प्राण करता है। मलमूत्र, स्वेद (पसीना) आदि का विसर्जन अपान से होता है। उदान विभिन्न वस्तुएं जो बाहर से आती हैं, उसे ग्रहण करता है। व्यान वायु शरीर के हर कोने में चलती रहती है और समस्त शरीर को रक्त पहुँचाती है। धनञ्जय जीवित अवस्था में शरीर विकार को नष्ट करने में सहायक होता है। शरीर में "वायुभ्रमर"होता है। शरीर की वायु और प्राण की उष्णता की वजह से एक प्रकार के भ्रमर चक्र उत्पन्न हो जाते हैं। प्राण वायु के भ्रमर चक्र का ऊर्ध्व भाग महाप्राण और अधोभाग लघुप्राण कहा जाता है। एक स्तर है तो दूसरा बिन्दु। प्राण के द्वारा ही शरीर की क्रियायें संचालित होती हैं।

समाधि लगाने वाले महात्माओं का प्राण पर अधिकार होता है। वे प्राण को खींचकर ब्रह्मांड में संचित किए रहते हैं और शरीर मृत तुल्य अवस्था में रहता है। प्राण पर अधिकार दीर्घकाल तक इच्छानुसार बढ़ा लेना उनके लिए सम्भव है। उनमें यह सामर्थ्य होती है कि वे एक का प्राण दूसरे के शरीर में प्रवेश कर के उसे जीवन एवं मनोबल दे सकते हैं। आदि शंकराचार्य के बारे में कहा जाता है कि राजकुमार के मृत शरीर में प्रवेश कर राजकुमार का जीवन व्यतीत किये और पुनः अपने सुरक्षित शव में अपने प्राण को वापस लाकर जीवित हो गए थे। अपान वायु का कार्य मल-मूत्र विसर्जन है। यह पसीना,

कफ, विष, विजातीय पदार्थ आदि को शरीर के अनेक छिद्रों द्वारा बाहर निकालता रहता है।

अपान वायु की शक्ति क्षीण हो जाने पर कफ, जुकाम प्रभावी होने लगते हैं। काम वासना का आधार अपान वायु है। संतान का सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बुद्धि, पराक्रम एवं स्वभाव अपान से सम्बन्धित है। लघु प्राण यदि सुस्त अवस्था में होगा तो स्वस्थ होने पर भी गर्भ की स्थापना नहीं होगी। पुरुष में अपान और स्त्री में कूर्म प्रधान होता हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं।

समान प्राण उदर में नाभि के नीचे रहता है। इसका मुख्य काम पाचन क्रिया को सक्रिय रखना है। उष्णता एवं पीत समान के प्रतीक हैं। त्वचा की चिकनाई और कोमलता का कारण कृकल प्राण है। समान के कारण भूख लगती है, सर्दी सहन करने की शक्ति, समान प्राण देता है। समान वायु की कमी से गर्म पदार्थ खाने की इच्छा होती है। धूप या अग्नि उनको अच्छा लगता है। ऐसे लोगों की नाड़ी धीमी चलती है। समान प्राण का श्वास से बड़ा सम्बन्ध है। समान वायु की कमी के कारण मनुष्य झुंझलाया हुआ, असंतुष्ट रहता है। जुकाम, खाँसी, पेट का भारीपन, सिर दर्द, नेत्र की कमजोरी, थकान जैसे मंद रोग रहेंगे। समान पीत का प्रतीक और कफ का प्रतिनिधि है। दोनों के मिलने से वात बनती है। इन तीनों के घटने-बढ़ने से बीमारी और तंदुरुस्ती का चक्र घूमता रहता है। अतः समान और कृकल हमारे स्वास्थ्य के स्वामी हैं। इन पर अधिकार होने से स्वास्थ्य का लाभ मिलता है। श्री और समृद्धि का प्रतीक उदान कंठ में निवास करता है। ''लक्ष्मी जी का केन्द्र कण्ठ कूप की स्फुटा ग्रंथि को माना गया है''। इसलिए कंठ में स्वर्णाभूषण धारण करते हैं और उनके सूक्ष्म परिणामों से लाभ उठाते हैं। उदान प्राण को विकसित कर जीवनोपयोगी वस्तु प्राप्त की जा सकती है। जिनकी 'स्फुटा' ग्रंथि जागृत है, उनको किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता है। देवदत्त सूक्ष्म प्राण आध्यात्मिकता

और सम्पदाओं का अधिपति है। अष्टसिद्धियां और नवनिधियां देवदत्त से सम्बन्धित हैं। अणिमा, महिमा, लघिमा आदि का यह केन्द्र स्थल है। स्फुटा में उदान प्राण के सम्पर्क से एक ऐसी चैतन्य स्फुरण उत्पन्न होती है, जो भविष्य का परिचय देती रहती है। उदान द्वारा चैतन्य स्फुटा को शरीरवासिनी लक्ष्मी कहा जाता है, कंठ कूप का देवदत्त प्रबुद्ध रहने पर व्यक्ति सिद्ध बन जाता है।

व्यान का स्थान मस्तिष्क का मध्य भाग है। वह प्राण अपान, समान और उदान का नियमन करता है। दोनों कानों के बीच एक रेखा खींची जाय और दूसरी रेखा भूमध्य भाग से लेकर सिर के पीछे तक खींची जाय तो दोनों जहाँ मिलेगी वह स्थान 'त्रिकुटी' कहा जाता है। यही ध्यान का स्थान माना जाता है। धनञ्जय इसका साथी है। व्यान के प्रबुद्ध होने से ऋतम्भरा प्रज्ञा मिलती है, जो आत्म कल्याण की ओर ले जाती है। दैवी गुणों के प्रकाश का पदार्पण मनुष्य में व्यान के द्वारा होता है। आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर, दर्शन, ब्रह्म, प्राप्ति, दिव्य दृष्टि एवं समाधि का केन्द्र व्यान है''। व्यान जागृत हो जाने पर परमात्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। मस्तिष्क में अनेक शक्तियाँ हैं। मानसिक योग्यता एवं प्रतिभा धनञ्जय प्राण के विकास का फल है।

मस्तिष्क में अगणित शक्तियाँ विद्यमान हैं। तुच्छ और महान शक्तियों का भंडार यही मस्तिष्क है। सुव्यवस्था एवं अव्यवस्था का आधार धनञ्जय प्राण की कमजोरी से मंद बुद्धि, चिन्ता, दुःख सताता है, जिसका व्यान ठीक है और धनञ्जय जागृत है, उसी का विकास सम्भव है। 10 प्राणों को सुषुप्त अवस्था से जागृत कर कुप्रवृत्तियों का निवारण किया जा सकता है तथा सद्विचार और विवेक उत्पन्न किया जा सकता है। इसके लिए प्राण विद्या का ज्ञान आवश्यक है। बन्ध, मुद्रा और प्राणायाम इसके साधन हैं।

गायत्री माता का द्वितीय मुख प्राणमय कोश है। प्राणमय कोश को परिस्कृत करने के लिये योगाभ्यास आवश्यक है।

बन्ध

मूल बन्ध - मूल बन्ध की क्रिया यह है कि गुदा के छिद्रों को ऊपर की ओर खींचकर इसी स्थिति में 10 सेकण्ड तक श्वास को रोके रखना। इससे अपान वायु स्थिर रहती है। वीर्य अधोगामी है। मूलबन्ध से नीचे की ओर वीर्य का प्रवाह रुक जाता है और स्थिर हो जाता है। प्राण वीर्य भी अधोगति से ऊर्ध्व में परिवर्तित होता है। मूलाधार का क्षेत्र यही है। इसलिए मूलाधार क्षेत्र में स्थित कुंडलिनी प्रभावित हो जाती है। आँतें मजबूत होती है मलावरोध नहीं होता है। रक्त संचार की गति ठीक रहती है। अपान और कूर्म दोनों पर मूल बन्ध का प्रभाव पड़ता है। वे तन्तुओं में बिखरे हुए रहते हैं। गुदा के संकुचन के कारण वायु का बिखराव रुककर केन्द्रीभूत हो जाता है, जिससे शक्ति उत्पन्न होती है।

जालन्धर बन्ध

इस क्रिया में मस्तक को झुकाकर ठोडी को कण्ठ कूप में लगाया जाता है। कण्ठ के आधार में सामने एक गड्ढ़ा सा है इसी को कण्ठ कूप कहते हैं। साँस को ऊपर की ओर खींचकर स्थिर कर लें और ठोडी को कण्ठ कूप में स्पर्श करा दें। 10 सेकण्ड तक इसी स्थिति में रहकर साँस को धीरे-धीरे बाहर निकाल दें, गर्दन सीधी करें।

जालन्धर बन्ध से साँस की क्रिया पर अधिकार हो जाता है और ज्ञान तन्तु सबल हो जाते हैं। घुटना, जंघा, लिंग, नाभि, हृदय, कंठ नासिका, कपाल आदि सोलह स्थान की नाड़ियों पर जालन्धर बन्ध का प्रभाव पड़ता है। स्वर पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

उड्डियान बन्ध

साँस को ऊपर खींचे और रेचक के द्वारा शीघ्रता से साँस को बाहर निकाल दें। इससे पेट की वायु निकल जाती है। आँतो को पीठ की ओर खींचे। जितना खींच सकें खींच कर पेट को पीठ से चिपका दें।

दस सेकन्ड के बाद साँस को छोड़ दें और पेट को पूर्ववत् कर लें।

इससे जीवनी शक्ति बढ़ती है। दीर्घायु प्राप्त होती है। आँते सक्रिय हो जाती हैं। मूत्राशय के रोग दूर होते हैं। जलोदर, पाण्डु, यकृत जैसी बीमारियों को दूर करने के लिये बन्ध उपयोगी है। समान और कृकल प्राण स्थिर हो जाते हैं। यह बन्ध त्रिदोष नाशक है। सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुलता है। स्वाधिष्ठान चक्र में चैतन्य शक्ति जागृत होती है।

मुद्रायें

मुद्रायें सात हैं- महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनिमुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा और भूचरी मुद्रा।

मुद्रा क्रिया का अभ्यास विज्ञ गुरु के मार्ग दर्शन में करना चाहिए।

चक्र

योगाभ्यास के लिये चक्र का ज्ञान आवश्यक है। मानव शरीर में अद्भुत शक्ति केन्द्र हैं, जो मेरूदण्ड में मूल से आरम्भ होकर ऊपरी भाग तक जुड़े हुए हैं।

मेरुदण्ड एक नली है, जिसमें छः चक्र अवस्थित हैं। तीन नाड़ियों में सबसे भीतर ब्रह्मनाड़ी से ये षड्चक्र सम्बन्धित हैं।

ये चक्र अति सूक्ष्म होने के कारण दृश्य नहीं हैं। जिस प्रकार शब्द तरंगें आँखों से नहीं देखी जा सकती हैं। परन्तु उन्नत योग दृष्टि से देखी जा सकती हैं और लाभान्वित हो सकते हैं।

सभी चक्र सूक्ष्म ग्रंथियाँ हैं, जो ब्रह्मनाड़ी के मार्ग में अवस्थित हैं। साधक ध्यान को केन्द्रित कर इनकी अनुभूति कर सकता है। मानव शरीर पंचतत्त्वों से बना है- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। सभी चक्रों में सभी तत्त्व समान रूप से नहीं पाये जाते हैं। एक चक्र में एक तत्त्व अधिक रहता है तो दूसरे चक्र में दूसरा तत्त्व अधिक रहता है।

तत्त्व प्रधानता का प्रभाव उस स्थान में रक्त पर पड़ता है और उसका रंग बदल जाता है। पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता का मिश्रण होने से गुलाबी, अग्नि से नीला, वायु से लाल, आकाश से धूमिल रंग हो जाता है।

इन चक्रों से होकर जब प्राण वायु का आवा-गमन होता है तो ग्रन्थि की स्थिति के अनुसार कुछ टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है, जिससे आकृति बन जाती है। देवनागरी अक्षरों की आकृति इन आकृतियों से मिलती है। योगियों ने अन्तर्दृष्टि से आकृतियों का अध्ययन कर देवनागरी लिपि का आविष्कार किया, इसलिये देवनागरी लिपि का वैज्ञानिक आधार है। इस प्रकार वायु प्रवाह से बनी हुई आकृतियों को चक्र का यंत्र कहा जाता है। जिस चक्र में जो तत्त्व प्रधान रहता है, वही उस चक्र का तत्त्व माना जाता है। इन तत्त्वों के यथोचित सम्मिश्रण से अंग-प्रत्यंगों की रचना और संचालन होता है। स्थान विशेष पर अपेक्षित तत्त्व की कमी हो जाने पर रोग उत्पन्न होते हैं।

ब्रह्मनाड़ी की नली से होकर जब वायु का आवागमन होता है तो चक्रों के छिद्रों पर आघात होने से एक विशेष ध्वनि सुनाई पड़ती है। जैसे ''ऊँ'' प्रत्येक चक्र की अपनी-अपनी ध्वनि है, जो स्वर के रूप में उस चक्र का बीज कहा जाता है—जैसे -यं, लं, रं, अं। चक्रों में से होकर वायु का गमनागमन होता है तो उसकी चाल में अन्तर आता है। तत्त्वों के मिश्रण, टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग भवँर, बीज आदि के समन्वय से तथा प्रत्येक चक्र में रक्त का प्रवाह और वायु के अभिगमन से एक विशेष चाल देखी जाती है।

किसी चक्र में हाथी के समान मन्दगामी, किसी चक्र में मगर की तरह डुबकी लगाने वाली, किसी में हिरण की सी छलाँग लगाने वाली, किसी में मेढक की तरह फुदकने वाली चाल रहती है। उसी के अनुसार उनका वाहन निर्धारित किया गया है।

चक्रों में दैवी शक्तियाँ निहित हैं, उत्पत्ति, पालन, संहार, ज्ञान, समृद्धि बल आदि शक्तियाँ इनमें विद्यमान है, जिन्हें देवता विशेष से सम्बद्ध कर दिया गया है। यह कह सकते है कि ये शक्तियाँ भी अपने स्वरूप के अनुसार देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रत्येक चक्र में नर के उष्ण वीर्य की शक्ति विद्यमान रहती है। क्योंकि विपरीत तत्त्वों के मिलन से ही जीवन का प्रवाह सम्भव होता है। यही शक्तियाँ देवी-देवता हैं।

पृथ्वी का गन्ध, जल का रस, अग्नि का रूप, वायु का स्पर्श, आकाश का गुण शब्द है। जिस चक्र में जो तत्त्व प्रधान रहता है, वही उसका गुण माना जाता है।

चक्र अपनी सूक्ष्म शक्ति को शरीर में प्रवाहित करते हैं, चक्रों के जागरण के चिन्ह इन्द्रियों पर दृष्टिगत होते हैं।

मातृकायें

मुख से लेकर नाभि तक चक्राकार अ से लेकर् ह तक समस्त अक्षरों की एक ग्रन्थिमाला है। उस माला के दानों को ''मातृकायें'' कहते हैं। ''चक्रों के देव जिन मातृकाओं से झंकृत होते हैं अर्थात् सम्बद्ध होते हैं, उन्हें उन देवों की देवशक्ति कहते हैं। ड र ल क श आदि के साथ मातृकाओं के बोधक 'किनी' शब्द को जोड़कर डाकिनी, राकिनी बना दिये गये हैं, यही देव शक्तियाँ हैं।''

षड्चक्र

मूलाधार चक्र-स्थान-गुदामूल से दो अंगुल ऊपर उपस्थ से दो अंगुल नीचे मूलाधार चक्र अवस्थित है। इस चक्र के जागृत होने पर मनुष्य ओजस्वी बनता है।

अन्नमय कोश का परिष्कार हो जाता है और शरीर व्याधिमुक्त हो जाता है। ध्यान का फल-आरोग्य, आनन्द और लेखन शक्ति है।

स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र मूलाधार चक्र के दो अंगुल ऊपर पेडू के पास अवस्थित है। ध्यान का फल सृजन, पालन, सामर्थ्य और जिह्वा पर सरस्वती का वास है।

इसमें अहंकार आदि विकारों का नाश होने के साथ ही मोह की निवृत्ति हो जाती है तथा रचना शक्ति का विकास होता है, मनुष्य श्रेष्ठ गुणों से युक्त हो जाता है।

मणिपूर चक्र

मणिपूर चक्र नाभि के मूल में नाभि के पीछे स्थित है। यकृत एवं आँत आदि सम्पूर्ण पाचन तंत्र एवं आमाशय आदि को यह शक्ति प्रदान करता है।

जागृत होने पर मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस आदि विकृतियों को दूर करता है और पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

इस चक्र के प्रभाव क्षेत्र में आमाशय, यकृत, प्लीहा, पैन्क्रियास एवं पक्काशय आते हैं।

अनाहद चक्र

इसका स्थान हृदय के पास है। अनाहद चक्र जागृत रहने पर हृदय रोग नहीं होते। योग की सिद्धि, ज्ञान का विकास, स्वामित्व इसकी साधना के फल हैं। यह हृदय का भावनात्मक भाग है। दिव्यगुणों का विकास करता है।

विशुद्धाख्य चक्र

विशुद्धाख्य चक्र का स्थान कण्ठ है, जागृत अवस्था में ग्रन्थि एवं फेफड़ों के रोगों का शमन करता है। महाज्ञानी, निरोगी और दीर्घजीवी बनाता है। तेजस्विता एवं चित्त-शान्ति प्राप्त होती है।

आज्ञा चक्र

इसका स्थान भ्रूमध्य में है। सम्पूर्ण नाड़ी तंत्र आज्ञा चक्र से सम्बद्ध है। मूलाधार चक्र से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना पृथक-पृथक ऊपर की ओर प्रवाहित होकर इस स्थान पर मिलती हैं।

इसके जागृत होने पर सर्वार्थ साधन फल की प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त षड्चक्रों के अलावा सहस्रार चक्र का भी वर्णन कुछ शास्त्रकारों ने किया है।

योगगुरु बाबा रामदेव के अनुसार यह चक्र तालु के ऊपर मस्तिष्क में ब्रह्मरंध्र से ऊपर स्थित है और दिव्य शक्तियों का केन्द्र है।

पिच्युटरी और पिनियल सहित सम्पूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का सम्बन्ध इस चक्र से है। इसके जागृत होने से इन्डोक्राइन सिस्टम सन्तुलित हो जाता है।

तपोनिष्ठ श्रीराम शर्मा आचार्य ने भी सातवें शून्यचक्र के रूप में आज्ञाचक्र का "गायत्री महाविज्ञान" में उल्लेख किया है। उन्होंने ध्यान का फल-भक्ति, अमरता, समाधि एवं समस्त ऋद्धि-सिद्धियों का करतलगत होना कहा है।

"कुन्डलिनी" शक्ति का स्रोत है। षड्चक्र कुण्डलिनी की शक्तियों से प्रकाशित होते हैं।

साधक षड्चक्रों का वेधन करते हुए उन्हें जागृत कर आत्मोन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता है। चक्रों का वेधन ध्यान शक्ति के द्वारा किया जाता है। मन की प्रमुखता सर्वविदित है, परन्तु इसकी गति अत्यन्त चंचल है, जिसके कारण अभीष्ट फल की प्राप्ति तक पहुँचना कठिन हो जाता है।

ध्यान के द्वारा मन को नियंत्रित कर बहुमुखी शक्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाकर षड्चक्रों का वेधन कर सकते हैं और ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त कर सकते हैं।

मस्तिष्क के मध्य भाग में त्रिकुटी है। एक रेखा एक कान से दूसरे कान तक खींची जाए और दूसरी रेखा दोनों भवों के मध्य में से मस्तिष्क के मध्य तक खींची जाए तो दोनो रेखायें जिस बिन्दु पर एक दूसरे को काटती हैं, उसे ही त्रिकुटी कहते हैं। वेदमाता गायत्री का ज्योति स्वरूप में ध्यान कीजिये। त्रिकुटी स्थित गायत्री ज्योति में मन को केन्द्रित कीजिये, मन स्वयं तेज रूप हो जाता है। मन को आज्ञा चक्र के स्थान पर लाइये। ब्रह्मनाड़ी मेरुदण्ड से बढ़कर त्रिकुटी में होती हुई सहस्रार को गई है। ब्रह्मनाड़ी पोली है उसमें से होकर दीप्तिमान मन आज्ञाचक्र में प्रवेश करता है। मन को सहस्रार चक्र अथवा शतदल कमल के दलों का, अक्षरों का, तत्त्व का, देवशक्ति का, यंत्र का, वाहन का, वाहन के गुण और रंग का अनुभव होता है। अस्पष्ट अनुभूति क्रमशः स्पष्ट हो जाती है। अपने अन्दर चक्र की आकृति का अनुभव होता है। चक्र की साधना करने से वह प्रस्फुटित हो जाता है। साधक को चक्र के स्थान पर सम्बन्धित मातृकाओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों में कम्पन और स्फुरण का अनुभव होता है। ज्यों-ज्यों साधना फलीभूत होती है, त्यों-त्यों चक्र का रूप स्पष्ट होने लगता है। शक्ति प्रवाह एक चक्र से दूसरे चक्र में प्रवेश करता है। इस प्रकार धीरे-धीरे क्रमशः षड्चक्रों को पार करता हुआ साधक कुण्डलिनी तक पहुँच जाता है। यहाँ महाशक्ति सर्पिणी के विकराल रूप का दर्शन होता है। महाकाली का प्रचण्ड रूप यहीं दिखाई देता है। कुण्डलिनी को गतिशील बनाने के लिये निरन्तर साधना बल से अर्जित शक्ति से उस पर आघात किया जाता है। कुण्डलिनी जागृत हो जाती है और साधक के जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कारों को नष्ट कर देती है। साधक का मन पर अधिकार हो जाता है। मायाग्रस्त साधक के मायाजाल को काटकर कुण्डलिनी साधक को ब्रह्मभाव और ब्रह्मप्रकाश से परिपूर्ण कर देती है।

प्राणायाम

भगवान विष्णु के पंचम अवतार भगवान कपिलमुनि सतयुग के प्रारम्भ में ही मानवजाति का ध्यान इस ओर आकृष्ट किये कि मानव जीवन में सुख-दुःख लगा ही रहता है, जिसे दार्शनिक भाषा में आधिदैहिक, आधिभौतिक और आधिदैविक की संज्ञा दी गयी है। आधिदैहिक दुःख मानसिक एवं शारीरिक रोग के रूप में प्रकट होते हैं, जैसे ज्वर-बुखार, हैजा-प्लेग, पक्षाघात आदि त्रिविध दोष कफ, पित्त, वायु के असन्तुलन के कारण दैहिक दुःख से मनुष्य ग्रसित होता है, जिसके निराकरण के लिये प्राणायाम एवं पंचकोशों के शोधन का प्रावधान शास्त्र में किया गया है। अतः प्राणायाम एवं पंचकोशों के शोधन की विधि पंचकोशों की साधना है।

अतः इनकी साधना की जाती है, जिससे मनुष्य स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ चित्त प्राप्त कर सकता है। स्वस्थ शरीर में शुद्ध चित्त से गायत्री की साधना परमानन्द को प्राप्त करा सकती है, जिसे ध्यान में रखते हुए इस विषय का विवेचन आवश्यक हो जाता है।

''प्राणायाम'' शब्द का अर्थ है प्राण का आयाम। यह प्राच्य वैज्ञानिक पद्धति है, जिसका ज्ञान के रूप में महर्षि पतंजलि ने लोक कल्याणार्थ विश्व को प्रदान किया है, जिसे योग दर्शन की संज्ञा दी गयी है। इस विधि से प्राण को नियंत्रित कर शरीर में आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न की जाती है, जिससे दैवी शक्तियों के रहस्य को जानकर साधक परमपिता परमेश्वर से तादात्म्य स्थापित करता है।

प्राणायाम को निम्न प्रकारेण वर्गीकृत किया गया है।

भस्त्रिका

दो नासिकाओं द्वारा साँस फेकने की प्रक्रिया को भस्त्रिका प्राणायाम कहते हैं। यह समशीतोष्ण है। ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि का यह भेदन करता है। इसके द्वारा सुषुम्ना से प्राण तत्त्व ऊर्ध्वगामी

होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। यह अग्नि तत्त्व को बढ़ाता है। कैंसर, लंग, फ्राईबोशिस, मस्कुलर, डिस्ट्रेफी, एम.एस, एस.एल.ई. एवं अन्य असाध्य रोगों में लाभप्रद है। उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति तीव्र गति से यह प्राणायाम न करें।

कपालभाति

कपालभाति प्राणायाम में साँस को सहज रूप से अन्दर खींचकर उसे शक्तिपूर्वक एकाग्रता के साथ बाहर फेंका जाता है। इससे पेट में आकुंचन एवं प्रसारण की क्रिया होती है तथा मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर चक्रों पर विशेष बल पड़ता है। ये चक्र जागृत हो जाते हैं। इससे कैंसर, एड्स, हेपाटाटिस, सफेद वाला सोराइसिस, मोटापा, बंध्यापन, गर्भाशय-ओवरी, समस्त कफ रोग, हृदय, फेफड़ा एवं मस्तिष्क से सम्बन्धित सभी रोग, धमनी विकार, आमाशय, अग्न्याशय, यकृत, प्लीहा, आँत, किडनी आदि रोगों का निवारण होता है। यह दुर्बल आँतों को सबल बनाता है।

उज्जायी

सिर को थोड़ा झुका लें। नासिकाओं से वायु अन्दर खींचकर कण्ठ को थोड़ा संकुचित करने से वायु का स्पर्श गले में अनुभव होगा। हवा का घर्षण नाक में नहीं होना चाहिए। कण्ठ में घर्षण होने से एक ध्वनि उत्पन्न होती है। रेचक, पूरक और कुम्भक तीनों का प्रयोग इसमें होता है।

बिस्तर पर पड़े-पड़े रोगी भी उज्जायी प्राणायाम कर सकते हैं। पेट के रोगों के लिये यह उपयोगी है। सर्दी, खाँसी, जुकाम, थॉयराइड, खर्राटे भरना, हृदय रोग, दमा, फुफ्फुस, कण्ठविकार, टांसिल, अनिद्रा, मानसिक तनाव, रक्तचाप, अजीर्ण, आमवात, जलोदर, क्षय, ज्वर, पीलिया आदि रोगों का निदान इस प्राणायाम से होता है।

अनुलोम-विलोम

हाथ को उठाकर दायें हाथ के अँगूठे से दायाँ नासाछिद्र बन्द करें और बायें नासाछिद्र से साँस भीतर खींचे। कुम्भक स्थिति में दाहिने हाथ की मध्यमा अनामिका से बायाँ नासाछिद्र बन्द करें और दाहिने नासा छिद्र से साँस बाहर फेंके। यह एक प्रक्रिया हुई। इसके निरन्तर अभ्यास से मूलाधार शक्ति का जागरण होने लगता है। कैंसर, सफेद दाग, सोराइसिस, मस्क्यूलर, डिस्ट्राफी, एस.एल.ई. इंफर्टिलिटी एच.आई.वी, किडनी एवं असंख्य रोगों का शमन करता है।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम से शरीर की सभी नाड़ियाँ परिशुद्ध हो जाती हैं। त्रिदोष अर्थात् वायु-पित्त-कफ विकारों का परिशमन होता है। मूत्ररोग, धातुरोग, शुक्रक्षय का भी निवारण होता है। हृदय की धमनियों के अवरोध खुल जाते हैं।

कॉलस्ट्रोल, ट्राइग्लिस, सराइड्स, एच.बी.एल की अनियमितता दूर हो जाती है। इस प्राणायाम को 250 से 500 बार करने से मूलाधार में सन्निहित कुण्डलिनी शक्ति, जो अधोमुख रहती है, ऊर्ध्व मुख हो जाती है।

भ्रामरी

साँस पूरा अन्दर भरकर मध्यमा अँगुली से नासिका के मूल में आँखों के पास दोनो ओर से थोड़ा दबायें। भृकुटी के मध्य भाग में ध्यान केन्द्रित कर दोनों अँगूठों से दोनों कानों को बन्द करके भ्रमर के समान गुंजन करते हुए साँस को बाहर निकाल दें।

वायु को भ्रमण कराने की क्रिया के कारण तथा भ्रमरनाद जैसी ध्वनि करने के कारण इसे भ्रामरी प्राणायाम कहते हैं। मन की एकाग्रता एवम् प्राण की स्थिरता के लिये यह उपयोगी है।

उद्गीथ

साँस को एक लय के साथ अन्दर भरना, एवं ओ३म् शब्द का विधिपूर्वक उच्चारण करते हुए साँस को बाहर फेंकना है।

प्रणव

सभी प्राणायाम करने के बाद श्वास-प्रश्वास पर अपने मन को टिकाकर प्राण के साथ ओ३म् का ध्यान करें।

सभी प्रकार के प्राणायाम पद्मासन या सिद्धासन में किये जाते हैं। पद्मासन स्वयं एक व्यायाम है। सुखासन में भी प्राणायाम किया जा सकता है। श्वास को भीतर में भरने को पूरक, श्वास को बाहर निकालने को रेचक तथा पूरक और रेचक के मध्य में साँस रोकने को कुंभक कहते हैं।

जब साँस को बाहर में ही रोक दिया जाता है तो इसे बाह्य कुम्भक कहते हैं। नित्यकर्म के पश्चात् उषाकाल में प्राणायाम करने से विशेष लाभ मिलता है। सूर्योदय के पश्चात् प्राणायाम करने पर इसका प्रभाव क्रमशः घटता जाता है। प्राणायाम क्रिया विधि किसी विशेषज्ञ से सीखकर उनकी देख-रेख में कुछ दिन करने के बाद उनके निर्देशानुसार स्वयं कर सकते हैं। अस्वस्थ रहने पर विशेषज्ञ के परामर्श से ही प्राणायाम करना चाहिए। त्रुटिपूर्ण प्राणायाम हानिकारक है। प्राणायाम करते समय दिव्य एवं सात्विक विचार मन में रखना चाहिए और अपने इष्ट देवता का ध्यान करना चाहिए।

एकाग्रचित्त होकर नियमानुसार प्राणायाम करने पर शरीर और मन स्वस्थ रहता है। प्राणोत्थान के साथ कुण्डलिनी जागरण की क्रिया शुरू हो जाती है। आत्मोन्नति की प्राप्ति होती है और अन्ततः साधक परमधाम को प्राप्त करता है।

मनोमय कोश

मनोमय कोश को गायत्री का तीसरा मुख कहा जाता है। मनोमय कोश में मन की प्रधानता है। मन अत्यन्त चंचल और वासना ग्रस्त है। मन एक प्रचंड प्रेरक शक्ति है। मन में जैसी इच्छा एवं तृष्णा उत्पन्न होती है, शरीर उसी दिशा में क्रियाशील हो जाता है। भोग की कामना मन में विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। कामना से मोह उत्पन्न होता है, मोह से लोभ और लोभ पाप का मूल है। कहा गया है – *''लोभः पापस्य कारणम्''*।

पुरानी कहावत है कि लोभ बुरी बला है। माया जाल में ज्ञानी पुरुष भी फँस जाता है। संत कबीर ने कहा है – *''माया तु ठगनी हम जानी''*।

दुर्गासप्तशती में कहा गया है कि –

ओ३म् ज्ञानिनामपि चेतान्सि, देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय, महामाया प्रयच्छति।।

भगवती महामाया ज्ञानियों के भी चित्त को बल पूर्वक खींचकर मोह में डाल देती हैं। मोह दुःख का कारण है। दुःख बन्धन है। बन्धन से मुक्ति के लिए मन को नियंत्रित करने पर ही स्थिर बुद्धि की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। गीता के अध्याय 2 के श्लोक 56 में भगवान श्रीकृष्ण कहते है–

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभय, क्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता और सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निस्पृह है तथा जिसके राग, भय, क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मनुष्य स्थिर बुद्धि मुनि कहा गया है।

आसक्ति ग्रस्त इन्द्रिय बुद्धिमान पुरुष के मन को बलात् हर लेती है।

गीता का वचन है -

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।

आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथ स्वभाव वाली इन्द्रियाँ बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती है। अतः ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण ने साधक के कर्त्तव्य को सुनिश्चित किया है-

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशेहि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

साधक को चाहिए कि वह समस्त इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्तवत् मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे।

मनोमय कोश की साधना के लिए ध्यान, त्राटक, जप और तन्मात्रा साधन हैं।

ध्यान

ध्यान मानसिक प्रक्रिया है, जिसके अनुसार किसी लक्ष्य को मनः क्षेत्र में स्थापित किया जाता है। अपना लक्ष्य निर्धारित कर ध्यान शक्ति के द्वारा अभीष्ट को प्राप्त किया जा सकता है।

ध्यान का अभिप्राय है किसी वस्तु को श्रद्धा से अपने मनोभूमि में धारण करना। जिस मूर्ति को मन में धारण करके साधक उपासना करता है, उसी के अनुसार उसका गुण, कर्म और स्वभाव बनने लगता है। महादेवी का ध्यान करने पर साधक के मन में स्वतः सद्विचार, सुसंस्कार और सद्ज्ञान जागृत हो जाते हैं।

महादेवी गायत्री के ह्रीं, श्रीं, क्लीं अर्थात् सरस्वती, लक्ष्मी, काली के तीनों रूपों में आराधना की जाती है। सभी देवी देवता एक ही ईश्वर की विविध शक्तियाँ हैं। ध्यान द्वारा इष्ट शक्ति को अपने अन्दर साधक धारण कर लेता है।

ध्यान के 5 अंग हैं- स्थिति, संस्थिति, विगति, प्रगति और संस्मिति।

स्थिति से तात्पर्य है किस स्थान पर किस आसन से किस समय में ध्यान किया जाये।

इष्ट देव की छवि का निर्धारण करने को संस्थिति कहते हैं। उपास्य देव की गुणावली की जानकारी को विगति कहते हैं।

उपासना काल में साधक के मन में रहने वाली भावना को प्रगति कहते हैं।

सखा, गुरु, माता–पिता, पुत्र, सेवक आदि जिस रूप में इष्ट देव की उपासना करनी है, उसे साधक ध्यान मे स्थापित कर लेता है।

सखी सम्प्रदाय के साधक अपने को गोपी मानकर नारी रूप धारण करते हैं और कृष्ण की उपासना उसी रूप में करते हैं, जिस रूप में राधा करती थीं।

गीता का वचन है–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

अपने–अपने मनोभाव के अनुकूल जो जिस रूप में अपने इष्ट देव का ध्यान करता है, वह वैसा ही देखता है।

ध्यान के लिए एकान्त समय में सुस्थिर होकर बैठिए, ध्यान कीजिए कि नीलाकाश में केवल भगवान भास्कर चमक रहे हैं। माँ गायत्री की छवि नीलाकाश में धुंधली दिखाई पड़ेगी। फिर धीरे–धीरे छवि स्पष्ट दिखाई देगी। माता के एक–एक अंग को मनोयोग पूर्वक देखिए। माता संकेतों द्वारा आपके मनः क्षेत्र में नवीन भावों का संचार करेंगी। यह भावना कीजिए कि आकाश में अवस्थित ध्रुवतारा से ही निकलकर शुभ्र किरण की सुधा ारा आपकी ओर आ रही है और प्रज्ञा रूप में आपमें प्रवेश कर रही हैं। उस परम दिव्य शक्ति को पाकर सद्विचार आपके मन में उठेंगे कि इस प्रकार के विचार गायत्री माता से ही प्राप्त हो रहे हैं।

त्रिकुटी में दिव्य ज्योति का ध्यान कीजिए और ध्यान कीजिए कि आपके मनः क्षेत्र में माता शक्तियों को जागृत कर रही हैं।

सूर्य चक्र में प्रकाश का ध्यान कीजिए। यह आत्मा का प्रकाश है, जिसमें आपको अपने आत्म स्वरूप की झांकी मिलती है। आत्म साक्षात्कार का केन्द्र सूर्य ही है। आत्मसाक्षात्कार से समस्त पाप-ताप, विकार, संस्कार जल गये हैं, ऐसी अनुभूति होती है।

त्राटक

त्राटक ध्यान का ही एक अंश है। त्राटक का उद्देश्य मन को एकाग्र करना है। इससे एकाग्रता बढ़ती है।

प्रातः काल के सुनहरे सूर्य पर या रात्रि में चंद्रमा पर त्राटक किया जाता है। कमजोर नेत्र वाले त्राटक न करें।

जप

जप पाप का नाश कर जन्म-मरण के बंधन से मुक्त करता है।

तन्मात्रा साधना

शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये पाँच तन्मात्रायें हैं। तन्मात्रा साधना के अन्तर्गत शब्द साधना, रूप साधना, रस साधना और स्पर्श साधना की जाती है।

विज्ञानमय कोश

अन्नमय, प्राणमय तथा मनोमय कोश की साधना के उपरान्त चतुर्थ आवरण विज्ञानमय कोश की साधना की जाती है। विज्ञानमय कोश से तात्पर्य है विशेष कोश, जिसके लिये विशिष्ट साधना की आवश्यकता होती है। ज्ञान का अभिप्राय है जानकारी। विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान का अभिप्राय है-गायत्री माता के प्रति श्रद्धा, धारणा, मान्यता तथा अनुभूति। गायत्री महाविज्ञान के साधक विज्ञानमय कोश की साधना के स्तर पर पहुँच जाने के बाद भली-भाँति यह जान जाते

हैं कि "आत्मा अमर है, शरीर से भिन्न है, ईश्वर का अंश है, सच्चिादानन्द स्वरूप है"।

विज्ञानमय कोश की परिभाषा

इस संसार में मनुष्य अज्ञानवश शरीर को ही सर्वस्व समझता है एवं उसके भोग के लिये उचित या अनुचित साधन से सामग्री जुटाने में लगा रहता है। विज्ञानमय कोश में साधक जिस मनोभूमि में पहुँचकर यह अनुभव करता है कि मैं आत्मा ही हूँ, उस मनोभूमि को विज्ञानमय कोश कहते हैं।

विज्ञानमय कोश में पहुँचकर साधक समझने लगता है कि मैं अविनाशी आत्मा हूँ। इस चरण में आत्मज्ञान का उदय हो जाता है और यह भाव उत्पन्न होता है कि शरीर मेरा वाहन है। प्राण मेरा अस्त्र है। मन मेरा सेवक है।

उसकी सोच शुद्ध हो जाती है और आत्मा का स्वरूप उसे स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वह योगी का स्थान ग्रहण कर लेता है। गीता में भगवान ने कहा है कि जब सब जीव सोते हैं, तब योगी जागता है और जब सब जीव जगते हैं, तब योगी सो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि योगी के मन में संसार के प्रति आसक्ति का भाव समाप्त हो जाता है और दिव्य विचारों का उदय होता है। साधक को यह ज्ञान हो जाता है कि कामिनी-कंचन माया है, जो आत्मा को गर्त में गिरा देती है। संयम, त्याग, परमार्थ और आत्मलाभ की ओर सांसारिक जीवों का ध्यान नहीं जाता है, किन्तु योगी परमार्थ एवं आत्मलाभ के लिये ही प्रयत्नशील रहते हैं।

यही योगी की जागृत अवस्था है। आत्म-ज्ञान, आत्म-साक्षात्कार, आत्म-लाभ और आत्म-दर्शन आदि तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब उपासक यह अनुभव करे कि वस्तुतः वह परमात्मा का अविछिन्न अंश है, अविनाशी आत्मा है। इस भावना कें परिपक्व हो जाने पर ही

आत्म साक्षात्कार होता है। आत्म साक्षात्कार के लिये शास्त्र में 4 साधनाओं का विधान किया गया है।

(1) सोऽहं साधना (अजपा जाप)-

सोऽहं साधना को अजपा-जाप कहते हैं। यह अनुभवात्मक साधना है। साधना के समय नासिका द्वारा वायु भीतर प्रवेश करने लगे, तो सूक्ष्म कर्णेन्द्रियों को सजग करके ध्यान पूर्वक अवलोकन कीजिए कि वायु के साथ -साथ 'सो' की स्वच्छ ध्वनि हो रही है। कुम्भक में 'अ' और रेचक के समय 'हं' की ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित कीजिए। सोऽ की ध्वनि का अनुभव होने पर यह धारणा कीजिए कि यह तेज बिन्दु परमात्मा का प्रकाश है और वायु बाहर निकलते समय 'हं' की ध्वनि का अनुभव होने पर यह धारणा कीजिए कि उस प्रकाश में ''यह मैं हूँ'' साथ ही हृदय स्थित सूर्य के प्रकाश विन्दु में आत्मा के तेजोमय स्फुलिंग की धारणा कीजिए।

''आरम्भ में उस हृदय चक्र स्थित विन्दु को 'सो' ध्वनि के समय ब्रह्म माना जाता है और पीछे उसी की 'हं' धारणा में जीव भावना हो जाती है। इस भाव परिर्वतन के लिये 'अ' का अवकाश काल रखा गया है। इसी प्रकार जब 'हं' समाप्त हो जाये, वायु बाहर निकल जाय और नई वायु प्रवेश करे उस समय भी जीव भाव हटाकर उस तेज विन्दु में ब्रह्म भाव बदलने का अवकाश मिल जाता है।

'स' ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। 'ऽ' प्रकृति का प्रतिनिधि है। 'हं' जीव का प्रतीक है। ब्रह्म, प्रकृति और जीव अजपा-जाप में एक साथ हो जाते है। 'सोऽहं' साधना की उन्नति के साथ विज्ञानमय कोश का परिष्कार हो जाता है। साधना की उन्नत अवस्था में परिष्कार होता जाता है। साधना की उन्नत अवस्था में साँस पर ध्यान नहीं रहता है केवल हृदय स्थित सूर्य-चक्र के ब्रह्म तेज का दर्शन होता है। साधक ब्राह्मी स्थिति में पहुँच जाता है।

आत्मानुभूति योग

साधना के प्रारम्भ में तीन लम्बे-लम्बे श्वास लेकर फेफड़ों में हवा भरी जाती है और बाहर निकाली जाती है। इसके बाद शरीर को शिथिल कर दिया जाता है। यह ध्यान किया जाता है कि शरीर के हर अंग में से हवा खींचकर प्राण हृदय में एकत्रित हो रहा है। समस्त शरीर शिथिल अवस्था में पहुँच जाता है। शान्त और शिथिल अवस्था प्राप्त करने के लिये इसका अभ्यास आवश्यक है।

प्रथम चरण की साधना

शरीर जब भली प्रकार से शिथिल हो जाता है, तब हृदय स्थान में एकत्रित अँगूठे के बराबर शुभ्र, श्वेत, ज्योति स्वरूप प्राण शक्ति का ध्यान करना चाहिए। यह भावना मन में साधक को धारण करना चाहिए। अजर-अमर, शुद्ध, बुद्ध, चेतन, पवित्र ईश्वरीय अंश आत्मा मैं हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप यही है।'' इस साधना का अभ्यास हो जाने पर दूसरी भूमिका में साधना का अभ्यास किया जाता है।

द्वितीय चरण की साधना

उपर्युक्त शिथिलासन के साथ आत्म दर्शन करने की साधना इस योग में प्रथम साधना है। जब यह साधना भली प्रकार अभ्यास में आ जाए, तो आगे की सीढ़ी पर पैर रखना चाहिए। दूसरी भूमिका में साधना का अभ्यास नीचे दिया जाता है।

ऊपर लिखी हुई शिथिलावस्था में नीलवर्ण अखिल आकाश का ध्यान कीजिए। उस आकाश में बहुत ऊपर सूर्य के समान ज्योति-स्वरूप आत्मा को अवस्थित देखिये। ''मैं ही यह प्रकाशवान् आत्मा हूँ'' ऐसा निश्चित संकल्प कीजिए। अपने शरीर को नीचे भूतल पर निस्पन्द अवस्था में पड़ा हुआ देखिये, उसके अंग-प्रत्यंगों का निरीक्षण कीजिए। यह हर एक कल-पुर्जा मेरा औजार है, मेरा वस्त्र है। यह

यंत्र मेरी इच्छानुसार क्रिया करने के लिये प्राप्त हुआ है। इस बात को बार-बार मन में दुहराइये। इस निस्पन्द शरीर में खोपड़ी का ढक्कन उठाकर ध्यानावस्था से मन और बुद्धि को दो सेवक शक्तियों के रूप में देखिये। ये दोनों हाथ बाँधे आपकी इच्छानुसार कार्य करने के लिये नतमस्तक खड़े हैं। इस शरीर और मन बुद्धि को देखकर प्रसन्न होइए कि इच्छानुसार कार्य करने के लिए ये मुझे मिले हैं। मैं उनका उपयोग सच्चे आत्मोत्थान के लिए ही करूँगा, यह भावना बराबर उस ध्यानावस्था में आपके मन में गूँजती रहनी चाहिए।

तृतीय चरण की साधना

जब दूसरी अवस्था का ध्यान भली प्रकार होने लगे, तो तीसरी अवस्था का ध्यान कीजिए। अपने को सूर्य की स्थिति में ऊपर आकाश में अवस्थित देखिये। ध्यान कीजिए कि भूमण्डल पर अपनी प्रकाश किरणें फेंक रहा हूँ। संसार मेरा कर्म-क्षेत्र और लीलाभूमि है, भूतल की वस्तुओं और शक्तियों को मैं इच्छित प्रयोजनों के लिये काम में लाता हूँ, पर वे मेरे ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकतीं। पंचभूतों की गतिविधि के कारण जो हलचलें संसार में हर घड़ी होती हैं, वे मेरे लिए एक विनोद और मनोरंजक दृश्य मात्र है, मैं किसी भी सांसारिक हानि-लाभ से प्रभावित नहीं होता। ''मैं शुद्ध, चैतन्य, सत्य स्वरूप, पवित्र, निर्लेप, अविनाशी आत्मा हूँ। मैं आत्मा हूँ, महान् आत्मा हूँ। महान् परमात्मा का विशुद्ध स्फुलिंग हूँ।'' यह मंत्र मन ही मन जपिये।

सिद्धावस्था

तीसरी भूमिका का ध्यान जब अभ्यास के कारण पूर्ण रूप से पुष्ट हो जाए और हर घड़ी वह भावना रोम-रोम में प्रतिभासित होने लगे, तो समझना चाहिए कि इस साधना की सिद्धावस्था प्राप्त हो गई, यह जागृत समाधि या जीवन-मुक्त अवस्था कहलाती है।

आत्मचिंतन की साधना

आत्म चिन्तन की प्रथम साधना-साधक के लिये आत्म चिन्तन की साधना का विधान किया गया है। परन्तु सामान्य जन को भी आत्मचिन्तन करना चाहिए, सोने के पूर्व आध्यात्मिक दृष्टि से दिनभर की क्रियाकलापों की समालोचना करनी चाहिए। बहुमूल्य समय का कितना भाग उचित रीति से, कितना अनुचित रीति से, कितना निरर्थक रीति से व्यतीत किया गया है"। सद्वृत्तियाँ प्रधान रही हैं या असद्वृत्तियाँ। जितना अनुचित हुआ हो उसके लिये आत्मदेव के सम्मुख पश्चाताप् करें, जो उचित हुआ हो उसके लिये परमात्मा को धन्यवाद ज्ञापन करें।

आत्मचिन्तन की दूसरी साधना

आत्मचिन्तन की दूसरी साधना यह है कि प्रातःकाल उठने पर तीन बार लम्बी साँसें खींचकर शरीर में स्फूर्ति लायें। दिनभर के कार्यक्रम की योजना बनायें तथा यह ध्यान रखें कि इससे आत्मलाभ हो। परमात्मा का ध्यान कीजिए और सादगी तथा उत्साह के साथ दैनिक कार्य में प्रवृत्त हो जाइए। आत्मचिन्तन से विचारधारा एवं कार्य प्रणाली समुन्नत होती है और इससे आत्मलाभ होता है।

स्वर योग

नाड़ी-विज्ञानमय कोश में वायु की प्रधानता है। इसमें 22 संस्थान को जागृत कर साधक आसानी से आनन्दमय कोश में पहुँच सकता है। वायुतत्त्व पर अधिकार हो जाने से सफलता सुनिश्चित हो जाती है। श्वास प्रश्वास के मार्गों को नाड़ी की संज्ञा दी गई है। शरीर में 72 हजार नाड़ियाँ हैं। आमतौर पर उन्हें नस समझा जाता है, लेकिन इसमें प्राण वायु का संचरण होता है। नाभि में कुण्डली के आकार की एक नाड़ी है। इसमें से 1. इड़ा 2. पिंगला 3. सुषुम्ना 4. गंधारी 5.

हस्तजिह्वा 6. पूषा 7. यशस्विनी 8. अलंबुषा 9. कुहू तथा 10. शंखिनी नाभि से दस नाड़ियाँ निकलती है। ये नाड़ियाँ शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में फैली हुई हैं। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना मुख्य नाड़ियाँ हैं। इड़ा को चन्द्र नाड़ी, पिंगला को सूर्य नाड़ी कहते हैं, जो क्रमशः बायें नसों एवं दायें नसों में है। दोनों नसों के बीच में सुषुम्ना है।

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र इस ब्रह्माण्ड में नियमित रूप से अपने कार्य का सम्पादन करते हैं, उसी प्रकार मानव जीवन में इड़ा पिंगला कार्यरत रहती हैं। गान्धारी बायीं आँख में, हस्त जिह्वा दायीं आँख में, पूषा दाहिने कान में, यशस्वी बायें कान में, अलंबुषा मुख में, शंखिनी मूलाधार में क्रमशः दाहिने कुहू लिंग क्षेत्र में स्थित हैं। इस प्रकार शरीर के दस भागों में दस नाड़ियाँ काम करती हैं।

हठयोग में नाभिकन्द मूलाधार चक्र माना गया है, लेकिन स्वर योगशास्त्र में नाभि का स्थान उदर की टुण्डी माना गया है। श्वास क्रिया का प्रत्यक्ष सम्बन्ध पेट से है। प्राणायाम द्वारा उदर संस्थान तक प्राण वायु को ले जाकर नाभि केन्द्र से इस प्रकार रगड़ा जाता है कि वहाँ की सुप्त शक्तियाँ जाग सकें।

स्वर चन्द्र और सूर्य की अदृश्य किरणों से प्रभावित होता है। चन्द्र किरण का गुण शीतल है और सूर्य किरण का गुण उष्ण है। दोनों के गुणात्मक प्रभाव भिन्न-भिन्न हैं। चन्द्र किरण के गुण गाम्भीर्य और विवेक आदि हैं। उष्ण सूर्य किरण से तेज, शौर्य, उत्साह, बल, चंचलता आदि गुणों का प्रादुर्भाव होता है। मनुष्य को सांसारिक जीवन में शान्त और अशान्त दोनों तरह के काम से वास्ता पड़ता है। किसी भी काम का अन्तिम परिणाम उसके आरम्भ पर निर्भर करता है। इसलिए मनुष्य यह सुनिश्चित करता है कि हमारे शरीर और मन की स्वाभाविक स्थिति इस प्रकार का कार्य करने के लिए अनुकूल या प्रतिकूल है। उचित स्थिति में कार्य प्रारम्भ करने पर वह फलीभूत

होता है। विवेक पूर्ण और स्थायी कार्य जैसे दान, मंदिर, कुआँ, तालाब, गृह निर्माण आदि कार्य चन्द्र स्वर में प्रारम्भ करना चाहिए। कार्य, व्यापार, विद्यारम्भ आदि जोश के साथ जो काम प्रारम्भ किया जाता है, जैसे- युद्ध, व्यायाम, खेल आदि कार्य सूर्य स्वर में प्रारम्भ किया जाना चाहिए। ऐसी मान्यता है कि सूर्य की उष्णता के प्रभाव से जीवन तत्त्व उत्तेजित अवस्था में रहता है, जो ऐसे कार्यों के शुभारम्भ के लिए उपयुक्त समय है। जब इड़ा, पिंगला रुक जाती है और सुषुम्ना चलती है तो शरीर, सन्धि अवस्था में हो जाता है, जिसे संध्याकाल कहते हैं। सन्धि अवस्था में पारलौकिक भावनाएँ मनुष्य में जागृत होती हैं और संसार के प्रति उदासीन भाव मनुष्य में उत्पन्न होता है।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति आत्म चिन्तन की ओर ले जाती है। इसलिए चिन्तन और ईश्वरोपासना के लिए उपयुक्त समय है इड़ा और पिंगला का सन्धि काल। इड़ा शीत प्रदत्त और पिंगला ग्रीष्म प्रदत्त है। सुषुम्ना बसन्त ऋतु है, जो भगवत् कार्य के लिए उपयुक्त है।

स्वर परिवर्तन

कुछ उपायों द्वारा स्वर को बदला जा सकता है, जो स्वर नहीं चल रहा हो, उसे अंगूठे से दबायें और जिस नथुने से सांस चलती है उससे हवा खींचे। जिस नथुने के द्वारा साँस खींची गयी है उसे दबाकर दूसरे नथुने से साँस को बाहर निकालें। कुछ देर तक यह क्रिया करने पर साँस की चाल बदल जाएगी।

जिस नथुने से साँस चल रही है, उसी करवट लेट जाएँ, साँस बदल जाएगी।

जो स्वर चल रहा हो, उस ओर की काँख में कोई सख्त चीज कुछ देर तक दबाकर रखने से स्वर की चाल बदल जाएगी।

चलित स्वर वाले नासा छिद्र पर पुरानी स्वच्छ रूई का फाहा रखने से स्वर बदलता है।

स्वर संयम से दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक प्राणी का पूर्ण आयु प्राप्त करना श्वास-प्रश्वास क्रिया पर निर्भर करता है। सामान्यतः मनुष्य दिन-रात में 21600 बार श्वास लेता है। श्वास का व्यय जितना कम होगा, आयु उसी अनुपात में बढ़ जाएगी। ब्रह्मा मनुष्य को 120 वर्ष की आयु देते हैं और तदनुसार श्वासों का प्रावधान करते हैं। इसलिए श्वासों का संयम करने पर आयु लम्बी होगी। जो जीव एक मिनट में जितनी साँसें लेता है, उसी के अनुपात में उसकी आयु निर्धारित रहती है।

आयु तालिका

प्राणी	श्वास की गति प्रति मिनट	पूर्णायु
खरगोश	38 बार	08 वर्ष
बन्दर	32 बार	10 वर्ष
कुत्ता	29 बार	12 वर्ष
घोड़ा	19 बार	35 वर्ष
मनुष्य	13 बार	120 वर्ष
साँप	08 बार	1000 वर्ष
कछुआ	05 बार	2000 वर्ष

दौड़-धूप और कठोर परिश्रम करने वाले आदमी के साँस का क्षय अधिक होता है, इसलिए कामुक और पहलवान की आयु अपेक्षाकृत छोटी होती है। साँस सदा पूरी और गहरी होनी चाहिए। नाभि तक पूरी साँस लेने पर साँसों की गति धीमी पड़ जाती है, जिससे साँस का संचय होता है। झुककर कभी नहीं बैठना चाहिए। मस्तिष्क की पुष्टि करने वाला तथा सुषुम्ना को बलवान बनाये रखने

वाला जीवन तत्त्व मेरुदण्ड के भीतर प्रवाहित होता रहता है। जब मेरुदण्ड झुकता है तो तरल तत्त्व का प्रवाह रुक जाता है और सुषुम्ना कमजोर पड़ जाती है।

सोते समय चित्त होकर नहीं लेटना चाहिए कारण कि सुषुम्ना स्वर प्रभावित होता है। भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। इसलिए खाना खाने के बाद प्रथम बायीं फिर दाहिनी करवट लेटना चाहिए। भोजन के बाद सूर्य स्वर में कम से कम 15 मिनट आराम करना चाहिए। सूर्य स्वर में पाचन शक्ति की वृद्धि होती है। यही कारण है कि भोजन के बाद बायीं करवट लेकर मनुष्य सोता है, जिससे पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है। बायीं करवट लेटने से सूर्य स्वर चलता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की गतिविधि पर ध्यान रखने से वायु तत्त्व पर अधिकार हो जाता है। व्यक्ति की भविष्य के बारे में अनुमान शक्ति मजबूत हो जाती है। वर्षा से बहुत पहले मकड़ी को यह अनुमान हो जाता है कि मेघ बरसने वाला है। मकड़ी में जैसी सूक्ष्म वायु परीक्षण चेतना होती है, उससे भी अधिक प्रबुद्ध चेतना स्वर योगी को मिल जाती है और दिव्य दृष्टि से वह जान लेता है कि भविष्य में क्या होने वाला है। स्वर ज्ञानी भविष्यवक्ता हो जाता है।

वायु साधना

इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना-साधक को साधना के समय नाभिचक्र में शुभ्र ज्योति मण्डल का ध्यान करने पर उसमें ज्वार-भाटे की तरह हिलोरें उठती हुई दिखाई पड़ती हैं। बायें स्वर की स्थिति में ज्योति केन्द्र का वर्ण चन्द्रमा के समान पीला होगा और इड़ा नाड़ी से होकर श्वास प्रवाह का आवागमन होगा।

''नाभि से नीचे की ओर मूलाधार चक्र में होती हुई मेरुदण्ड में होकर मस्तिष्क के ऊपरी भाग की परिक्रमा करती हुई नासिका के

बांये नथुने तक इड़ा नाड़ी जाती है। नाभि-केन्द्र के बाम भाग की क्रियाशीलता के कारण यह नाड़ी का काम करती है और बायाँ स्वर चलता है। इस तत्त्व को भावना के दिव्य नेत्रों द्वारा भलीभाँति चित्रवत् कीजिए।"

दाहिने स्वर चलने की स्थिति में नाभिकेन्द्र का ज्योति मण्डल सूर्य के समान अरुणिम श्वेत वर्ण का होगा और पिंगला नाड़ी से होकर श्वास-प्रश्वास की क्रिया होगी। नाभि के नीचे मूलाधार होकर मेरुदण्ड तथा मस्तिष्क में होती हुई दाहिने नथुने तक पिंगला नाड़ी जाती है। इससे नाभिचक्र के दाहिने भाग में चैतन्यता होती है और दाहिना स्वर चलता है। साधक ध्यान शक्ति से इसका निरीक्षण करता है।

जब स्वर संधि काल में नाभिचक्र स्थिर हो जाता है और वायु का आवागमन नहीं होता है। इस सन्धि काल में तीसरी नाड़ी मेरुदण्ड में अत्यन्त द्रुत वेग से बिजली के साथ कौंधती है, इसे सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्ना का जो विद्युत प्रवाह है वही आत्मा की चंचल झाँकी है। आरम्भ में यह झाँकी मन्द किरण जैसी दिखाई पड़ती है। साधना से यह चमक अधिक प्रकाशमान और अधिक देर तक ठहरने वाली हो जाती है। तीन गुण, पाँच संस्कार एवं अन्तःकरण की जैसी स्थिति होती है, उसी के अनुरूप सुषुम्ना का रूप ध्यानावस्था में दृष्टिगोचर होता है।

इड़ा, पिंगला की क्रियायें जब स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है तब साक्षी रूप से साधक अवलोकन करता है। नाभिचक्र के जिस भाग में ज्वार-भाटा आता रहता है वही स्वर गतिमान रहता है। ज्योति केन्द्र में इस आधार पर चन्द्रमा और सूर्य का रंग दिखाई पड़ता है। इस क्रिया को साधक देखता रहता है। साँस के भीतर प्रवेश करने पर

और बाहर लौटने पर जो क्रिया होती है, उसे आभ्यान्तर सन्धि कहते हैं। जब साँस पूरी तरह बाहर निकलती है और नई साँस भीतर आती है तब उसे बाह्य सन्धि कहते हैं। कुम्भक काल में सुषुम्ना की विद्युत आभा का अत्यन्त चंचल प्रकाश दिव्य नेत्रों से देखा जा सकता है।

"जब इड़ा बदलकर पिंगला में या पिंगला बदलकर इड़ा में जाती है तो सुषुम्ना की सन्धिवेला आती है। सुषुम्ना की सन्धि वेला में साधक आत्म ज्योति का दर्शन करते हैं। प्रारम्भ में यह ज्योति चंचल और विविध आकृतियों की होती है और अन्त में विस्तृत एवं मण्डलाकार हो जाती है। इस स्थिति में पहुँचने पर साधक आत्म साक्षात्कार करते हैं। वायु पर अधिकार कर लेने के बाद साधक सुषुम्ना में अवस्थित हो जाता है और सर्वत्र उसकी पहुँच हो जाती है। स्वर शक्ति के द्वारा अणिमा, महिमा और लघिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती है। विज्ञानमय कोश की वायु साधना सफलतापूर्वक सम्पन्न कर साधक की आत्मा दिव्य हो जाती है। ऐसे साधक को गुरुदेव कहा जाता है।

ग्रन्थियाँ

विज्ञानमय कोश की चतुर्थ भूमिका में प्रवेश करने के बाद साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि तीन बन्धनों से बन्धा हुआ है।

रुद्रग्रन्थि-विष्णुग्रन्थि-ब्रह्मग्रन्थि

ये बन्धन हैं रुद्रग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और ब्रह्मग्रन्थि। इनके तीन गुण हैं रुद्रग्रन्थि तम, विष्णुग्रन्थि सत् और ब्रह्मग्रन्थि रज। इन तीनों गुणों से अतीत हो जाने पर भी आत्मशक्ति प्राप्त होती है। साधक को तीनों ग्रन्थियों को खोलना है। इस कार्य को सतत् ध्यान में रखने के लिए यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। ग्रन्थियों का यह भी तात्पर्य है

कि तम, रज, सत् ये तीनों गुणों द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और करण शरीर बने हुए हैं। यज्ञोपवीत में ग्रन्थियाँ लगायी जाती है। इसका तात्पर्य है कि रुद्रग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और ब्रह्मग्रन्थि से जीव बँधा हुआ है। साधक ही नहीं अन्य की भी यह जिम्मेदारी है कि आत्मा को इन तीनों बन्धनों से मुक्त करें। शास्त्र में इसे पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण कहा गया हैं। तम को प्रकृति, रज को जीव और सत् को आत्मा की संज्ञा दी गयी है। तम को सांसारिक जीवन, रज को व्यक्ति जीवन और सत् को आध्यात्मिक जीवन कहा जाता है।

देश, जाति एवं समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन पितृऋण से मुक्ति है। शारीरिक, बौद्धिक एवं आर्थिक शक्तियों से अपने को सुसम्पन्न बनाना ऋषिऋण से छूटना है।

स्वाध्याय, सत्संग, मनन-चिन्तन आदि आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि से मुक्त होकर आत्मा को देवतुल्य बना देने को देवऋण मुक्ति कहते हैं।

दार्शनिक दृष्टि से तम, रज, और सत् का अर्थ क्रमशः शक्ति, साधन और ज्ञान है। इन तीनों की न्यूनता अर्थात् विकृत अवस्था बन्धनकारक है। इसलिए साधक द्वारा इन्हें परिष्कृत कर त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

ग्रन्थि-योग-साधना

'शाक्तत्वर' में कहा गया है कि तीन गुणों, तीन शरीरों, तीन क्षेत्रों का व्यवस्थित या अव्यवस्थित होना अदृश्य केन्द्रों पर निर्भर रहता है, जिन्हें आत्मिक साधना विधि से उन्नत अवस्था में ले जाकर स्थूल, सूक्ष्म एवं करण शरीर के बन्धन को खोल सकते हैं।

विज्ञानमय कोश साधना में यह अनुभव होता है कि उसके भीतर तीन हलचल करती हुई हल्की गांठे हैं। एक गांठ मूत्राशय के समीप,

दूसरी अमाशय के ऊपरी भाग में और तीसरी मस्तिष्क के ऊपरी केन्द्र में विदित होती है। मूत्राशयवाली ग्रन्थि को रुद्रग्रन्थि, अमाशयवाली को विष्णु ग्रन्थि और मस्तिष्कवाली को ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं।

दूसरे शब्दों में इन्हें महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती भी कहते हैं। इन तीनों महाग्रन्थियों की दो सहायक ग्रन्थियाँ भी होती हैं, जो मेरुदण्ड स्थित सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में रहने वाली ब्रह्मनाड़ी के भीतर रहती है। इन्हें चक्र कहते हैं। मस्तिष्क में निवास करने वाली ब्रह्म ग्रन्थि की सहायक ग्रन्थि विशुद्धि चक्र और आज्ञा चक्र है। योगक्रिया से षट् चक्रों का वेधन किया जाता है।

रुद्रग्रन्थि

रुद्रग्रन्थि की शाखायें मूलाधार चक्र एवं स्वाधिष्ठानचक्र हैं। विष्णुग्रन्थि की दो शाखायें मणिपूरचक्र तथा अनाहत चक्र हैं।

रूद्रग्रन्थि का आकार बेर के समान ऊपर को नुकीला, नीचे को भारी, पेंदे में गड्ढा लिए होता है, इसका वर्ण कालापन मिला हुआ लाल होता है। इस ग्रन्थि के दो भाग हैं। दक्षिण भाग को रुद्र और वाम भाग को काली कहते हैं। दक्षिण भाग के अन्तरंग गह्वर में प्रवेश करके जब उसकी झाँकी की जाती है, तो ऊर्ध्व भाग में श्वेत रंग की छोटी-सी नाड़ी हल्का-सा श्वेत रस प्रवाहित करती है, एक तन्तु तिरछा पीत वर्ण की ज्योति-सा चमकता है। मध्य भाग में एक काले वर्ण की नाड़ी साँप की तरह मूलाधार से लिपटी हुई है। प्राण वायु का जब उस भाग से सम्पर्क होता है, तो डिम-डिम जैसी ध्वनि उसमें से निकलती है। रुद्रगन्थि की आन्तरिक स्थिति की झाँकी करके ऋषियों ने रुद्र का सुन्दर चित्र अंकित किया है। मस्तक पर गंगा की धारा, जटा में चन्द्रमा, गले में सर्प, डमरू की डिम-डिम ध्वनि, ऊर्ध्व भाग

में त्रिशूल के रूप में अंकित करके भगवान् शंकर का ध्यान करने लायक एक सुन्दर चित्र बना दिया। उस चित्र में अलंकारिक रूप से रूद्रग्रन्थि की वास्तविकतायें ही भरी गई हैं। उस ग्रन्थि का वाम भाग जिस स्थिति में है, उसी के अनुरूप काली का सुन्दर चित्र सूक्ष्मदर्शी आध्यात्मिक चित्रकारों ने अंकित कर दिया है।

एक ही वस्तु के दो पहलू दो प्रकार के होते हैं। एक ही ग्रन्थि दक्षिण भाग से देखने में पुरुष तत्त्व प्रधान आकार की और बाई ओर से देखने पर नारी तत्त्व प्रधान आकार की परिलक्षित होती है।

एक ही ग्रन्थि को रुद्र या शक्ति ग्रन्थि कहा जा सकता है। विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सरस्वती का संयोग भी इसी प्रकार का है।

विष्णुग्रन्थि

विष्णु ग्रन्थि का वर्ण, आकार, आन्तरिक स्थिति, ध्वनि तथा आकृति से विष्णु का चित्र स्पष्ट हो जाता है। नीलवर्ण, गोलाकार, शंखध्वनि, कौस्तुभमणि बनमाला यह चित्र विष्णुग्रन्थि का प्रतिबिम्ब है।

ब्रह्मग्रन्थि

ब्रह्मग्रन्थि मस्तिष्क के बीच में है। सहस्त्रार शतदल कमल ऊपर में है। यह ग्रन्थि चतुष्कोण है तथा नीचे से फैली हुई है। इसका एक तन्तु ब्रह्मरंध्र से जुड़ा है। यहीं शेषनाग की शय्या पर लेटे हुए भगवान की नाभि से उत्पन्न चार मुख वाले ब्रह्मा चित्रित किए गए हैं। बाम भाग में यही ग्रन्थि चतुर्भुजी सरस्वती हैं। उनकी वीणा की झंकार से ओंकार ध्वनि सतत् झंकृत रहती है। ये तीनों ग्रन्थियाँ सुषुप्तावस्था में बँधी रहती हैं। फलस्वरूप अशक्ति, अभाव और अज्ञान मनुष्य को नाना प्रकार से दुःख देते रहते हैं। जब ये ग्रन्थियाँ खुलने लगती हैं, तो

साधक को शक्ति, सम्पन्नता और प्रज्ञा का विशाल भंडार प्राप्त हो जाता है। वह स्वतः मुक्ति का अधिकारी हो जाता है।

विज्ञानमय कोश की ये तीन ग्रन्थियाँ तप की गर्मी से तपती है, तपस्या से त्रिदेव और त्रिदेवियों का परिपाक हो जाता है। तपस्या में साधक का पुरुषार्थ ही प्रधान रहता है। श्रम और प्रयत्न ही परिपक्व होकर सिद्ध हो जाते हैं।

विष्णु ग्रन्थि के मूल में श्री और ब्रह्मग्रन्थि के मूल में ह्रीं तत्त्व अवस्थित हैं। मूलबन्ध बाँधते हुए एक ओर से अपान और दूसरी ओर से कूर्म प्राण को चिमटे की तरह बनाकर रुद्रग्रन्थि को पकड़कर रेचक प्राणायाम द्वारा दबाते हैं। इस दबाव की गर्मी से क्लीं बीज जागृत हो जाता है। वह नोकदार डण्ठल की आकृति का बीज अपनी ध्वनि और रक्तवर्ण प्रकाश के साथ परिलक्षित होने लगता है। इस जागृत क्लीं बीज की अग्रिम नोक से कंचुकि क्रिया की जाती है। वेधन साधना को कंचुकि क्रिया कहते हैं। रुद्र ग्रन्थि के मूल केन्द्र में क्लीं बीज की अग्रशिखा से जब निरन्तर कंचुकि क्रिया होती है तो भीतर ही भीतर विशेष प्रकार का लहलहाता हुआ तड़ित प्रवाह गतिमान होता है, जिसकी आकृति और गति सर्प जैसी होती है। इस तड़ित प्रवाह को महादेव के गले का सर्प कहा जाता है।

रुद्रग्रन्थि के ऊपरी भाग में पहले क्लीं बीज की अग्निजिह्वा प्रकट होती है। इसी को काली की बाहर निकली हुई जीभ माना गया है। इसे शंकर का त्रिनेत्र भी कहा जाता है। क्लीं धीरे-धीरे खिलकर फूल बन जाता है और उसकी कंचुकि क्रिया से धीरे-धीरे रुद्र ग्रन्थि खुलने लगती है। कमल पुष्प के खिलने को पद्मासन कहा गया है।

साधना के फलीभूत होने पर रुद्रग्रन्थि का तीसरा भाग प्रकट होता है। साक्षात् रुद्र का, काली का अथवा लाल सर्प के समान

लहलहाती हुई और क्लीं घोष करती हुई अग्निशिखा का साक्षात्कार होता है। रुद्र जागरण साधक में अनेक प्रकार की गुप्त-प्रकट शक्तियाँ भर देता है। संसार की समस्त शक्तियों का मूल केन्द्र रुद्र है। रुद्रलोक को कैलाश कहा जाता है।

जालन्धर बन्ध की क्रिया से समान और उदान प्राणों द्वारा विष्णु ग्रन्थि को दबाया जाता है तो उसके मूल भाग का श्रीं बीज जागृत हो उठता है। यह गेंद की तरह है। जो अपनी धुरी पर घूमने लगता है। घूमने की क्रिया के साथ-साथ एक ऐसी सनसनाती हुई सूक्ष्म ध्वनि होती है, जिसको दिव्य स्रोत्रों से श्रीं जैसा सुना जाता है। श्रीं बीज को विष्णु ग्रन्थि की बाह्य परिधि में भ्रामरी क्रिया के अनुसार घुमाया जाता है।

वर-वधू के फेरे लेने की क्रिया भ्रामरी क्रिया का ही रूप है। विष्णु ग्रन्थि का श्रीं बीज भ्रामरी गति से परिक्रमा करने लगता है, जिससे महत् तत्त्व का जागरण होता है।

पूरक प्राणायाम की प्रेरणा देकर समान और उदान द्वारा जागृत किये गये श्रीं बीज से जब विष्णु ग्रन्थि के बाह्य आवरण की मध्य परिधि में भ्रामरी क्रिया की जाती है तो उसके गुंजन से विष्णु ग्रन्थि के भीतरी भाग में चैतन्य जागृत होता है। इस चेतना की विद्युत तरंगे उठने लगती है-जैसे पक्षी के पंख। उसी के आधार पर विष्णु का वाहन गरुड़ माना गया है।

साधक की विष्णु ग्रन्थि खुल जाती है, तो उसकी मानसिक स्थिति के अनुरूप उसे विष्णु-लक्ष्मी या पीतवर्ण की अग्निशिखा की लपटों के समान ज्योतिपुंज का साक्षात्कार होता है। साधक स्वर्ग अथवा विष्णुलोक को प्राप्त करता है। साधक को विश्व के ऐश्वर्य पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्मग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य भाग में सहस्रदल कमल की छाया में अवस्थित है, उसे अमृत कलश भी कहते हैं, जिसकी रक्षा शेषनाग करते हैं।

"उड्डियान बन्ध लगाकर ध्यान और धनंजय प्राणों द्वारा ब्रह्मग्रन्थि को पकाया जाता है। इसे तप की संज्ञा दी गयी है। तपस्या से मूलाधार में अवस्थित शक्ति जागृत होती है। इसी गति को प्लावनी गति कहते हैं। जैसे जल में लहरें उत्पन्न होती है और निरन्तर आगे की ओर चलती हैं, उसी प्रकार ह्रीं बीज की प्लावनी गति से ब्रह्मग्रन्थि को दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर प्रेरित करते हैं। चतुष्कोण के ऊर्ध्व भाग में ह्रीं तत्त्व रूक-रूककर गांठे सी बनाता हुआ आगे की ओर चलता है और परिक्रमा करके अन्त में मूल संस्थान को लौट आता है।"(गायत्री महाविज्ञान)

इसी परिक्रमा को आधार बनाकर माला का व्यवहार किया जाने लगा। इस परिक्रमा में 108 दचके लगाए जाते हैं। माला में भी 108 दाने होते हैं। इन तत्त्वों की तरंगे मन्थर गति से तरंगित होती हैं, जो हंस की चाल से मिलती जुलती हैं। इसलिए ब्रह्मा का वाहन हंस माना गया है। वीणा के तारों की झंकार से मिलती जुलती है। ब्रह्मलोक में सरस्वती की वीणा की झंकार अनवरत् झंकृत होती रहती है, इसलिए ह्रीं सरस्वती का परिचायक है। ह्रीं बीज प्लावनी क्रिया कुम्भक प्राणायाम की प्रेरणा से शुरू होती है। प्लावनी क्रिया के फलस्वरूप ब्रह्मग्रन्थि खुल जाती है। साधक को ब्रह्म के रूप में, सरस्वती के रूप में अथवा श्वेतवर्ण प्रकम्पित शुभ्र ज्योति शिखा के समान साक्षात्कार होता है। आत्मिक शक्तियाँ जागृत हो जाने के कारण परमेश्वर का सायुज्य प्राप्त हो जाता है, इसे ब्राह्मी स्थिति कहते हैं, जो साधक प्राप्त कर लेता है। षट्चक्र का वेधन योग अथवा महायोग का ग्रन्थिवेधन दोनों समान हैं। साधक

अपनी स्थिति के अनुसार उन्हें अपनाते हैं। दोनो से विज्ञानमय कोश का परिष्कार होता है।

आनन्दमय कोश

पंचकोश की साधना का अन्तिम चरण आनन्दमय कोश की साधना है। जिस आवरण में पहुँचने पर आत्मा को आनन्द मिलता है, उसे आनन्दमय कोश कहते हैं। इसकी साधना से साधक को शान्ति, स्थिरता, अनुकूलता की स्थिति प्राप्त होती है। साधक "स्थित प्रज्ञ" और "समाधिस्थ" की स्थिति प्राप्त कर लेता है।

जीवन में उतार-चढ़ाव होता ही रहता है। उलझन पूर्ण परिस्थितियाँ मनुष्य को परेशान करती हैं, उनसे साधक विचलित नहीं होता है। साधक का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। सांसारिक व्यापार को वह अपने दृष्टिकोण से देखता है। अपने दृष्टिकोण में वह तात्त्विकता एवं सूक्ष्मदर्शिता को प्राथमिकता देता है। साधक अपने को संतुष्ट और शान्त अनुभव करता है।

साधना के इस चरण में साधक की इन्द्रियाँ नियंत्रित हो जाती हैं। इन्द्रियाँ आत्मा को प्रभावित नहीं कर पाती हैं। कछुआ जैसे अपने अंगों को समेट कर अपने भीतर कर लेता है वैसे ही साधक अपनी कामनाओं और लालसाओं को अपनी अन्तःभूमिका मे समेट लेता है। ऐसे मनुष्य को समाधिस्थ कहा जाता है।

पंचम सोपान आनन्दमय कोश में साधक समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है। अपने आप को ब्रह्म में लीन करने का जिस अवस्था में बोध होता है, उसे ब्रह्म समाधि कहते हैं।

समाधि के कई भेद हैं-काष्ट समाधि-क्लोरोफार्म आदि सूंघने से आयी हुई समाधि को काष्ट समाधि कहते हैं। भावना की अधिकता में मनुष्य की शारीरिक चेष्टाएँ संज्ञाहीन हो जाती हैं, उसे भाव समाधि

कहते हैं। ध्यान समाधि में अदृश्य एवं निराकर सत्ता साकार दिखाई पड़ने लगती है। प्राण समाधि ब्रह्मरंध्र में प्राणों को एकत्रित करके की जाती है। ब्रह्म समाधि में साधक समझने लगता है कि वह ब्रह्म में लीन हो गया है।

सहज समाधि सर्वोत्तम समाधि है। महात्मा कबीर ने सहज समाधि का वर्णन करते हुए इसके लिए ही अनुयायियों को प्रेरित किया है। कबीरदास का वचन है –

साधो! सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप भयो जा दिन ते सुरति न अनत चली।।
आँख न मूँदूँ कान न रूँदू काया कष्ट न धारूँ।
खुले नयन से हँस-हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ।।
कहूँ सोई नाम, सुनूँ सोई सुमिरन, खाऊँ सोई पूजा।
गृह उद्यान एक सम लेखूँ भाव मिटाऊँ दूजा।।
जहाँ-जहाँ जाऊँ सोई परिक्रमा जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत पूजूँ और न देवा।।
शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन वासना त्यागी।
बैठत उठत कबहूँ ना विसरें, ऐसी ताड़ी लागी।।
कहै 'कबीर वह उन्मनि रहती सोई प्रकट कर गाई।
दुख सुख के एक परे परम सुख, तेहि सुख रहा समाई।।

(गा.म.वि.)

आनन्दमय कोश की साधना में तीन तरह की साधना महत्त्वपूर्ण है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है –

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। (गीता अ.8/ 14)

जो पुरुष अनन्य चित्त होकर नित्य निरन्तर मुझको स्मरण करता है, उसे हम सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

नाद

नाद अर्थात् शब्द को ब्रह्म कहा गया है। जन्म लेने के बाद ब्रह्म से जीव का सम्बन्ध छूट जाता है और अनेक योनियों में परिक्रमा का काम शुरु हो जाता है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो अपने लिये निर्धारित क्रिया का सम्पादन करता है, वह परमधाम तक पहुँच जाता है। जीव के कार्यकलाप से प्रसन्न होकर भगवान उसे मानव तन प्रदान करते हैं ताकि वह उनकी उपासना कर परमधाम प्राप्त कर सके। शब्द की साधना से अन्तर्ध्वनि को भगवान तक पहुँचा सकते हैं। इसलिए सृष्टि की उत्पत्ति का प्रारम्भ ही शब्द से हुआ। पंचभूतों में सबसे पहले आकाश बना, आकाश की तन्मात्रा शब्द है। शब्द दो प्रकार के हैं–सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म शब्द को विचार कहते हैं, स्थूल को नाद कहते हैं। ब्रह्मलोक से शब्द प्रवाह मानव लोक में प्रवाहित होता रहता है। जिसे हम साधना से सुन सकते हैं। ईश्वरीय शब्द जो इस विचारधारा को प्रेरित करता है, वह मनुष्य के लिये अत्यन्त कल्याणकारी होता है। यह विचारधारा मनुष्य की आत्मा से टकराती है। उचित और अनुचित के निर्धारण के लिए ईश्वरीय प्रेरणा मनुष्य को प्राप्त होती रहती है। इसको अन्तःकरण की पुकार कहते हैं। अन्तःकरण की पुकार सुनकर और उसे विचारकर जो कार्य मनुष्य करता है, वह हमेशा कल्याणकारी होता है।

नाद योग

शब्द, ब्रह्म का दूसरा रूप है। प्रकृति के अन्तराल में ॐ ध्वनि निरंतर ध्वनित होती रहती है। ॐ ध्वनि विभिन्न तत्त्वों के सम्पर्क में आकर विविध प्रकार की स्वर लहरियों में परिणत हो जाती है। इन स्वर लहरियों को सुनना ही नाद योग है। नाद योग साधना कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। नाद श्रवण से मानसिक तन्तुओं का प्रस्फुटन

होता है। सर्प जब संगीत सुनता है, तो उसकी नाड़ी में एक विद्युत लहर प्रकम्पित हो उठती है और वह झूमने लगता है। मधुर संगीत मृग जैसे पशु के मस्तिष्क को भी उद्वेलित कर देता है। गाय दुहते समय मधुर धुन बजाकर गाय के स्नायु समूह को उत्तेजित कर अधिक मात्रा में दूध प्राप्त किया जाता है। नाद का दिव्य संगीत सुनकर मानव मस्तिष्क में भी ऐसा स्फुरण होता है, जिसके कारण गुप्त मानसिक शक्तियाँ जागृत और विकसित हो जाती हैं। इसका विशेष लाभ मानसिक एकाग्रता है। नाद पर ध्यान एकाग्र होने से मन की विकेन्द्रित शक्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं और मन से की गई साधना का सफल होना निश्चित है। नाद की स्वर लहरियों को पकड़कर साधक ऊँची रस्सी को पकड़ता हुआ उसके नाद के उद्गम ब्रह्म तक पहुँच जाता है।

नाद साधना

ब्रह्मलोक की प्राप्ति मुक्ति या निर्वाण है। नाद की साधना रात में की जाती है। एक प्रहर रात बीत जाने के बाद और सूर्योदय से पूर्व तक का समय अभ्यास के लिये उपयुक्त है। साधना के समय शरीर को बिलकुल शिथिल अवस्था में रखना चाहिए। साफ रुई की दो गाठें बनाकर कानों में लगा लें, ताकि बाहर की आवाज न सुनी जा सके। दो चार दिन अभ्यास के बाद सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय निर्मल हो जाएगी और शब्द स्पष्ट रूप से सुने जा सकेंगे।

शरीर में जो रक्त प्रवाह हो रहा है, उसकी आवाज सुनाई पड़ती है। वायु के आने-जाने की आवाज बादल गरजने जैसी होती है। पाचनतंत्र की क्रिया अर्थात् चयापचय की भी आवाज सुनाई पड़ती है। दो प्रकार की मानसिक क्रियाओं की आवाज भी श्रवणीय हो जाती है। मन में चंचलता की लहरें जब मानस तन्तुओं से टकराती हैं तो वह

आवाज कर्णगोचर होती है। जब बाह्य स्थिति का ज्ञान साधक अपने मन में धारण करता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि कोई प्राणी साँस ले रहा है। कुछ ही दिनों के अभ्यास से ये शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ते हैं।

कुछ दिनों तक अभ्यास करने पर बाँसुरी की जैसी ध्वनि सुनायी पड़ती है। ये ध्वनियाँ उसी तत्त्व के निकट से आती हैं, जहाँ से आत्मा परमात्मा से अलग हुई थी। धीरे-धीरे ये शब्द स्पष्ट हो जाते हैं, जिससे अत्यधिक आनन्द की अनुभूति होती है। अंतिम चरण में ॐ की सुस्पष्ट ध्वनि सुनने को मिलती है, जिससे साधक तन्द्रिल अवस्था में पहुँच जाता है। तन-मन की सुधि भूलकर समाधिसुख का आनन्द प्राप्त करता है। आत्मोत्थान का अगला सोपान परमात्मावस्था है।

साधना की पूर्णावस्था में साधक अनहद नाद सुनता है। अनहद नाद का प्रारम्भिक रूप है- अनाहत नाद। आहत नाद वे होते हैं जो किसी प्रेरणा या आघात से उत्पन्न होते हैं। वाणी जब आकाशतत्त्व से टकराती है, तो उससे उत्पन्न शब्द को आहत कहते हैं। अनहद नाद में कोई आघात नहीं होता है, दिव्य प्रकृति के अन्तराल से अनाहत या अनहद ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। अनाहत या अनहद ध्वनियाँ प्रमुखतः दस प्रकार की होती हैं- संहारक, पालक, सृजक, सहस्रदल, आनन्दमण्डल, चिदानन्द, सच्चिदानन्द, अखण्ड, अगम और अलख। इनकी ध्वनियाँ पाजेब की झंकार, सागर की लहर, मृदंग, शंख, तुरही की आवाज, सिंहगर्जन की सी होती हैं। अनेक प्रकार के अनाहत शब्द प्रस्फुटित होते रहते हैं। अभी तक 64 प्रकार के अनाहत शब्द सुने गये हैं। जिसकी आत्मिक शक्ति जितनी प्रबल होगी, उतने ही सूक्ष्म शब्दों को वह सुन सकता है। अनहद शब्द सूक्ष्म लोकों की दिव्य भावना है। यह बेतार की दैवी सन्देश प्रणाली है। इन शब्दों में ॐ ध्वनि आत्मकल्याणकारक हैं, शेष ध्वनियाँ विविध सिद्धियों की जननी हैं।

बिन्दु साधना

बिन्दु साधना का एक अर्थ ब्रह्मचर्य है। आनन्दमय कोश की साधना में बिन्दु का अर्थ है परमाणु। परमाणुओं की लगभग एक सौ जातियाँ अब तक पहचानी जा चुकी हैं, जिन्हें अध्यात्म साधना में अणु तत्त्व कहा जाता है। इसके दो भाग हैं- सजीव और निर्जीव। दोनों ही ग्रहों के रूप में मालूम पड़ते हैं। किन्तु इनके भीतर भी और टुकड़े हैं। प्रत्येक अणु अपनी-अपनी धुरी पर बड़े वेग से परिभ्रमण करता है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा प्रति सेकण्ड 18.5 मील की गति से करती है। परीक्षित 100 परमाणुओं की गति 4000 मील प्रति सेकण्ड है। परमाणु अनेक विद्युतकणों से मिलकर बनते हैं, जिनकी दो जातियाँ हैं-धनकण और ऋणकण। धनकणों के चारों ओर ऋणकण प्रति सेकण्ड 1, 80, 000 मील की गति से चलते हैं। जैसे पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और सूर्य अपने सौरमण्डल को लेकर कृतिका नक्षत्र की परिक्रमा करता है वैसे ही धनकण भी परमाणु की अन्तर्गति का कारण होते हैं।

ऋणकण और धनकण भी अपने से कई गुणे सूक्ष्म परमाणुओं से बने हुए हैं, जो ऋणकणों के भीतर 1, 86, 330 मील प्रति सेकण्ड की गति से परिक्रमा करते हैं। परमाणुओं की अपेक्षा ऋणकणों तथा धनकणों की गति और शक्ति कई गुणा अधिक है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटों में और सूर्य के चारों ओर 01 वर्ष 06 घंटों में परिक्रमा पूरी करती है। सूर्य अपने ग्रहों और उपग्रहों के साथ कृतिका नक्षत्र की परिक्रमा करता है। लट्टू जब अपनी कील पर घूमता है, तो वह इधर-उधर उठता भी रहता है, जिसे मँडराने की चाल कहते हैं। एक चक्र में लगभग 26, 000 वर्ष लगते हैं। कृतिका नक्षत्र भी सौर मण्डल एवं उनके उपग्रहों को लेकर ध्रुव की परिक्रमा

करता है। ऐसी दशा में पृथ्वी की गति पाँचवी हो जाती है। आकाश के असंख्य ग्रह-नक्षत्रों का पारस्परिक सम्बन्ध न जाने कितने बड़े महाअणु के रूप में पूरा होता होगा, जो कल्पनातीत है। पृथ्वी बहुत बड़ा पिंड है। सूर्य पृथ्वी से 13, 00, 000 गुना बड़ा है। सूर्य से भी करोड़ो गुने बड़े ग्रह आकाश में मौजूद हैं। वे एक –दूसरे से बहुत दूर हैं।

प्रकाश की गति प्रति सेकण्ड 1, 75, 000 मील है, उन ग्रहों का प्रकाश पृथ्वी तक आने में 30, 00, 000 वर्ष लगते हैं। यदि कोई ग्रह नष्ट हो जाए तो भी उसकी प्रकाश किरणें अनेक वर्षो तक पृथ्वी पर आती रहेंगी। ऐसे बहुत से ग्रह हैं, जो अत्यधिक दूरी के कारण दूरबीन के सहारे भी पृथ्वी से नहीं देखे जा सकते हैं। ब्रह्माण्ड भी ब्रह्म का अणु है, इसलिए इसे ब्रह्माण्ड कहते हैं।

पुराणों में वर्णन है कि जिसे हम ब्रह्माण्ड कहते हैं, उसके अलावे भी बहुत से ब्रह्माण्ड हैं। लघु से लघु और महान से महान अण्ड में जो शक्ति व्याप्त है, जो इन सबको गतिशील, विकसित, परिवर्तित एवं चैतन्य रखती है, उस सत्ता को बिन्दु कहा गया है। यह विन्दु ही ब्रह्म है। उपनिषदों में "अणोरणीयान् महतोमहीयान्" कहकर उस परंब्रह्म का परिचय दिया गया है। आनन्दमय कोश में बिन्दु साधना के सोपान पर पहुँचकर साधक को यह ज्ञान हो जाता है कि परंब्रह्म की महा अण्ड की तुलना में उसका पिण्ड नगण्य है। इसका ज्ञान होते ही अहंकार और गर्व का अन्त हो जाता है, परन्तु उसको यह भी ज्ञान हो जाता है कि उसमें अनेक शक्तियाँ छिपी है, जिनको परिष्कृत कर वह परम पद प्राप्त कर सकता है। लघुता-महत्ता का एकान्त चिन्तन ही बिन्दु साधना कहा जाता है। आत्मचिन्तन के फलस्वरूप यह बोध हो जाता है कि वह अनन्त शक्ति का उद्गम केन्द्र है और सृष्टि का

महत्त्वपूर्ण अंग है। बजरंगबली को ज्यों ही अपनी अपार सामर्थ्य का ज्ञान हुआ, उन्होंने छलाँग लगाई और समुद्र लाँघ गए।

साधक को भी अपनी सामर्थ्य का भान हो जाने पर वह अपनी लक्ष्यपूर्ति के लिए तत्पर हो जाता है, और सफलता प्राप्त करता है।

कला साधना

कला का शाब्दिक अर्थ है किरण। किरण अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है। सूक्ष्मता का एक ऐसा समूह जो एक निश्चित प्रकार का अनुभव कराता है, उसे कला कहा जाता है। परमाणुओं के अन्तर्गत जो परमाणु होते हैं, उनकी विद्युत तरंगें जब साधक के नेत्रों से टकराती है, तभी किसी रंग रूप का ज्ञान होता है। कला का काम होता है रूप को प्रकाशवान् बनाकर प्रकट करना।

कला के दो भेद हैं- आप्ति और व्याप्ति। प्रकृति के अणुओं से आप्ति किरणें प्रस्फुटित होती हैं। मनुष्य के अन्तराल से प्रादुर्भूत प्रकाश को व्याप्ति कहते हैं। इन्हें तेजस् भी कहते हैं। व्याप्ति कला मनुष्य के तेजस् में परिलक्षित होती है। इसे तेजोवलय कहा जाता है।

कला मनुष्य की आत्मिक शक्ति की बोधक है। जिसकी आत्मिक शक्ति जितनी उन्नत होगी वह उतना ही अधिक बलवान् माना जाता है। परशुराम जी में तीन, रामचन्द्र जी में बारह और श्रीकृष्ण में सोलह कलाएँ बताई गई हैं। कला विज्ञ गुह्यशक्तियों की जानकारी करने में समर्थ होता है। वह अपने शरीर की तात्त्विक सामर्थ्य को भी पहचान लेता है और तदनुसार सुधार करता है। फलाफल का भी आकलन कर सकता है।

साधक सभी ओर से चित्त हटाकर नेत्र बन्द करके दोनों भृकुटियों के मध्य भाग में ध्यान केन्द्रित करता है तो रंग-बिरंगी चिंदियाँ तथा तितलियाँ उड़ रही हैं, ऐसा आभास होता है, जिससे पृथ्वी तत्त्व का

रंग पीला, जल का श्वेत, अग्नि का लाल, वायु का हरा, आकाश का नीला होता है।

रंग से साधक अपनी साधना का मूल्यांकन करता है। रंगो में अपनी -अपनी विशेषता है। पीला रंग क्षमा, शक्ति, स्थिरता, वैभव का द्योतक है। श्वेत रंग शान्ति, तृप्ति, शीतलता, सौन्दर्य और प्रेम का परिचायक है। लाल रंग उष्णता, शौर्य, सामर्थ्य, तेज, स्फूर्ति, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अनिष्ट आदि का बोधक है। हरा रंग चंचलता, कल्पना, गतिशीलता, प्रगतिशीलता, प्राणपोषण और परिवर्तन का प्रतीक है। नीला रंग बुद्धि, प्रेरणा, सात्विकता, व्यापकता, सम्वर्धन, आकर्षण आदि गुणों का परिचायक है।

जड़ या चेतन किसी भी पदार्थ के प्रकट रंग से उसके गुण, कर्म, स्वभाव और प्रभाव की जानकारी हो जाती है। इनके द्वारा व्यक्तियों तथा पदार्थो की आन्तरिक स्थिति को समझना, तत्त्वों की गतिविधि तथा क्रिया पद्धति को जानना, तत्त्वों पर अधिकार करके सांसारिक पदार्थो का निर्माण, पोषण एवं विनाश करने की क्षमता प्राप्त करने के साथ ही अपने शारीरिक तथा मानसिक क्षेत्र में असंतुलित किसी गुण-दोष को सन्तुलित किया जा सकता है।

पंचतत्त्वों की कला-साधना से भौतिक उपलब्धियों के साथ ही आत्मकल्याण भी हो सकता है।

आत्मिक कलाएँ तीन होती है- सत्, रज, तम। तमोगुणी कलाओं के मध्यकेन्द्र में शिव हैं। तामसिक कलाओं की साधना से भस्मासुर, रावण आदि सिद्ध महापुरुष हुए थे। रजोगुणी कलाएँ ब्रह्मा से आती हैं। देवता और महापुरुष जैसे ध्रुव युधिष्ठिर आदि रजोगुणी कलाओं से सुसम्पन्न थे। सतोगुणी सिद्धियाँ विष्णु से आविर्भूत होती हैं। व्यास, वशिष्ठ आदि ऋषि-मुनि तथा बुद्ध-महावीर आदि सतोगुणी कला की साधना से सिद्ध हुए हैं।

आत्मिक कलाओं की साधना गायत्री योग के अन्तर्गत ग्रन्थि वेधन द्वारा होती है। रुद्र ग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा ब्रह्मग्रन्थि के खुलने से साधक को कलाओं का साक्षात्कार होता है। ग्रन्थिवेधन का विवेचन पहले किया जा चुका है।

प्राचीन काल में मनुष्य–शरीर में आकाश तत्त्व का प्राचुर्य था इसलिए साधना से अधिकाधिक फल मिलता था। कलिकाल में पृथ्वी तत्त्व प्रधान है, इसलिए अणिमा, महिमा, लघिमा सिद्धियाँ प्राप्त करना कठिन है, पर सत्, रज, तम की शक्तियों की अधिकता से श्रेष्ठ उपलब्धियाँ सम्भव हैं।

तात्त्विक साधना

पंचतत्त्व जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश से शरीर निर्मित है। आत्मोत्थान हेतु पंचतत्त्वों की साधना आवश्यक है।

पृथ्वीतत्त्व

सर्वप्रथम पृथ्वीतत्त्व का परिष्कार किया जाता है, जिसके लिये मूलाधार चक्र में ध्यान किया जाता है। सुषुम्ना का आरम्भ यहीं से होता है। मूलाधार चक्र गुदा से दो अंगुल ऊपर में स्थित है। यह भूलोक का प्रतिनिधि है। चक्र का आकार कमल–पुष्प सदृश है। प्राणायाम द्वारा मूलाधार चक्र को जागृत किया जाता है। पृथ्वी तत्त्व की आकृति चतुष्कोण, रंग पीला, गुण गन्ध है। पीलिया आदि रोग और मानसिक विकार पृथ्वी तत्त्व की विकृति से होते हैं। "ल" बीज मंत्र से जप किया जाता है। ध्यान करते समय पृथ्वी तत्त्व के समस्त गुणों को भली प्रकार ध्यान में लाएँ।

जलतत्त्व

पेडू के नीचे स्थित स्वाधिष्ठान चक्र में जल तत्त्व का स्थान है। यह चक्र भुवःलोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति अर्धचन्द्राकार

है, रंग उजला और गुण रस है। कड़वा, मधुर, खट्टा आदि सब रसों का स्वाद जल तत्त्व के कारण है। माया-मोह आदि विकार इसी तत्त्व की विकृति से होते हैं। इसकी ज्ञानेन्द्रिय जीभ और कर्मेन्द्रिय लिंग है। बीजमंत्र "लं" है। अर्धचन्द्राकार, चन्द्रमा की तरह कान्ति वाले जलतत्त्व का स्वाधिष्ठान चक्र में ध्यान करना चाहिए। इससे सहन शक्ति उत्पन्न होती है।

अग्नितत्त्व

मणिपूर चक्र में अग्नितत्त्व का निवास है। यह चक्र नाभिस्थान में स्थित है। यह स्वः लोक का प्रतिनिधि है। अग्नितत्त्व की आकृति त्रिकोण, रंग लाल, गुण रूप है। ज्ञानेन्द्रिय नेत्र हैं, कर्मेन्द्रिय पैर हैं। क्रोधादि मानसिक विकार और सूजन आदि शारीरिक विकार अग्नितत्त्व की गड़बड़ी से होते हैं। अग्नितत्त्व के परिष्कार से मंदाग्नि, अजीर्ण आदि पेट के विकार दूर हो जाते हैं। कुंडलिनी शक्ति के जागरण में सहायता मिलती है। बीजमंत्र "रं" है। त्रिकोण आकृति और अग्नि के समान लाल आभावाले अग्नितत्त्व का मणिपूर चक्र में ध्यान करें। इस तत्त्व के शुद्ध हो जाने से सहन शक्ति का विकास होता है।

वायुतत्त्व

यह तत्त्व अनाहत चक्र में है। यह हृदय क्षेत्र में स्थित है। यह महर्लोक का प्रतिनिधि है, इस चक्र की आकृति षट्कोण तथा गोल दोनों तरह की है। रंग हरा है, स्पर्श इसका गुण है, ज्ञानेन्द्रिय त्वचा और कर्मेन्द्रिय हाथ है। वात्-व्याधि, दमा आदि रोग वायु तत्त्व की विकृति से होते हैं। इस चक्र को जागृत करने पर इन व्याधियों का शमन होता है तथा शरीर और मन हल्का होता है। इसका बीज मंत्र "यं" है। गोलाकार हरी आभा वाले वायु तत्त्व का अनाहत चक्र में ध्यान किया जाता है।

आकाशतत्त्व

विशुद्धि चक्र में आकाश तत्त्व का निवास है। इस चक्र का स्थान कण्ठ में है। यह जनलोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति अण्डाकार है। इसका रंग नीला और गुण शब्द है। ज्ञानेन्द्रिय कान कर्मेन्द्रिय वाणी है।

''हं'' बीजमंत्र का जाप करते हुए चित्रविचित्र रंग वाले आकाश तत्त्व का विशुद्धि चक्र में ध्यान किया जाता है। इससे त्रिकाल का ज्ञान, ऐश्वर्य आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

नित्य पंच तत्त्वों का छः महीने तक नियमित रूप से अभ्यास करते रहने पर पाँचों तत्त्वों का शोधन हो जाता है, जिसके उपरान्त तत्त्व को पहचाना जा सकता है तथा उनको घटाया बढ़ाया जा सकता है।

साधना के फलस्वरूप तत्त्व की सामर्थ्य और कलाओं में बृद्धि हो जाती है और साधक कलाधारी बना जाता है। कलाएँ अपना चमत्कार प्रकट करती रहती हैं।

तुरीयावस्था

साधना के शिखर पर पहुँच जाने पर साधक का मन संकल्प रहित हो जाता है। रिक्त मानस की निर्विषय की स्थिति को साधक प्राप्त करता है और इसी को तुरीयावस्था कहते हैं।

ध्यान, भाव, विचार, संकल्प, इच्छा, कामना से रहित होकर केवल आत्मा के एक केन्द्र में अपने अन्तःकरण को साधक पूर्णतया समाविष्ट कर देता है और तुरीयावस्था में पहुँच जाता है।

साधक अपनेपन की सारी सुध-बुध से मुक्त हो जाता है और पूर्ण मनोयोग से बिखरे हुए आनन्द को केन्द्रीभूत कर लेता है। इससे

वह पूर्णानन्द से परितृप्त हो जाता है। इस स्थिति को समाधि कहते हैं।

समाधि काल में अपना संकल्प ही शक्तिशाली दिव्य शक्ति बन जाती है, साधक की इन्द्रियों और चित्तवृत्तियों का एकीकरण जिस संकल्प पर होता है, वह संकल्प मूर्तिमान हो उठता है एवं साधक को ईश्वर का मूर्तिमान साक्षात्कार होता है।

अध्याय
८

गायत्री साधना

गायत्री साधना

गायत्री मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन का अभिन्न अंग है। सामान्यतः गायत्री की नित्योपसना का प्रचलन है।

"मनुष्य की मनोभूमि के दो क्षेत्र हैं। निकटवर्ती परत मन और बुद्धि हैं। दूसरा सूक्ष्म क्षेत्र है, जिसमें चित्त और अहंकार आते हैं। मन चंचल है। इसमें अनेक प्रकार की इच्छाएँ, कामनाएँ उठती रहती हैं। बुद्धि यह निर्णय करती है कि कौन सा कार्य करणीय है और कौन सा अकरणीय है। सदेच्छा को बुद्धि कार्यान्वित करती है। अन्तःकरण क्षेत्र में अथवा सूक्ष्म मनःक्षेत्र में मनुष्य के विचार और अनुभव के अनुसार चित्त सक्रिय रहता है। आत्मा का कुविचार मनुष्य को कुपथ की ओर ले जाता है। आत्मा का सद्विचार मुनष्य को सन्मार्ग की ओर चलने के लिये प्रेरित करता है। जिनके विचार दिव्य होगें उनकी इच्छाएं, आदतें और विचार भी वैसे ही होंगे। गीता का वचन है:- "यो यच्छ्रद्धः स एवं सः"।

सकाम-निष्काम साधना

जो व्यक्ति अपने सम्बन्ध में जैसी श्रद्धा मान्यता रखता है, वह स्वतः वैसा ही होता है। गायत्री साधना साधकों को ईश्वरीय आनन्द प्रदान करती है, जिससे मनुष्य के अन्तःकरण का कायाकल्प हो जाता है। आत्मोत्थान के लिये गायत्री उपासना सर्वश्रेष्ठ साधना है, जिससे साधक को दैवी शक्ति प्राप्त होती है। यह गायत्री साधना अपराप्रकृति को पराप्रकृति में रूपान्तरित कर देती है। निष्काम और सकाम दोनों भावों से गायत्री की साधना की जा सकती है। निष्काम

भाव से जो साधना की जाती है वह श्रेष्ठ है किन्तु सांसारिक जीवन में सकाम साधना भी आवश्यक है। अभीष्ट फल शतप्रतिशत नहीं मिले तो भी गायत्री साधना निष्फल नहीं होगी।

गायत्री महाविज्ञान में पं. श्रीराम शर्मा आचार्य लिखते है कि गायत्री साधक अपने काम्य प्रयोजन में सफल न हो सके, तो भी उसे अन्य अनेक मार्गों से विशेष लाभ मिलेंगे। निष्काम उपासना के साथ काम्य उपासना कामना पूर्ति के लिये गृहस्थ जीवन में की जाती है।

इसमें कोई शक नहीं कि विधिपूर्वक की गयी उपासना विशेष लाभकारी होती है, किन्तु सविध या अविध पर बिना विचार किये गृह कार्य करते हुए निर्धारित समय पर जप किया जाय तो अच्छा है। मन ही मन निरन्तर गायत्री का जप किया जा सकता है। वचन है कि–

"मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्यते बन्धनात्।"

गायत्री जप में भाव प्रधान है प्रक्रिया प्रधान नहीं है।

गायत्री जप

गायत्री साधना में गायत्री जप का विशेष महत्त्व है। याज्ञवल्क्य मुनि का मत है कि व्याहृति युक्त गायत्री का जप करें–

सवितुर्देवस्य भर्गाख्यं परब्रह्मस्वरूपंतेजश्चिन्तनीयं मम हृत्पद्मस्थितेनैव भर्गाख्येन तेजसा प्रेर्य्यमाणः तदेव भूलोकान्तरिक्षलोकस्वर्गलोकादिब्रह्माण्डो–दरवृत्तिसचराचरत्रैलोक्यस्वरूपं मम हृदयमध्ये वाह्ये च सूर्य्यमण्डलमध्ये वर्तमानं तेजसा एकीभूतं परब्रह्मस्वरूपं ज्योतिरहमिति चिन्तयन् तपं कुर्यादिति।।

(गा. अर्थ सं.)

भू उनकी संज्ञा है, जिनमें प्राणी मात्र उत्पन्न होते हैं। चर और अचर सभी की उत्पत्ति इसी ब्रह्म शक्ति चैतन्य देव से होती है।

कल्पान्त होने पर पुनः यावत् भूत समुदाय इसी ब्रह्म चैतन्य से उत्पन्न होते हैं, इसलिए इसे भुवः नाम से जाना जाता है। स्वः लोक-शीत, उष्ण, वृष्टि तथा जो कुछ भी तेज पदार्थ ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिर्मय पदार्थ हैं, वे सदा इसी चैतन्य शक्ति से ही उत्पन्न होते हैं और सुकृति पुरुषों का यही जीवन आधार है, इसलिए इसे स्वः लोक कहते हैं।

जप का फल

शुक्ल यजुर्वेद के द्रष्टा याज्ञवल्क्य ने गायत्री जप के महात्म्य पर प्रकाश डालते हुए ब्रह्म शक्ति की साधना हेतु गायत्री जप का विधान किया है।

भारद्वाज मुनि कहते हैं कि वेदानुसार विश्वास और भक्ति के साथ जप करनेवाले को महान फल प्राप्त होता है-

द्वाभ्यां विश्वासभक्तिभ्यां जपादीनां महत्तरम्।
फलं भवेज्जपकृतामिति वेदेषु भाषितम्।। (गा. अर्थ सं.)

विश्वास और भक्ति दोनों साधनों को सम्मिलित कर जप करने पर जप करनेवाले को विशेष फल मिलता है, ऐसा वेद कहता है।

भारद्वाज ऋषि का कथन है कि -

इदं समस्तं श्रुतिभिर्गायत्रीचेत्युदाहृता।
विधिनैवाभ्यसेत् यावत्तुरीयं परमं पदम्।। (गा. अर्थ सं.)

भारद्वाज ऋषि ने कहा है कि जो कुछ भी इन्द्रियों का विषय दृश्यमान जगत है, वे सभी गायत्री ही हैं। यह वेद का वचन है। जब तक तुरीय रूप परं पद प्राप्त न हो जाय, तब तक गायत्री जप साधना करनी चाहिए। भारद्वाज ऋषि गायत्री जप की महत्ता का बखान करते हुए कहते हैं कि -

"गायत्री सर्ववेदानां माता, तामेव प्रजपेद् भक्तया ध्यायेच्च सततं।"

गायत्री सभी वेदों की माता हैं, भक्तिपूर्वक गायत्री को जपें और

ध्यान करें। शास्त्रीय वचन है-

यो जपेत् हवनं कृत्वा नश्यन्त्यंहांसि तत्क्षणात्।

ऋषिच्छन्दोदैवताश्च जपेत्ताश्चान्विताः क्रमात्।। (गा. अर्थ सं.)

अग्निपुराण का वचन है -

जकारो जन्मविच्छेदः पकारः पापनाशकः।

तस्माज्प इति प्रोक्तो जन्मपापविनाशकः।। (गा. अर्थ सं.)

जकार वर्ण जन्म का विच्छेद करता है और पकार वर्ण पाप का नाश करता है, अतएव इसको जप कहा जाता है। प्रस्तुत श्लोक में यज्ञ, दान और तप से भी विशेष महत्त्व जप को दिया गया है।

यावन्तः कर्मयज्ञाश्च दानादि च तपांसिच।

ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।। (गा. अर्थ सं.)

गायत्री जप से 27 देवताओं की आराधना एक साथ हो जाती है, किन्तु जिस देवता को इष्ट मानकर आराधना की जाती है, वे यदि प्रसन्न हो गये तो मनोनुकूल भोग और मुक्ति दोनों प्रदान करते हैं।

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।

विपुलान् भोगान् दद्यान्मुक्तिंच शाश्वतीम्।। (गा. अर्थ सं.)

यक्ष, राक्षस, वेताल, भूत-प्रेत तथा पिशाच ये सब भी जप परायण साधक को देखकर भयभीत हो जाते हैं, और भाग जाते हैं। अतः जप से अनिष्टकारी तत्त्वों का निवारण हो जाता है। ऐसी मान्यता है कि जो गायत्री को नियमित रुप से जपते हैं उनके समीप किसी प्रकार की नकारात्मक शक्तियाँ नहीं भटकती हैः-

यक्षराक्षसवेतालप्रेतभूतपिशाचकाः।

जपाश्रयं द्विजं दृष्ट्वा दूरं ते यान्ति भीतितः।। (गा. अर्थ सं.)

पुण्य अर्जित करने के बहुत से साधन हैं, जिनमें सर्वश्रेष्ठ साधन गायत्री जप को माना गया है।

तस्माज्जपः सदाश्रेष्ठः सर्वस्मात् पुण्यसाधनात्।

इत्येवं सर्वथा ज्ञात्वा विप्रो जपपरो भवेत्।। (गा. अ. सं.)

जप विधि

गायत्री अर्थसंग्रह के अनुसार गायत्री जप साधना के अन्तर्गत जप विधि का निरूपण किया गया–

शास्त्रोक्त वचन है कि –

प्रणव व्याहृतियुतां गायत्रीं च जपंत्ततः।
समाहितमनास्तूष्णीं मनसा चापि चिन्तयेत्।। (गा. अर्थ सं.)

प्रणव तथा व्याहृतियों के सहित गायत्री का जप करें, परन्तु समाहित मन होकर मौन भाव से मन ही मन में चिन्तन करना चाहिए।

याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, प्रभृति ऋषि-मुनियों ने गायत्री मंत्र के जप की महिमा का गान करने के साथ ही जप विधि का विधान भी निरूपित किया है।

ध्यायेच्च मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न च चालयेत्।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत्।। (गा. अर्थ सं.)

मंत्र का जप मन ही मन करना उत्तम है। जिह्वा और ओष्ठों का संचालन न करना श्रेयस्कर है। गर्दन को बिल्कुल ही नहीं हिलाना है। हाथों को किस स्थिति में रखना है, इसका भी विधान है।

कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं मुकुलितौ करौ।
मध्ये तिर्य्यक्करौ प्रोक्तौ जप एतमुदाहृतः।। (गा. अर्थ सं.)

प्रातः काल में उत्तानकर करके, सायंकाल में मुकुलित करके एवं मध्याह्न में तिर्यक करके सूर्योपासना करें। तत्पश्चात् गायत्री जप करें। गायत्री जप के पूर्व सूर्योपासना भी आवश्यक है। यथासंभव समय सूर्योपासना में बिताना चाहिए।

यज्ञ के फल के सम्बन्ध में कहा गया है कि –

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।। (गा. अर्थ सं.)

अश्वमेधादि विधियज्ञों से जप यज्ञ दसगुणा अधिक श्रेष्ठ एवं फलप्रद है। उपांशु विधि से जप करने पर सौ गुणा अधिक फल मिलता है। मानस जप से सहस्त्र गुणा अधिक फलदायक होता है।

उपांशु जप– "उपांशु जप" शास्त्र में परिभाषित किया गया है।

विना शब्दं जपो यस्तु चलज्जिह्वाद्विजच्छद:।
उपांशु तं जपं प्राहुर्मनसा मानसं बुधा:।। (गा. अर्थ सं.)

जिस जप के करते समय जिह्वा तथा ओष्ठ तो क्रियाशील रहे परन्तु शब्द सुनाई न दें, उस जप को शास्त्रकारों ने उपांशु जप कहा है। अक्षरों का अर्थ समझते हुए मन ही मन ध्यान पूर्वक जो जप किया जाता हैं उसे मानस जप कहा जाता है। साधक का आसन कैसा हो इस पर भी विचारोपरान्त परामर्श दिया गया है। आसन का प्रभाव जप के फल पर पड़ता है।

कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव वा।
दारुजं बलपत्रं च आसनं परिकल्पयेत्।। (गा. अर्थ सं.)

कुशा, कम्बल, चर्म, वस्त्र, काष्ठ तथा बलपत्र छः प्रकार के आसनों का विधान शास्त्र में है।

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि।
वस्ताजिने व्याधिनाश: सर्वं वै चित्रकम्बले।।(गा. अर्थ सं.)

कृष्ण मृग के चर्म पर बैठकर जप करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। व्याघ्र चर्म पर करने से मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है, वस्त्र और मृगचर्म पर बैठकर जप करने पर व्याधि का नाश होता है। रंगीन एवं चित्रित कम्बल पर बैठकर जप करने से उक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। किन्तु कृष्ण मृग के चर्म पर बैठकर जप केवल दीक्षित साधक ही कर सकते है।

'नादीक्षितश्चोपविशेत् कृष्णसाराजिने गृही'। (गा. अर्थ सं.)

जप के समय आसन पर किस मुद्रा में बैठें इस पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है–

पादेन पादमाक्रम्य जपं नैव तु कारयेत्।
शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ध्यान नैव प्रशस्यते।। (गा. अर्थ सं.)

पाँव पर पाँव रखकर जप नहीं करना चाहिए। सिर को ढककर भी जप नहीं करना चाहिए।

मनःसन्तोषणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः।। (गा. अर्थ सं.)

जप के समय मन पवित्र रहे और मन में सन्तोष का भाव रहे। मौन स्थिति में मंत्र के अर्थ का चिन्तन करते हुए जप करना चाहिए। मन व्यग्रता और ग्लानि के भाव से रहित होना चाहिए।

जप करते समय किस प्रकार से बैठना चाहिए, इसका भी विधान किया गया है–

स्वस्तिक आदि आसन पर बैठकर जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। स्वस्तिक आसन का लक्षण इस श्लोक में दिया गया है–

जानुर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पाद्तले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकासनमुच्यते।। (गा. अर्थ सं.)

स्वस्तिक आसन का तात्पर्य यह है कि साधक इस प्रकार आसन पर बैठे कि घुटने और पेट के बीच दोनों पादतल सम्यक् रूप से स्थापित रहें। कमर, गर्दन, रीढ़ बिल्कुल सीधी अवस्था में रहे। यह आसन पद्मासन का ही स्वरूप है।

पद्मासनं समासीनः सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।
उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः।।
ऊर्वोर्मध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा ततो दृशौ।
नासाग्र विन्यसेद् दृष्टिं पद्मासनमिदं स्मृतम्।। (गा. अर्थ सं.)

दोनों जाँघों पर दोनों पैरों को इस प्रकार रखें कि तलवे ऊपर रहे। एड़ियाँ जाँघों पर। दोनों हाथों को मुड़े हुए दोनों घुटनों पर इस प्रकार रखें कि हथेलियाँ ऊपर रहें। दाहिनें एवं बायें दोनों हाथों के अंगुष्ठ एवं तर्जनी का अग्रभाग मिलाकर रखें दोनों हाथों की मध्यमा,

अनामिका और कनिष्ठा अंगुलियाँ बिल्कुल सीधी रहे, ताकि नाड़ियों में रक्तप्रवाह गतिमान रहे। ध्यान रहे कि रीढ़ सीधी रहे ताकि सुषुम्ना प्रभावित न हो। दृष्टि नासिका के अग्रभाग में और नेत्र बन्द रहें।

जपमाला

जप के समय हाथ और माला किस स्थिति में रहे इस पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है-

वस्त्रेणाच्छाद्य स्वकरं दक्षिणं सदा जपेत्।
तस्य तत् सफलं जप्यं तद्धीनमफलं भवेत्।।
जपकाले त्वक्षमालां गुरोरपि न दर्शयेत्।
उल्लंघिते तथा मेरौ पतिते चाक्षसूत्रके।
प्राणायामत्रयं कृत्वा घृतप्राशनमाचरेत्।। (गा. अर्थ सं.)

दाहिने हाथ को वस्त्र से ढककर जो जप करता है वह सफल जप है। जप करते समय अक्षमाला को गुरु को भी नहीं दिखाना चाहिए। भूल से यदि मेरूदाना अर्थात् माला का वह दाना जिससे जप प्रारम्भ किया गया है या माला ही टूट जाए तो तीन बार प्राणायाम करें तथा घृतप्राशन करें।

जप करते समय स्थान एवं उसके अनुरूप वस्त्र का भी निर्देश दिया गया है-

यज्जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा।
जपो होमस्तथा दानं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्।। (गा. अर्थ सं.)

जल में सूखा वस्त्र पहनकर और सूखे स्थान में गीला वस्त्र पहनकर कभी जप नहीं करना चाहिए।

माला के अनुसार फल

शास्त्र में यह भी बताया गया हैं कि किस प्रकार की माला से किस प्रकार का फल मिलता है।

अरिष्टं पुत्रजीवंच शङ्खं पद्मं तथा मणिम्।
कुशग्रन्थिंच रुद्राक्षमुत्तमं चोत्तरोत्तरम्।। (गा. अर्थ सं.)

अरिष्ट रीठा का बीज, जियापोता का बीज, कमल का बीज, शंख, मणि, रूद्राक्ष कुश की मालाओं से जप करने पर अधिक फल मिलता है।

कैसे जप करने पर क्या फल मिलता है इसका भी उल्लेख हुआ है।

अङ्गुलीजपसंख्यानमेकमेकं वरानने।।
पर्वभिर्दशसंख्यातं पुत्रजीवफलैर्दश।। (गा. अर्थ सं.)

जप करते समय जप की संख्या जो अँगुली से की जाती है, उसका एक माला का एक गुणा ही फल देता है। जो अँगुली के पर्वो से की जाती है, उससे दस गुणा फल मिलता है। जियापोता की माला से जो जप किया जाता है, उससे भी दस गुणा फल मिलता है।

शतं वै शंखमणिभिः प्रवालैश्च सहस्त्रकम्।
मौक्तिकैर्दर्शसाहस्त्रं सौवर्णैर्लक्षमुच्यते।। (गा. अर्थ सं.)

शंख और मणियों की माला से दस हजार गुणा और स्वर्ण की माला से लाख गुणा अधिक फल मिलता है।

कुशग्रन्थ्या कोटिगुणं तुलस्यानन्तकं फलम्।
अक्षुण्णा समरन्ध्रा च परिपूर्णा दृढा नवा।। (गा. अर्थ सं.)

कुशा की माला से कोटि गुणा फल मिलता है और तुलसी की माला से अनन्त फल मिलता है। तुलसी माला से उसी को जप करना चाहिए, जो वैष्णवी सात्विक जीवन व्यतीत करता है।

माला ऐसी होनी चाहिए जिसके दाने टूटे हुए न हों, छिद्र समान हो, कम बेसी न हों। माला मजबूत और नवीन हो।

जिस माला के दाने टेढ़े-मेढ़े न हो, घिसे हुए न हों वहीं माला उत्तम है।

गाँठ लगाकर जोड़े हुए धागे से गूँथी माला, नीलादि रंगों से रंगे डोरे से गूँथी माला, दुखदायी होती है।

माला की मणियों (दानों) का आकार बहेड़ा के बीज के समान होना चाहिए। मणियों की संख्या 108 उत्तम मानी जाती है। 108 का अर्ध 54 दानों की माला मध्यम माना गया है। 27 मणियों की माला को अधम माना गया है।

जप के समय अँगुली के व्यवहार का भी सम्यक् रीति से विधान है–

तर्जन्या न स्पृशेत् सूत्रं न कम्पेन्न विधूनयेत्।
अङ्गुष्ठस्य तु मध्यस्थं परिवर्त्तं समाचरेत्।।
मध्यमाकर्षणं तस्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
नान्याङ्गुलिभिराकर्षेन्न नखैश्च तथा स्पृशेत्।। (गा. अर्थ सं.)

तर्जनी अँगुली से माला का स्पर्श नहीं होना चाहिए इसलिये तर्जनी अँगुली को हमेशा अलग रखें। माला कम्पित न हो। माला अँगूठे के मध्य में रहनी चाहिए। मध्यमा अँगुली से माला को चलाना चाहिए। अन्य किसी अँगुली से माला को नहीं चलाना चाहिए और नखों से भी माला का स्पर्श नहीं होना चाहिए। मध्यमा अँगुली जप में सर्वसिद्धि प्रदायिका है।

ऐसी स्थिति आ सकती है कि माला उपलब्ध न हो तो भी जप करने का परामर्श शास्त्रकार देते हैं:-

अभावे त्वक्षमालायाः कुशग्रन्थ्याऽथ पाणिना।
जप एवं हि कर्त्तव्य एकाग्रमनसा सदा।। (गा. अर्थ सं.)

रुद्राक्ष आदि की माला समय पर न मिल सके तो कुशाग्रन्थि से अथवा हाथ से गणना करते हुए जप करना चाहिए।

हाथ से जप करने का विधान

हाथ से जप करने का विधान यह है कि अनामिका अँगुली के मध्य पोर से प्रारम्भकर नीचे की ओर बढ़ें, और कनिष्ठा के निचले पोर से ऊपर की ओर पहुँचे, अब अनामिका के उच्चतम पोर का

स्पर्श करें फिर मध्यमा अँगुली के शीर्ष पोर से सबसे निचले पोर पर आएँ फिर तर्जनी के सबसे निचले पोर पर पहुँचें।

इस प्रकार अनामिका के दो, कनिष्ठा के तीन एवं पुनः अनामिका का शीर्ष एक, मध्यमा के तीन पोर और तर्जनी का एक कुल दस पर्व हुए जिनका जप में व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार एक बार में दस जप हुआ। एक सौ की संख्या में जप करने के लिए दस बार यही क्रम (दाहिने हाथ से) दुहरायें। शेष आठ की संख्या के लिए अनामिका के निचले पोर से शुरू करे और कनिष्ठा के निचले पोर से ऊपरी पोर पर पहुँचे फिर अनामिका और मध्यमा के ऊपरी पोर से निचले पोर पर समाप्त करें। अब एक सौ आठ की संख्या पूर्ण हुई। दस बार जप की गणना के लिए बायें हाथ की अँगुलियों का प्रयोग करना चाहिए। शास्त्र का भी वचन है:-

अनामिकामध्यरेखावध्यधः प्रक्रमेण च।
तर्जन्यादिगतान्ते च अक्षमाला करे स्थिता।। (गा. अर्थ सं.)

पाणिमाला के जप का फल इस प्रकार दर्शाया गया है।

सहस्त्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं तु जपेन्नित्यं सर्वकल्मषनाशिनीम्।। (गा. अर्थ सं.)

एक हजार गायत्री का जप करना सर्वोत्तम है, एक सौ का जप करना मध्यम है, दस बार जप करना कनिष्ठ है। नियमित रूप से प्रतिदिन जप करें। कार्य व्यस्त व्यक्ति के लिये एक हजार जप नित्य करना सम्भव नहीं हो तो एक सौ आठ बार जप करना कोई मुश्किल काम नहीं है। यदि पूजा स्थान पर जाना संभव न हो तो जहाँ स्नान करते हों वहीं पर 108 बार जप कर लेने से आध्यात्मिक या भौतिक फल पा सकते हैं।

बूंद- बूंद से घड़ा भरता है। 108 बार नित्य जप करने पर 3240 बार, एक माह में आयेगा, 01 वर्ष में 39,420 बार तथा 10 वर्ष में 3,94,200 बार तथा 03 वर्ष 02 माह 02 दिन में 1,25,000 जप का अनुष्ठान हो जायेगा।

यदि किसी विशेष परिस्थिति में जप करना सम्भव न हो तो उसे अन्य दिन में भी जप करके क्षतिपूर्ति करना चाहिए। किसी देवी, देवता के अनुष्ठान में विधि का पालन अवश्य करना चाहिए, किन्तु यदि सविधि करना सम्भव न हो तो भी शुद्ध मन से ध्यानपूर्वक जप करते रहना चाहिए।

तत्त्वलक्षं विधानेन भिक्षाशी विजितेन्द्रियः।
व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं दीक्षितो जपेत्।। (गा. अर्थ सं.)

जप संख्या के अनुसार लाभ

शास्त्र में कहा गया है कि विधिपूर्वक 25 लाख जप करने से गायत्री मंत्र सिद्ध हो जाता है। जपकर्त्ता को अपनी इन्द्रियों को संयमित रखना चाहिए और "ॐ भूर्भुवः स्वः" इन तीन व्याहृतियों के सहित जप करना चाहिए।

जप की महान महिमा शास्त्रों में वर्णित है। कहा गया है कि जप मात्र से पाप का नाश हो जाता है। सौ बार जपने पर वह देवी दिन भर के पाप को नष्ट कर देती हैं। एक हजार बार जपने पर देवी सभी तरह के पापों से मुक्त कर देती हैं।

शतं जप्त्वा तु सा देवी दिनपाप प्रणाशिनी।
सहस्रं सा देवी सर्वकल्मष नाशिनी।।

गायत्री मंत्र का श्रद्धा से सौ बार जप करने पर दिन भर का पाप नष्ट हो जाता है। एक हजार बार श्रद्धा पूर्वक जप करने से गायत्री माता सभी पापों को नष्ट कर देती हैं। शास्त्र कथन है–

आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः।
भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः।।

आयु और आरोग्य के अभिलाषी दो मास तक जप करें। दो मास तक जप करने पर आयु और आरोग्य दोनों ही उपलब्ध होते हैं। लक्ष्मी की कामना के लिए तीन मास तक जप करना आवश्यक है।

पुनः-

आयुः श्रीपुत्र दाराद्याश्चतुर्भिश्च यशो जपात्।
पुत्र दारायुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः।।

चार मास तक जप करने से दीर्घ आयु, लक्ष्मी, स्त्री और यश की प्राप्ति होती है। पुत्र कलत्र(स्त्री) आयु, लक्ष्मी, आरोग्य और विद्या की प्राप्ति हेतु पाँच मास तक जप करना चाहिए। सर्वकार्यों की सिद्धि के लिए एक मास तक तीन हजार मंत्र का जप प्रतिदिन करें। इसी प्रकार 1100 नित्य जपने से सर्वकार्य सम्पन्न होते हैं।

मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्त्रं सर्वमाप्नुयात्।।

प्राण-अपान वायु को रोककर एक मास तक प्रतिदिन तीन सौ मन्त्र जपने से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।

रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम्।
यदिच्छेत्तदवाप्नोति सर्वं स्वाभीष्टमाप्नुयात्।।

सात वर्ष तक जप करने से साधक अमर हो जाता है। 9 वर्ष तक जप करने से मनु की पदवी, 10 वर्ष में इन्द्र का आसन मिल जाता है।

सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात्।
मनुत्व-सिद्धिर्नवभिरिन्द्रत्वं दशभिर्भवेत्।।

गृहस्थ गायत्री जप से धर्म, अर्थ, काम अर्थात् त्रिवर्ग को प्राप्त करते हैं। ऋषि मुनियों को ज्ञान सिद्धि तथा संन्यासी को मोक्ष की सिद्धि होती है।

जपे त्रिवर्ग संयुक्तं गृहस्थेन विशेषतः।
मुनीनां ज्ञानसिद्ध्यर्थं यतीनां मोक्षसिद्धये।।
महारोग विनश्यन्ति लक्ष जप्यानुभावतः।
स्नात्वा तथैव गायत्र्याः शतमन्तर्जले जपेत्।।

गायत्री जप रोगोपचार के लिए महौषधि है। ध्यान पूर्वक एक

लाख गायत्री मंत्र का जप करने से महारोग का नाश निश्चित है। जल के भीतर यदि सौ बार भी गायत्री जप करें तो रोगमुक्त हो जाएगें। स्मृति विभ्रम की दवा भी गायत्री जप है। शास्त्रकार कहते हैं कि पंचगव्य पीकर एक लाख जप करने पर स्मृति में वृद्धि होती है।

"पंचगव्याशनो लक्षं जपेच्चाति स्मृतिर्भवेत्।"

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी गायत्री जप का विधान किया गया है। पहले ॐ का उच्चारण करें। इसके बाद गायत्री का एवं अन्त में प्रणव ओंकार का उच्चारण करें। ॐ प्रणव नाम ब्रह्म का है, इसलिए ॐ के उच्चारण से ब्रह्म का जप शुरू में और अन्त में दो बार हो जाता है।

गायत्री जप से पूर्व ऊँ, तत्, सत् तीन शब्दों का उच्चारण करना चाहिये, क्योंकि ब्रह्म का नाम ॐ तत् सत् है। इनके उच्चारण से पाप का नाश होता है, इसलिये पाप रहित होकर गायत्री का जप प्रारम्भ करना उचित होगा। प्रणव के महत्व पर पूर्व में प्रकाश डाला जा चुका है, किन्तु यहाँ शंका उत्पन्न होती है, कि जब परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं तो अलग से गायत्री साधना का क्या प्रयोजन है ? इस शंका का निवारण याज्ञवल्क्य मुनि ने इस प्रकार किया है कि घृत गौवों के शरीर में स्थित है, किन्तु घृत प्राप्त करने के लिये गाय से दूध निकालकर विधिपूर्वक घृत बनाया जाता है। निःसंदेह परमेश्वर शरीर में विद्यमान है, किन्तु उपासना से ही ईश्वरीय कृपा प्राप्त की जा सकती है।

गायत्री एवं ब्रह्म में भेद नहीं है। दोनों अभिन्न हैं। ब्रह्मस्वरूप गायत्री की उपासना से ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त की जा सकती है। महापुरुष रघुनन्दन कहते हैं कि –

विशेषतः गायत्र्यर्थः परब्रह्म,
एतदर्थमपि अनेन मन्त्रेणैव,
उपासना श्रेयस्करी इति ज्ञायते।

मन में यह भाव रखकर गायत्री की उपासना करना श्रेयस्कर है। गायत्री का अर्थ है परंब्रह्म। गायत्री उपासना परंब्रह्म की उपासना है। कारण भी परंब्रह्म की प्राप्ति है।

अग्नि पुराण में वचन है कि गायत्री मंत्र जपने से मनुष्य परमगति को प्राप्त होता है। गायत्री के साधक को मोक्ष मिलता है। कोई भी पुरुष निष्काम भाव से 10 हजार जप करे एवं गायत्री देवी का ध्यान करे तो वह परमपद को प्राप्त कर लेगा।

कूर्म पुराण का यह वचन है कि जो वेदमाता गायत्री के अर्थ को जानकर इनका प्रतिदिन जप करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

अल्प जप से भी लाभ

योगिराज याज्ञवल्क्य विश्वासपूर्वक यह कहते हैं कि गायत्री का एक पद अथवा आधा पद तथा एक ऋचा अथवा आधी ऋचा का भी जप करने से साधक ब्रह्महत्या जैसे पाप से मुक्त हो जाता है।

अध्याय
१
अनुष्ठान एवं पुरश्चरण

अनुष्ठान एवं पुरश्चरण

गायत्री महामंत्र के अनुष्ठान एवं पुरश्चरण के साधकों को विधि विधान का पालन करना श्रेयस्कर होता है। नित्य कर्म से निवृत्त होकर, स्नानादि के पश्चात् साफ वस्त्र धारणकर शान्त वातावरण में मंत्र जाप करना चाहिए। मेरूदण्ड को सदा सीधा रखना चाहिए ताकि सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का संचार बाधित न हो। अनुष्ठान में तुलसी या चंदन की माला और तांत्रिक साधना में रुद्राक्ष अथवा शंख की माला से जप करें।

प्रातः काल से दो घंटा पूर्व ब्रह्म वेला से सूर्यास्त के एक घंटे बाद तक जप किया जा सकता है। तांत्रिक विधि से अर्धरात्रि के आस-पास साधना की जाती है।

साधना के लिए चित्त एकाग्र हो, दृढ़ता के साथ साधना को अन्तिम चरण तक पहुँचाना चाहिए तथा साधना में निरन्तरता बरतना आवश्यक है। साधक के मन में श्रद्धा एवं विश्वास रहे। किसी प्रकार की शंका, उत्साह की कमी या बाधाओं से घबराने की प्रवृत्ति नहीं रहनी चाहिए। कम से कम 108 बार मंत्रों का नित्य जाप करना श्रेयस्कर है। प्रातः काल पूर्व की ओर मुख करके जप करना चाहिए।

किसी अनिवार्य कारणवश विशेष स्थिति में यदि आसन छोड़ना हो तो एक माला अतिरिक्त जप करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

अनुष्ठान
परिभाषा एवं विधि

सोद्देश्य सकाम उपासना को अनुष्ठान कहा जाता है। सवा लाख या उससे कम या अधिक मंत्रों का अनुष्ठान सर्वसुलभ साधना है। अनुष्ठान को उपासक बिना किसी सहायता के कर सकता है। अनुष्ठान के पश्चात् सामर्थ्य के अनुसार हवन और ब्राह्मण भोजन करा सकते हैं।

विधिपूर्वक अनुष्ठान सम्पन्न कर इच्छित फल प्राप्त कर सकते हैं। निष्काम उपासना विधिपूर्वक जब की जाती है तो उसे भी अनुष्ठान ही कहा जाता है। अभीष्ट सिद्धि के लिए विशेष शक्ति का संचय करने की आवश्यकता होती है। इस निमित्त सम्बन्धित दैवी शक्ति की आराधना की जाती है, जिसे अनुष्ठान कहा जाता है। अनुष्ठान एक प्रकार का मार्गव्यय है। किसी आध्यात्मिक अथवा भौतिक इष्ट की प्राप्ति के लिये अपेक्षित कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ शक्ति की पूँजी गायत्री साधना द्वारा जमा कर ली जाती है, जो यात्रा का सम्बल होता है।

गायत्री महाविज्ञान कहता है-

"अनुष्ठान का विस्फोट हृदयाकाश में एक ऐसे प्रकाश के रूप में होता है, जिसके द्वारा विपत्तिग्रस्त को पार होने का मार्ग दिखाई देता है।"

मानसिक एवं शारीरिक कठिनाइयों में मनुष्य व्याकुल हो उठता है। वैसे समय में गायत्री अनुष्ठान रामबाण की तरह फलप्रद होता है। गायत्री साधना से मस्तिष्क परिमार्जित होकर सशक्त हो जाता है और सशक्त मस्तिष्क वाला व्यक्ति दुःख एवं चिन्ता रूपी जाल को काटकर सुख-शान्ति प्राप्त करता है।

सवा लाख मंत्रों के जप को अनुष्ठान की संज्ञा दी गई है। अभीप्सित उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपेक्षित समय और उपादान की आवश्यकता होती है। अनुष्ठान की जप मात्रा सवा लाख है, जिसको

साधक द्वारा निर्धारित समय सीमा में पूर्ण करने पर फल अवश्य मिलता है। सवा लाख जप को सामान्यतः चालीस दिनों में पूर्ण किया जाता है। एक दिन में 3125 मंत्र या 29 माला गायत्री जप कर सकते हैं। साधक अपनी शक्ति के अनुसार अवधि और जप संख्या का निर्धारण कर सकते हैं। अनुष्ठान आरम्भ करते समय गायत्री का आवाहन करें और अंत में विसर्जन। गायत्री आवाहन मंत्र-

"आयातु वरदे दिवि! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनीं, गायत्री च छन्दसां मातः ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते"।

विसर्जन का मंत्र है-

उत्तमे शिखरे देवि! भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छदेवि यथासुखम्।।

अनुष्ठान के आरम्भ में विधिपूर्वक कलश की स्थापना कर लेनी चाहिए क्योंकि कलश के जल में देवी-देवताओं का निवास रहता है। पुष्पासन पर गायत्री माता का चित्र अथवा मूर्ति में विधिवत् प्राण प्रतिष्ठा कर नित्य पूजा अर्चना करने के पश्चात् जप आरम्भ करना चाहिये।

जप की अवधि में सात्विक आहार-विहार का आचरण करना चाहिए। अनुष्ठान किसी भी मास में किया जा सकता है, किन्तु पौष मास एवं भाद्रपद और मलमास में अनुष्ठान नहीं किया जाता है। पंचमी, एकादशी एवं पूर्णिमा को शुभ माना गया है। इन तिथियों में प्रारम्भ करना फलप्रद होता है। पंचमी को दुर्गा, एकादशी को सरस्वती तथा पूर्णिमा को लक्ष्मी तत्त्व की प्रधानता रहती है। पक्षों में शुक्ल पक्ष को अधिक शुभ माना जाता है।

अनुष्ठान में साधारणतया जप से दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण तथा तर्पण का दशंाश ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। वेदोक्त अनुष्ठान के अन्त में एक सौ आठ आहुतियों का हवन करना चाहिए।

त्रिपदा गायत्री अनुष्ठान में कम से कम तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना एवम् सामर्थ्य के अनुसार दान देना चाहिए। "अधिकस्य अधिकम् फलम्" अर्थात् अधिक कर सकें तो अति उत्तम है।

फल

गायत्री महामंत्र सर्वोपरि तो है ही सर्वाधिक शक्तिशाली भी है, इसलिए सभी प्रकार की भौतिक उपलब्धियाँ और सर्वसिद्धि गायत्री साधना से सम्भव है। काम्य कर्म के लिये तथा सकाम प्रयोजनों की सिद्धि गायत्री साधना से सम्भव है। काम्य कर्म के लिए गायत्री के अनुष्ठान का प्रावधान शास्त्रकारों ने किया है। पूर्ण अनुष्ठान के लिए सवा लाख गायत्री मंत्र के जप का प्रावधान है, किन्तु चौबीस हजार मंत्र-जप का आंशिक अनुष्ठान भी किया जा सकता है।

अग्नि पुराण में दस लाख निष्काम जप का विधान है, किन्तु दस हजार सविधि जप भी मंगलकारी है।

दशसाहस्त्रजप्येन निष्कामः पुरुषो यदि।
विधिना नियतो ध्यायेत् प्राप्नोति परमं पदम्।।

निष्काम होकर सविधि दस हजार जप करनेवाला पुरुष परमपद को प्राप्त होता है। सकाम होकर अथवा निष्काम होकर किसी प्रकार का गायत्री जप सर्वकामप्रद है-

यथाकथं गायत्री देवी परमपावनी।
सर्वकामप्रदा प्रोक्ता पृथक कर्म सुनिष्ठता।।

सिद्ध साधक

पाँच प्रकार के साधक सिद्ध माने जाते हैं -

01. लगातार 12 वर्षों तक नित्य कम से कम 108 मंत्रों का जप किए हों।

02. गायत्री की ब्रह्मसंध्या में नौ वर्षों तक गायत्री जप किया हो।

03. चौबीस लाख गायत्री का अनुष्ठान किया हो।

04. ब्रह्मचर्य पूर्वक पाँच वर्षों तक प्रतिदिन एक हजार मंत्र जाप किया हो।

05. पाँच वर्षों तक विशेष गायत्री जप किया हो।

गायत्री साधना से लाभ

गायत्री-उपासना से रोग निवारण, विष निवारण, बुद्धि-वृद्धि, राजकीय सफलता, दरिद्रता का नाश, सुसन्तति की प्राप्ति, शत्रुता का संहार, भूतादि बाधाओं की शान्ति एवं रक्षाकवच के प्रयोजनों की सिद्धि होती है।

गायत्री सहस्रनाम या गायत्री चालीसा पाठ फलप्रद होता है। विशेषतः दुःस्वप्नों से त्राण दिलाता है।

शास्त्रों में जप का विधान किया गया है, गायत्री अर्थ संग्रह में वर्णित है, कि एक सहस्त्र (एक हजार) गायत्री का जप करना सर्वोत्तम है, सौ जप करना मध्यम और दस बार कनिष्ठ है। मनु भगवान के विधान के अनुसार ब्रह्मचारी और गृहस्थ एक सौ आठ बार गायत्री का जप करें। वानप्रस्थी एवं संन्यासी दो हजार से अधिक जप करें। अवकाश नहीं मिलने पर गृहस्थ एक सौ आठ बार या चौवन अथवा सताइस बार जप करें। याज्ञवल्क्य का वचन है कि दस हजार जप प्रतिदिन करने पर सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर पुरुष शुद्ध हो जाता है।

स्थान के अनुसार जप का महत्व

शारदा तिलक ने कहा है कि शास्त्रविधि के अनुसार पच्चीस लाख जप करने से गायत्री मंत्र सिद्ध होता है। उनके अनुसार जप के स्थान के अनुसार जप का फल मिलता है। मकान के भीतर जप करने पर एक गुणा फल, नदी आदि पवित्र स्थानों पर दोगुणा, गौशाला में करने पर दस गुना, यज्ञशाला में जप करने पर उससे भी अधिक फल मिलता है।

सिद्धि क्षेत्रेषु सर्वेपु देवतायाश्च संनिधौ,
सहस्र शत् कोटीनामनन्तं विष्णु संनिधौ।।

तीर्थ स्थान या देवता के समीप जप करने पर हजार कोटि फल प्राप्त होता है।

भगवान विष्णु के समीप बैठकर जप करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। वशिष्ठ मुनि ने कामना विशेष के निमित्त अंगुली विशेष से जप करने का विधान किया है।

"अंङ्गुष्ठं मोक्षदं विद्यातर्जनी शत्रुनाशिनी मध्यमा धन सिद्धये स्याच्छान्ति कर्मण्यनामिका" (वशिष्ठ)

अंगूठा से जप करने पर मोक्ष की प्राप्ति, तर्जनी से जप करने पर शत्रु का नाश तथा मध्यमा से धन की प्राप्ति होती है। शान्ति कर्म में अनामिका अंगुली से जप करना चाहिए। कनिष्ठिका से जप करने से आकर्षण कर्म में फलप्रद है।

कूर्म चक्र में दीपक जलाकर गायत्री पूजा एवं जप करना श्रेयस्कर है। गोलाकार नवचक्र बनाकर मुख भाग में दीपक स्थापित करना चाहिए।

माला-मनका

मध्यमा अँगुली से माला चलाना उत्तम है क्योंकि यह सर्वसिद्धि देने वाला है। यदि रुद्राक्ष आदि की माला उपलब्ध न हो सके तो कुश की ग्रन्थि से या हाथ से संख्या करते हुए एकाग्र मन से जप करना चाहिए। माला के मणियों का आकार बहेड़ा के बीज के बराबर होना चाहिए, जिसकी संख्या 108 होना उत्तम है। आधी मणियों की माला मध्यम है। भूल से यदि मेरु का उल्लंघन हो जाय या माला टूट जाय तो तीन प्राणायाम कर लें। गीले वस्त्र में जप करना विधि सम्मत नहीं है। ध्यान रहे "जप काले त्वक्षमालां गुरोरपि न दर्शयेत", कुश का आसन, कम्बल, व्याघ्रचर्म, मृगचर्म, वस्त्र तथा काष्ठ छः प्रकार के आसनों का विधान है।

जप के सम्बन्ध में पहले भी कहा जा चुका है-

ध्यायच्च मनसा मन्त्रं, जिह्वौष्ठौ न च चालयेत्।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां, दन्तन्नैव प्रकाशयेत्।।

मानसिक जप-फल

जप का ध्यान मन से करें। जिह्वा और ओठ को नहीं चलाये, ग्रीवा को नहीं हिलावे और दाँत नहीं दिखावे। मानस जप विधि यज्ञ से सहस्त्र गुणा अधिक फल प्रदा है।

माधवाचार्य विरचित गायत्र्यर्थ प्रतिपादिक निम्न श्लोक सुगम है। इन्हें कंठस्थ कर लेना भी कठिन नहीं है।

तदित्य वाङ्मनोगम्यं ध्येयंयत्सूर्यमंडले।
सवितुः सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणः।।
वरेण्यमाश्रयणीयं यदाधारमिदं जगत्।
भर्गः स्वसाक्षात्कारेणाविद्यातत्कार्यदाहकम्।।
देवस्य द्योतमानस्य ह्यानन्दात्क्रीडतोऽपिवा
धीमह्यहं स एवेति तेनैवाभेद सिद्धये।।
धियोऽन्तः करणवृत्तीः प्रत्यक्प्रवण चारिणीः।
य इत्यलिङ्ग धर्म यत्सत्य ज्ञानादिलक्षणम्।।
नोऽस्माकं बहुधाभ्यस्तभिन्नभेदद्दृशांतथा।।
प्रचोदयात् प्रेरयतु प्रार्थनेयं विचार्यते ताम्।।
अत्रैव लोकोपकारार्थं जपलक्षणम् निर्णीतम् तेनैव-
तथा मध्याह्न संध्यायामासीनः प्राङ्मुखो जपेत्।
तिष्ठन्नपि जपेद्देवीमादित्याभिमुखो द्विजः।।
कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधोमुखौ करौ।
मध्ये प्रसारित करौ जप एवमुदाहृतः।।
गायत्री जपादौ करशुद्धिकार्या तल्लक्षणं तु-

प्रकोष्ठे मणिबन्धे च पार्श्वयोस्तलयोस्तथा।
तत्पृष्ठे च तदग्रे च करशुद्धिरुदाहृता।।
(गा.अ.सं.155)

पुरश्चरण - विशिष्ट विधि

भौतिक एवं आध्यात्मिक फल की प्राप्ति के लिए विशिष्ट विधि सम्मत क्रिया को पुरश्चरण कहते हैं। मनोवांछित कामना की पूर्ति के लिए पर्याप्त आत्मबल की आवश्यकता होती है, जिसके लिए गायत्री से सम्बन्धित अक्षर की दैवी शक्ति की उपासना कर आन्तरिक शक्ति को विकसित किया जाता है। इसकी निर्धारित प्रक्रिया को पुरश्चरण की संज्ञा दी गई है।

पुरश्चरण से अपने भीतर ऐसी शक्ति का उद्भव होता है, जिससे इच्छित फल की प्राप्ति सम्भव हो जाती है।

पुरश्चरण का स्थान चयन

विज्ञ कर्मकाण्डी की देखरेख में ही पुरश्चरण- क्रिया की जाती है। ''विश्वामित्र कल्प'' में कहा गया है कि पहाड़ की चोटी पर, नदी या तालाब के किनारे, बेल या पीपल वृक्ष के नीचे, गोशाला में, देवमंदिर में, तुलसी वन में और तीर्थ स्थान में पुरश्चरण क्रिया करना श्रेयस्कर है।

शुभाशुभ मास-तिथि-लग्न-आसन

ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, पौष, मलमास (अधिक मास) मंगलवार या शनिवार, व्यतिपात तथा वैधृति योग, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, प्रदोष, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा रात्रिकाल पुरश्चरण के लिये वर्जित हैं।

भरणी, कृतिका, आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, घनिष्ठा, श्रवण और जन्म नक्षत्र तथा मेष, कर्क, तुला, कुम्भ, मकर लग्नों के समय पुरश्चरण करना चाहिए। गुरु, शुक्र के उदय होने पर शुद्ध लग्न में शुभादि अनुकूल चन्द्र और तारा में विशेष रूप से शुक्ल पक्ष में पुरश्चरण करने से मनोकामना सिद्ध हो जाती है। काले मृग का चर्म ज्ञान की सिद्धि हेतु, ब्याघ्र चर्म मोक्ष हेतु, कार्य पुष्टि के लिये रेशम का आसन, शान्ति कार्य के लिये कम्बल का आसन व्यवहार करना चाहिये। जप संख्या, हवन, ब्रह्म भोज आदि के सम्बन्ध में पूर्व में लिखा जा चुका है।

मोती, विद्रुम, सुवर्ण, नील तथा श्वेत आभायुक्त तीन नेत्रों वाले मुख युक्त, चन्द्रजटित रत्नों के मुकुट को धारण करने वाली तत्त्वार्थ प्रकाशन करने वाली, अभय वरदान प्रदान करने वाली, त्रिशूल, कपाल, शंख तथा चक्र और कमल हाथों में धारण करती हुई गायत्री देवी का ध्यान करते हुए जप करें।

हवन और उसका महत्त्व-समिधा-ग्रहशान्ति

गायत्री अनुष्ठान के अन्त में हवन का विधान है। हवन के बाद ही विसर्जन किया जाता है। निष्काम अनुष्ठान में भी हवन के साथ विशेषतः पुरश्चरण में हवन आवश्यक है।

हवन विधि का निरूपण शास्त्रकारों ने किया है। हवन का आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी मनुष्य के लिए हवन लाभ प्रद है। स्वास्थ्य के लिए तो यह अमोघ औषधि है। हवन के समीपवर्ती वायुमंडल एवं पृथ्वी शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद हो जाती हैं। स्थान नकारत्मक शक्तियों से मुक्त हो जाता है।

हवन में अग्नि और वायु का संयोग होता है, जो वायुमंडल को हर प्रकार से शुद्ध एवं पवित्र बनाता है। हवन में जो शाकल्य जलाया जाता है वह पूर्णतः नष्ट नहीं होता अपितु सूक्ष्म तत्त्व के रूप में

परिवर्तित होकर वायुमंडल में छा जाता है और वातावरण को परिशुद्ध कर देता है।

अन्न, घी, गुड़, रक्त चंदन, श्वेत चंदन, कर्पूर, चावल, तिल, जौ, लवंग, नारियल, बिल्वपत्र, मिश्री, धूप, अगर तथा आम आदि की लकड़ी मिलाकर हवन की समिधा तैयार करनी चाहिए। अग्नि के प्रज्ज्वलन के लिए कर्पूर की विशेष आवश्यकता है। ये सामग्रियाँ गायत्री माता को विशेष प्रिय हैं। इसके अतिरिक्त नौ ग्रह-सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु के निमित्त नौ प्रकार की लकड़ियाँ जैसे-अकवन, पलास, खैर, चिड़चिड़ी, पीपल, गूलर, शमी, दूब, कुश पृथक-पृथक मंत्र से नवग्रहों को आहुति दी जाती है। अपने हाथ से एक बीता लकड़ी का टुकड़ा गो घृत में डुबाकर शनि ग्रह के मंत्र से -

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभिस्रवन्तु नः ।।

मंत्र से आहुति देने पर शनि ग्रह का शमन होता है। शमी वृक्ष के फूल से यदि आहुति दी जाए तो अधिक फल दायक होता है। इसलिए ऋषि-मुनियों ने किसी भी प्रकार के अनुष्ठान, पुरश्चरण अथवा यज्ञ में हवन का विधान किया है।

ब्रह्म तेज की प्राप्ति का साधन गायत्री मंत्र का हवन है।

ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयाद्यथा।
घृताप्त्युतैस्तिलैरग्नौ जुहुयात्सुसमाहितः ।।

घृतयुक्त तिल से हवन करने पर ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है। ब्रह्मसायुज्य, परा सिद्धि तथा परमधाम की प्राप्ति का सरल साधन गायत्री हवन है।

तिलानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने।
सर्वकाम समृद्धात्मा परं स्थानमवाप्नुयात् ।। (गा.म.वि.)

भावार्थ यह है कि एक लाख आहुति देकर जो हवन किया जाता

है उसका फल है सभी कामनाओं की सिद्धि और परमस्थान की प्राप्ति।

चंदनचूर्ण, देवदार, जायफल, इलायची, जावित्री, अगर-तगर, नागर मोथा, खस, मेवा तथा जौ को कूट कर उसमें घी, शक्कर मिलाकर धूप बना लें और मिश्रित धूप से आहुति दें। आवश्यक समिधा सामग्रियों का विवरण ऊपर दिया गया है।

गायत्री तर्पण, मार्जन एवं मुद्रायें भी हवन के अंग हैं। इस संदर्भ में गायत्री हवन से संबंधित पुस्तक का अवलोकन किया जा सकता है। विज्ञ पुरोहित के मार्गदर्शन में अनुष्ठान सम्पन्न करें।

अध्याय १०

गायत्री गीता

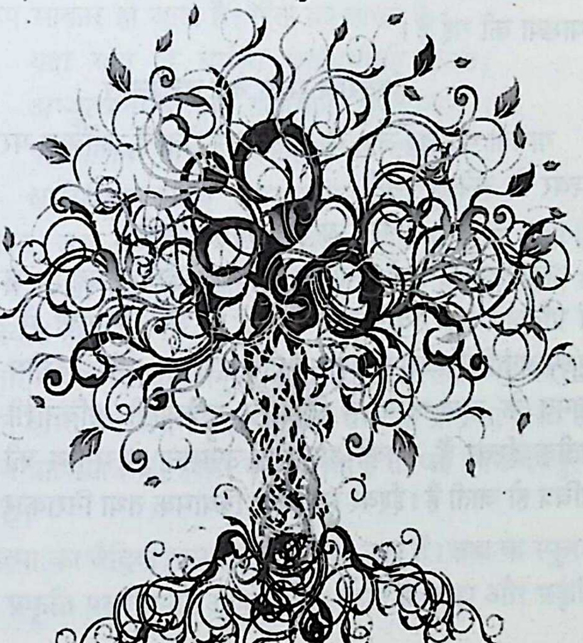

गायत्री गीता

स्रोत

गायत्री गीता सद्ज्ञान एवं सद्बुद्धि का अविरल स्रोत है। गायत्री गीता के 14 स्रोत 14 रत्न हैं। समुद्र मंथन से अमृत, लक्ष्मी, कामधेनु आदि 14 रत्न निकले थे। धर्मशास्त्रों के मंथन से गायत्री गीता का प्रादुर्भाव हुआ।

यं वेदा निगदन्ति न्यायनिरतं श्रीसच्चिदानन्दकम्।
लोकेशं समदर्शिनं नियमनं चाकारहीनं प्रभुम्।।

गायत्री अर्थ की जानकारी हो जाने पर मन और मस्तिष्क परिष्कृत हो जाता है। शास्त्र में गायत्री के शब्दों की अलग-अलग शिक्षात्मक व्याख्या की गई है।

ईश्वरीय सत्ता का तत्त्वज्ञान

गायत्री मंत्र का जप ॐ से प्रारम्भ होता है, ओंकार परमात्मा है। ईश्वर के अनेक नाम है-

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

महान योगियों ने समाधि लगाकर देखा कि प्रकृति के अन्तराल में प्रतिक्षण एक ध्वनि उत्पन्न होती है, जो ॐ शब्द से उत्पन्न है। सूक्ष्म प्रकृति ईश्वरीय नाम का प्रति क्षण जप और उद्घोष करती है। मानव के अन्तःकरण में विद्यमान सर्वव्यापी अविनाशी तत्त्व का प्रतीक ईश्वर हैं, उनकी आराधना उपासना से मनुष्य की मनोभूमि पवित्र हो जाती है। ईश्वर समदर्शी, नियामक तथा निराकार हैं। विश्व

के समस्त प्राणियों में आत्मा रूप से वह निवास करते हैं। मायामोह से ग्रस्त मनुष्य की अन्तरात्मा भी उसे सन्मार्ग पर चलने का निर्देश देती रहती है। आत्मा के संकेत पर मनुष्य यदि कुमार्ग को छोड़कर सन्मार्ग का पथिक बन अग्रसर हो तो वह श्रेष्ठ पुरुष बन सकता है। गीता में भगवान ने कहा है कि-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता)

सबकुछ छोड़कर मेरे शरण में आओ, सभी पापों से मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा।

ईश्वर सर्वव्यापी हैं, ईश्वर को निराकार माना गया है, परन्तु सभी के आत्मा में समाविष्ट रहने के कारण ईश्वर को साकार भी कहा जा सकता है। अवतार के रूप में ईश्वर जब इस पृथ्वी पर आते हैं, तो उनका रूप साकार हो जाता है। गीता का कथन है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

अवतार रूप में भगवान मनुष्य को शिक्षा-दीक्षा देकर नयी दिशा-दशा प्रदान करते हैं। अधर्म का नाश कर धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। मनुष्य जब प्राणिमात्र को ईश्वर रूप मानता है तो वह स्वयं देवतुल्य हो जाता है।

परमात्मा का वैदिक नाम ॐ हैं। ईश्वर ब्रह्म हैं। ब्रह्म के स्फुरण का सूक्ष्म प्रकृति पर निरन्तर आघात होता रहता है। ब्रह्म और प्रकृति

के मिलन-स्पंदन पर ॐ की झंकार होती रहती है, इसलिए यह उनका स्वयं घोषित नाम माना गया है। ब्रह्म के सम्बन्ध में मनुष्यों ने अपनी-अपनी धारणा अभिव्यक्त की है।

अद्वैतवाद-द्वैतवाद-त्रैतवाद

अद्वैतवाद, द्वैतवाद तथा त्रैतवाद को इस प्रकार समझा जा सकता है कि पहले ब्रह्म एक थे। इसलिये अद्वैतवाद ही मान्य था। आदिशक्ति के प्रकट होने पर ब्रह्म और शक्ति दो हो गये, इसलिए शास्त्रकारों ने द्वैतवाद का सिद्धान्त दिया। प्रकृति (शक्ति) और परमेश्वर के सानिध्य से जो रजसत्ता उत्पन्न हुई वह जीव कहलायी इसलिए त्रैतवाद भी ठीक है।

भौतिक एवं सूक्ष्म तत्त्व

तत्त्व दो प्रकार के हैं भौतिक तत्त्व और सूक्ष्म तत्त्व। भौतिक तत्त्व के वैज्ञानिकों ने पंचतत्त्वों के भेदों और उपभेदों को जानकर विविध शास्त्रों की रचना की जैसे रसायन, चिकित्सा, खगोल आदि। उन्होंने अपनी खोज से मनुष्य के लिये अनेक प्रकार के सुख साधन खोज निकाले जैसे रेल, टेलीविजन और मोबाइल आदि। धन और सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध हो जाने से जो लाभ मिलता है उसे शास्त्रीय भाषा में प्रेय कहते हैं। स्थूल प्रकृति के उपयोग की विद्या को भौतिक विज्ञान कहते हैं, जो काफी विकसित हो चुका है। सूक्ष्म तत्त्व-भौतिक तत्त्व से प्राप्त सुख सुविधा के साधन का स्रोत स्थूल प्रकृति है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म प्रकृति की भी सत्ता सृष्टि में विद्यमान है। सूक्ष्म प्रकृति वह है जो आदिशक्ति गायत्री से उत्पन्न होकर सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में पूजित है।

भगवती दुर्गा

दुर्गा का नाम चण्डी, अम्बा, शिवा, पार्वती, काली आदि है। दुर्गा अवतार की कथा है कि असुरों द्वारा संत्रस्त देवताओं का उद्धार करने के लिये ब्रह्म ने उनका तेज एकत्रित किया था और उसे काली का रूप देकर असुरों की प्रचण्ड शक्ति का संहार करवाया था। दुर्गा को नवदुर्गा भी कहा जाता है। नवदुर्गा के पृथक-पृथक नाम हैं- शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघंटा, कुष्मांडा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री। नवदुर्गा की पूजा नवरात्र के समय विशेष रूप से की जाती है। सामूहिक नवशक्तियों के सम्मिलित रूप दुर्गा ने अपने पराक्रम से असुर शक्तियों का विनाश किया था। दुर्गा के रूप में गायत्री सिद्धिदात्री हैं।

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढ़ां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः।।

लक्ष्मी

लक्ष्मी के रूप में गायत्री ऐश्वर्य प्रदा हैं। वे असुरशक्ति का नाश करती हैं। दुर्गा के रूप में इन्होंने महिषासुर का वध कर पृथ्वी को पाप मुक्त किया था। भगवान शंकर, भगवान विष्णु, चन्द्रदेव, ब्रह्मा, यम, इन्द्र, वरूण, बसु, प्रजापति और अन्य देवताओं के तेज से जो देवी प्रकट हुई उसे दुर्गा की संज्ञा दी गयी है और उनको सभी देवताओं ने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित किया। तेजस्वरूपा भगवती असुर शक्ति का विनाश कर सुख-शांति और समृद्धि से पृथ्वी लोक को पूर्ण करती हैं। उनके लक्ष्मी रूप की स्तुति है-

ॐ धनं धान्यं धरां धर्मं कीर्तिं मायुर्यशः श्रियम्।
तुरङ्गान् दन्तिनः पुत्रान् महालक्ष्मि प्रयच्छ मे।।

सरस्वती

ह्रीं को सत् या सरस्वती कहते हैं। वे ज्ञान की अधिष्ठात्री हैं। उनकी उपासना ज्ञान के पिपासु विशेषतः विद्यार्थी करते हैं। गायत्री के ह्रीं सत् की उपासना से विवेकानन्द, योगिराज अरविन्द आदि ने ज्ञान सम्पदा माँ सरस्वती से प्राप्त की है। ज्ञान संपदा के साथ-साथ आत्मज्ञान की भी प्राप्ति होती है। ज्ञान समस्त सुखों का जनक है। ज्ञान का प्रकाश सरस्वती से प्राप्त होता है, जो अज्ञान और अविद्या के तम का अन्त कर देता है और मनुष्य को ज्ञानी बना देता है। ब्रह्मरंध्र के समीप ब्रह्म एवं सरस्वती का निवास है। सरस्वती की वीणा की झंकार निरन्तर वहाँ झंकृत होती रहती है। ज्ञान-विज्ञान की दात्री के रूप में इनकी आराधना की जाती है। चैतन्य बुद्धि, ज्ञान की देवी सरस्वती हैं।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु कांतिरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

अतः सरस्वती ब्रह्मशक्ति हैं। सरस्वती का ध्यान मंत्र है-

ॐ शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।

भूः भुवः स्वः का अर्थ एवं व्याख्या-

1. भूः-सभी प्राणियों में प्राण विद्यमान है।

भूर्वै प्राण इति वदन्ति मुनयो वेदान्त पारंगता।
प्राणः सर्व विचेतनेषु प्रसृतः सामान्य रूपेण च।।
एतेनैव विसिद्ध्यते हि सकलं नूनं समानं जगत्।
द्रष्टव्यं सकलेषु जन्तुषु जनैर्नित्यंह्यतश्चात्मवत्।।

(गा. सा. गु. वि.)

प्राण को भूः कहा गया है। सभी प्राणियों में प्राण समाविष्ट है। अतः सभी समान हैं।

मनुष्य आत्मा की उपेक्षा कर भोग में लिप्त हो जाता है और माया, अविद्या, भ्रांति के बन्धन में बन्ध जाता है। गायत्री का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य को यह अनुभूति हो जाती है कि हम शरीर नहीं हैं बल्कि हम प्राण हैं। प्राण ही जीवन है।

सभी मनुष्यों और सभी प्राणियों को अपने समान समझना चाहिए। जब तक शरीर में प्राण है तब तक ही व्यक्ति जीवित माना जाता है। प्राणांत होने के साथ ही हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है और प्राणी मृत घोषित हो जाता है। सगे-सम्बन्धी भी मृत शरीर को घर से हटाकर अंत्येष्टि क्रिया को यथाशीघ्र समाप्त करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।

आत्मा के संसर्ग से ही यह शरीर सुख, यश, वैभव और प्रतिष्ठा का माध्यम रहता है। आत्मा से विलग होते ही शरीर को शव की संज्ञा दे दी जाती है। अतः आत्मा प्रधान है और आत्मोन्नति के लिए मनुष्य को प्रयत्नशील रहना चाहिए।

प्राण वह सूक्ष्म तत्त्व है जो शिला को देवता बना देता है। निर्जीव शिला में जब देवता की प्राण प्रतिष्ठा कर दी जाती है, तो वह देव रूप में पूजित होता है, देव प्रसन्न होने पर आराधक को मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। इसलिए प्राण को श्रेष्ठ आसन दिया गया है।

शरीर पर तो मनुष्य यथासम्भव ध्यान देता है और इसके विकास और सुसज्जा के लिये हमेशा तत्पर रहता है। प्राण जो जीवन है उसको सुव्यवस्थित और समुन्नत करने की ओर व्यक्ति प्रयासरत नहीं रहता है। फलस्वरूप प्राण उपेक्षा के कारण मनुष्य आधि-व्याधि से ग्रसित होकर विविध प्रकार की पीड़ाओं से पीड़ित रहता है।

इसी को ध्यान में रखकर पतंजलि ऋषि ने प्राणायाम का विधान किया है, जो प्राण को सबल रखेगा और शरीर को भी स्वस्थ रखेगा। प्राण के नियमन को प्राणायाम कहते हैं, जो प्राणोन्नति का सुविचारित साधन है। प्राणायाम की विधि और उसके लाभ के सम्बन्ध मे पहले वर्णन किया जा चुका है।

शरीर को प्रधानता देना और आत्मा की उपेक्षा करना भौतिकवाद है। आत्मा को प्रधानता देना और शरीर की उचित रक्षा करना आत्मवाद है।

गायत्री के चिन्तन मनन से आत्म कल्याण और आत्म उन्नति होती है। सादा जीवन उच्च विचार आत्म साधना का प्रथम चरण है। विश्व बन्धुत्व की भावना जागृत होने पर दूसरा सोपान समाप्त हो जाता है। उच्चतर सोपान में मनुष्य स्वयं को विश्व परिवार का सदस्य माननें लगता है और समस्त विश्व उसे अपना घर मालूम होता है। इस स्थिति में मनुष्य जिस आनन्द की अनुभूति करता है उसे सत्-चित्-आनन्द की अनुभूति कहते हैं। वह सबके हित में अपना हित समझता है। विश्व बन्धुत्व सदा से भारतीयों का मूल मंत्र रहा है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

2. भुवः – भुवः कर्मयोग की शिक्षा देता है।

गायत्री की शिक्षा है कि अपनी आत्मा के साथ सब की आत्मा को अपने में समाविष्ट समझे।

भुवर्नाशो लोके सकल विपदां वै निगदितः।
कृतं कार्यं कर्तव्यमिति मनस्या चास्य करणम्।
फलाशा मर्त्यो ये विद्धति न वै कर्म निरताः।
लभन्ते नित्यं ते जगति हि प्रसादं सुमनसाम्।

(गा.सा.गु.वि.२.६)

समस्त दुःखों का नाश ही भुवः कहलाता है। सत्कार्य भावना से किये गये कार्य को कर्म कहा जाता है। फल की अभिलाषा किए बिना सत्कार्य करने की क्रिया को सत्कर्म कहते हैं।

मनुष्य की लालसा अनन्त है। इसलिए उसे तृप्ति का आनन्द नहीं मिलता है। तृष्णाओं से मुक्ति पाकर ही मनुष्य आनन्द की अनुभूति कर सकता है। यह तभी सम्भव है, जब मनुष्य के मन में आत्मज्ञान हो। आत्मज्ञान से आत्म सन्तोष का भाव उत्पन्न होता है। सन्तुष्टि ईश्वरीय अवदान है। सन्तुष्ट मनुष्य हमेशा आनन्दित रहता है। मन को क्रिया में प्रवृत्त रखना और कर्त्तव्य का निर्धारण विवेक से कर कार्य सम्पन्न करना कर्मयोग है।

बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और विवेक पूर्वक यह निश्चय करें कि जीवन के विकास के लिये क्या करना है? एक बार निश्चय कर लेने पर कार्य में प्रवृत्त हो जाना चाहिए और तत्परता पूर्वक उसे सम्पन्न कर लेना चाहिए। अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के बाद ही विराम करना है।

कर्म से वैराग्य लेना भयंकर भूल है। आलस्य और कुविचार से वैराग्य लेना उचित है। हर्ष, शोक, हानि, लाभ में सफलता, असफलता में मानसिक क्लेश जिसे नहीं होता वही कर्मयोगी है। ऐसा मनुष्य कर्म बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

मनुष्य सुख की कामना करता है। वस्तुओं और परिस्थितियों में सुख खोजना एक प्रकार की मानसिक मृगतृष्णा है। प्यासे मृग की तरह मृगतृष्णा में भटकते रहने से दुःख और हताशा या निराशा मिलती है। तृष्णा का अन्त नहीं है। एक का फल मिलते ही दूसरी वस्तु की तृष्णा जाग उठती है। कहा गया है कि 'तृष्णा न जीर्णा कायैव जीर्णा।' शारीरिक और आर्थिक सम्पदायें प्राप्त होने पर भी नयी-नयी तृष्णायें गढ़-गढ़कर मनुष्य असन्तुष्ट और दुःखी रहता हैं। सन्तोष ही उसका एक विकल्प है, जो तृष्णा से छुटकारा दिला सकता है। कहा गया है ''संतोषं परमं सुखम्'' और ''जब आये संतोष धन, सब धन धूरि समान''।

सन्तोष का हेतु तो केवल आत्मज्ञान है, मनुष्य के अन्तरात्मा में आत्मज्ञान का उदय होते ही आसक्ति और तृष्णा का अन्धकार मिट जाता है एवं मनुष्य सन्तुष्टि, सुख और प्रसन्नता अनुभव करने लगता है।

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्वक्त्वात्मशुद्धये।। (गीता)

मनुष्य इन्द्रिय और मन को वश में कर लेता है। इन्द्रियाँ हमेशा भोग की इच्छा करती हैं। मन के लिए भोगेच्छा प्रिय विषय है। किन्तु ज्ञान और विवेक से युक्त पुरुष मन को नियंत्रण में रखकर कर्म करता है। गीता में कहा गया है कि कर्मयोगी आसक्तिरहित होकर शरीर, मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के द्वारा भी केवल अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करता है। ऐसे कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत् प्राप्ति में लीन हो जाते हैं। कर्मयोगी भौतिक फल की इच्छा नहीं करता है। वह निष्काम भाव से शास्त्र विहित कार्य को सम्पन्न करता है।

ज्ञानी मनुष्य जानता है कि यह शरीर उसका नहीं हैं इसलिए इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए सकाम भाव से कार्य करना उचित नहीं है। निष्काम भाव से किया गया कार्य उचित है।

शास्त्र विहित कर्म करने हेतु श्रीकृष्ण ने गीता में उपदेश दिया है कि जो पुरुष इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है। गीता में कहा गया है कि

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्ययकर्मण:।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मण:।। (गीता)

भगवान मनुष्य को कहते हैं कि वह शास्त्रविहित कर्म करें क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म नहीं करने पर शरीर का निर्वाह भी नहीं हो सकेगा।

3. स्वः- स्वः शब्द समभाव का निर्देश करता है। गायत्री का स्वः व्याहृति यह उपदेश देता है कि मन चंचल है, उसे स्थिर और स्वस्थ रखो।

स्वरेषो वै शब्दो निगदति मन:स्थैर्य-करणम्,
तथा सौख्यं स्वास्थ्यं ह्युपदिशति चित्तस्य चलत:।
निमग्नत्वं सत्यव्रतसरसि चाचक्षति उत,
त्रिधां शांतिं ह्येतां भुवि च लभते संयमरत:।

(गा. म. वि.)

जीवन में सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, उन्नति-अवनति का चक्र घूमता रहता है। परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है। एक सी स्थिति सदा रहने पर विकास अवरुद्ध हो जाएगा। संसार का नियम है एक के लाभ में दूसरे की हानि है और दूसरे की हानि से एक का लाभ है।

लेकिन सामान्य मनुष्य जीवन के उतार-चढ़ाव को देखकर दुःखी हो जाता है। ज्ञानी पुरुष सुख और दुःख को सम भाव से ग्रहण करता है। स्वः शब्द में गायत्री यह शिक्षा देती है कि मन को स्थिर और दृढ़ रखो। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों स्थिति में मन का संतुलन कायम रखते हुए सत्कार्य में लगे रहो।

मनुष्य को अपना जीवन कमलवत् बना लेना चाहिए। स्वः का परिचय आत्मचिन्तन से होता है। आत्म चिन्तन से आत्म विश्वास, निष्ठा का भाव उत्पन्न होता है, जो मनुष्य की इच्छा, कल्पना शक्ति को सतेज रखता है। वह आत्मज्ञान को प्राप्त करता है।

मनुष्य सम्पत्ति, अधिकार, पद प्राप्त हो जाने पर हर्षातिरेक से अभिमानी हो जाता है और दूसरे को तुच्छ समझने लगता है। थोड़ी भी हानि होने पर दुःखी हो जाता है। खुशी में मदहोश हो जाता है और शोक में शोकमग्न हो जाता है। सुख और दुःख दोनों में मन को सन्तुलित रखने पर मनुष्य सन्तुलित जीवन व्यतीत करता है। स्वः यह शिक्षा देता है कि अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थतियों में मन और बुद्धि को स्थिर रखें। जिसका मन स्थिर है उसे ही स्थितप्रज्ञ कहते हैं। स्थितप्रज्ञ हमेशा आनन्द का अनुभव करता है।

लेकिन स्थितप्रज्ञ की स्थिति प्राप्त करना कठिन है। इसे साधना के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इन्द्रियाँ अपनी-अपनी चाहत की तृप्ति चाहती हैं। उनको इससे विरत करने के लिये इन्द्रियों को वश में रखना होगा। गीता में श्रीकृष्ण कहते है कि -

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

(गीता-2/68)

जिस पुरुष की इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में सब प्रकार से विरत होकर उसके वश में हैं उसी की बुद्धि निःसंदेह स्थिर है। इन्द्रियों का दमन साधना के द्वारा ही सम्भव है। जो निरन्तर अभ्यास के द्वारा इन्द्रियों को वश में कर लेता है वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है और मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

इस संसार में वही बुद्धिमान है जो जीवन और मरण के रहस्य को जानता है।

ततो वै निष्पत्तिः स भुवि मतिमान् पण्डितवरः,
विजानन् गुह्यं यो मरणजीवनयोस्तदखिलम्।
अनन्ते संसारे विचरति भयासक्तिरहित,
स्तथा निर्माणं वै निजगतिविधीनां प्रकुरुते।

(गा. म. वि.)

ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य जीवन से बहुत अधिक प्यार करता है किन्तु मृत्यु का नाम सुनते ही उसके हाथ-पाँव फूल जाते हैं। मृत्यु की कल्पना मात्र से मनुष्य अत्यन्त भयभीत हो उठता है। प्राण संकट के समय लोग अपना कर्त्तव्य भूल जाते हैं कि अपनी प्राण रक्षा के साथ-साथ दूसरों की भी यथासम्भव रक्षा करनी चाहिए।

गायत्री के पदों की व्याख्या

4. तत् -तत्-यह बताता है कि सुख-दुःख और जन्म-मरण नियति का चक्र है, जिससे होकर प्राणी को गुजरना पड़ता है। वह अज्ञानवश नहीं जानता कि आत्मा शरीर से भिन्न है, शरीर नश्वर है और आत्मा अजर-अमर है।

जिस व्यक्ति ने इन्द्रियातीत होकर तृप्ति की समस्त इच्छाओं का परित्याग कर दिया है, वह इच्छाओं से रहित है और जिसने सारी ममता त्याग दी है, वही सर्वसुखभागी है।

न जायते म्रियते वा कदाचि
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (गीता)

आत्मा के लिये किसी भी काल में न तो जन्म हुआ है न मृत्यु, वह न तो कभी जन्मा है, न जन्म लेता है और न जन्म लेगा। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत् तथा पुरातन शरीर के मारे जाने पर भी वह मारा नहीं जाता है।

वह शरीर की भाँति विकारी नहीं है। शरीर मरणशील है। शरीर का रूपान्तर बाल्यावस्था, युवावस्था और बृद्धावस्था के रूप में होता है, किन्तु आत्मा में ऐसा परिवर्तन नहीं होता। वह अजन्मा है। केवल शरीर धारण करता है। आत्मा नित्य, शाश्वत् और सनातन है। कठोपनिषद् में इस भाव का एक श्लोक है–

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न् बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

आत्मा पुराने शरीर का त्याग कर नवीन भौतिक शरीर उसी प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।। (गीता)

तत् वही अविनाशी परमात्मा का बोध कराता है जिसका अंश आत्मा है।

स्थितप्रज्ञ का लक्षण गीता में निरूपित किया गया है।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

(गीता-*2/55*)

जब मनुष्य मनो धर्म से उत्पन्न होने वाली इन्द्रिय तृप्ति समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है और जब इस तरह विशुद्ध हुआ मन आत्मा में सन्तोष प्राप्त करता है तो वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि त्रितापों आधिदैविक, आधिदैहिक और आधिभौतिक के होने पर भी मन विचलित नहीं होता अथवा

सुख में प्रसन्न नहीं होता है और जो आसक्ति भय तथा क्रोध से मुक्त है वह स्थिर मनवाला मुनि कहलाता है। वह राग विराग से प्रभावित नहीं होता है। राग का अर्थ होता है, अपनी इन्द्रिय तृप्ति के लिये वस्तुओं को ग्रहण करना और विराग का अर्थ है ऐन्द्रिय आसक्ति का अभाव। स्थिर व्यक्ति में न राग होता है और न वैराग्य।

इस भौतिक जगत् में जो व्यक्ति न तो सुख की प्राप्ति होने पर हर्षित होता है और न अशुभ की प्राप्ति होने पर उससे घृणा करता है, वह पूर्ण ज्ञान में स्थित रहता है। स्थितप्रज्ञ के लिये परिणाम अच्छा है या बुरा उसे इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। शुभ या अशुभ से वह प्रभावित नहीं होता है। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय विषयों से खींच लेता है वह पूर्ण चेतना में दृढ़ता पूर्वक स्थिर हो जाता है। इन्द्रियाँ बिना किसी नियंत्रण के कर्म करना चाहती हैं। इन्द्रिय भोग पर संयम नहीं बरतने पर स्थित प्रज्ञ होना सम्भव नहीं है। देहधारी जीव इन्द्रिय भोग से भले ही निवृत्त हो जाय पर उसमें इन्द्रिय भोगों की इच्छा बनी रहती है। इन्द्रियाँ इतनी प्रबल और वेगवान हैं कि वे पुरुष के मन के विवेक को हर लेती हैं, जो उन्हें वश में करने का प्रयत्न करता है।

इन्द्रिय विषयों का चिन्तन करते हुए मनुष्य की उनमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे आसक्ति से काम उत्पन्न होता है। काम से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मोह उत्पन्न होता है, और मोह से स्मरण शक्ति का भी भ्रम हो जाता है। जब स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है तो बुद्धि नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इसके सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। (गीता अ. 2)

समस्त राग तथा द्वेष से मुक्त एवं इन्द्रियों को संयम द्वारा वश में करने वाला व्यक्ति भगवान की पूर्ण कृपा प्राप्त कर सकता है। फलस्वरूप तुष्ट व्यक्ति तीनों तापों से मुक्त हो जाता है। तुष्ट चेतना का प्रादुर्भाव होने पर उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है और मन नियंत्रित हो जाता है।

गायत्री मंत्र के प्रथम पद में तत् शब्द प्रकाश डालता है, जिसके प्रकाश में जन्म-मृत्यु का रहस्य मनुष्य समझ जाता है और वह भय और आसक्ति से रहित होकर सुखी जीवन व्यतीत करता है। जैसे नये वस्त्र धारण से प्रसन्नता होती है वही प्रसन्नता मृत्यु के सम्बन्ध में भी होनी चाहिए। मृत्यु भय का कारण अविद्या है। गायत्री अविद्या के अन्धकार का नाशकर विद्या का उदय करती हैं। विद्वान पुरुष जन्म-मृत्यु के अटल नियम को जान जाता है और जीवन को सदुपयोगी कार्य में लगाता है। तत् से हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि मृत्यु का भय व्यर्थ है, जबतक जीवन है, निर्भीक और सुखमय जीवन व्यतीत करें।

जब आत्मा अविनाशी है तो विनाश का भय होना ही नहीं चाहिए। भगवान् कहते हैं कि जो सारे शरीर में व्याप्त है उसे ही तुम अविनाशी समझो। आत्मा को नष्ट करने में कोई समर्थ नहीं है। इस श्लोक में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आत्मा की प्रकृति का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। भगवान् ने स्पष्ट कर दिया है कि आत्मा अविनाशी, अप्रमेय तथा शाश्वत् है। उन्होंने कहा है कि शरीर का अन्त अवश्यम्भावी है। गीता का वचन है "नायं हन्ति न हन्यते" आत्मा न तो मरता है और न मारा जाता है।

इसलिए आत्मोत्थान के लिए गायत्री की साधना की जाती है, जिससे पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है।

5. सवितुः गायत्री का सविता पद यह कहता है कि मनुष्य को सूर्य के जैसे तेज, बल और ओज को अपने अन्दर धारण करना चाहिए।

सभी विषय, अनुभूतियाँ और अभिव्यक्तियाँ अपने अन्दर हैं। ऐसा मानना चाहिए कि प्रकृति का निर्माण पुरुष करता है।

सवितुस्तु पदं वितनोति ध्रुवं,
मनुजो बलवान् सवितेव भवेत्।
विषया अनुभूतिपरिस्थितय-
स्तु सदात्मन एव गणेदिति सः।।

(गा. म. वि.)

ईश्वर अपने आप में पूर्ण तथा निष्पक्ष हैं। वे हर प्राणी को समान अवसर प्रदान करते हैं। जिसका जैसा पुरुषार्थ है, वैसा ही पाप-पुण्य वह अर्जित करता है। जो विचारवान् और उदार हैं, उनका हमेशा भाग्य साथ देता है। जो बुरे हैं उनके लिये स्वर्ग भी कष्टकारक लगेगा। धन-धान्य से सम्पन्न व्यक्ति भी ईर्ष्या की ज्वाला में दग्ध होते रहते हैं। गरीब अपनी कुटिया में भी सुखी जीवन व्यतीत करते हैं।

कायिक बल, बुद्धि बल, ज्ञान बल, धन बल, संगठन बल, चरित्र बल, आत्मबल, जीवन को सुस्थिर और सम्पन्न बनाने के लिये आवश्यक है। सूर्य के रथ में सात घोड़े जुते हुए हैं। सूर्य के किरण में सात रंग है। इसलिए सविता यह कहता है कि सातों बल को अपने में जागृत करो ताकि सूर्य के समान तेजस्वी बनकर जीवन रथ को सुसंचालित कर सको।

(1) स्वस्थ शरीर (2) अनुभव, विवेक, दूरदर्शिता पूर्ण व्यवहार बुद्धि (3) विशाल अध्ययन, श्रवण, मनन और सत्संग द्वारा सुविकसित किया हुआ मस्तिष्क (4) जीवनोपयोगी साधन सामग्रियों का समुचित मात्रा में संचय (5) सच्चे मित्रों, बान्धवों एवं सहयोगियों की अधिकता (6) ईमानदारी मधुरता, परिश्रमशीलता, आत्म सम्मान की रक्षा, सद्व्यवहार, उदारता जैसे गुणों से परिपूर्ण उत्तम चरित्र (7) ईश्वर

और धर्म में सुदृढ़ आस्था, आत्मज्ञान, कर्मयोगी दृष्टिकोण, निर्भय मनोभूमि, सतोगुणी. विचार-व्यवहार, परमार्थ परायणता यह सात प्रकार के बल प्रत्येक मनुष्य के लिये अतीव आवश्यक हैं।

इन सातों प्रकार के बल को सन्तुलित मात्रा में संचय करना चाहिए। अतः सवितुः पद यह उपदेश देता है कि सूर्य के समान तेजवान बनो, सप्तबलों को अपने जीवन रथ में जोतो। सौरमण्डल का केन्द्र सूर्य है उसी प्रकार मनुष्य अपने को केन्द्र में स्थित कर स्वयं के साथ ही दूसरों को भी गतिमान रखें। अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति स्थायी रूप से उसे एक निश्चित सीमा तक ही प्रभावित करेगी। वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माण कर सकेगा। अपनी क्षमता के अनुसार इच्छित फल को प्राप्त करेगा।

शरीर बल, बुद्धि बल, विद्याबल, संगठन बल, चरित्र बल और आत्म बल - ये सात बल जीवन को प्रकाशित, प्रतिष्ठित, सम्पन्न और सुस्थिर बनाने के लिये आवश्यक हैं। सविता-सूर्य का रथ सात घोड़ों के द्वारा संचालित होता है। जीवन को गतिमान रखने के लिये सातो बलों का संचय कर उसके द्वारा जीवन को संचालित करना पड़ेगा। सातों बलों का सन्तुलित विकास होना ही जीवन को सुखी और शान्तमय बना सकता है। अपनी क्षमता के आधार पर अपनी इच्छा और आवश्यकता को पूरा करने में मनुष्य पूर्ण समर्थ है। अहिंसा, प्रियवचन, सत्यवचन, पवित्रता, क्षमा तथा दया आदि पवित्र भाव को धारण कर मनुष्य दुःख के बन्धन से मुक्त होकर सुख शान्ति को प्राप्त कर सकता है। इस निमित्त गायत्री के सविता का ध्यान और नियमित आराधना करना आवश्यक है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने सविता की आराधना कर सूर्य को प्रसन्न किया था। उनका वरदान प्राप्त कर शुक्ल यजुर्वेद का उन्होंने प्रणयन किया। आज के युग में भी सूर्य साक्षात् देव हैं, जिन्हें प्रसन्न कर मनुष्य इस युग में मनोवांछित फल प्राप्त कर सकता है। गायत्री माता संकेत से सविता को दिखाती हैं

Rashtriya Sanskrit Sansthan
(Deemed University)
Rajiv Gandhi Campus, Sringeri
LIBRARY

और समझाती हैं कि सविता बनो। सविता के सदृश गतिशील बनो और सविता का अनुसरण करो।

6. वरेण्यं- वरेण्यं शब्द प्रकट करता है कि मनुष्य श्रेष्ठता को ग्रहण करें।

वरेण्यंचैतद्वै प्रकटयति श्रेष्ठत्वमनिशम्,
सदा पश्येच्छ्रेष्ठं मननमपि श्रेष्ठस्य विदधेत्।।
तथालोके श्रेष्ठं सरलमनसा कर्म च भजेत्,
तदित्थं श्रेष्ठत्वं व्रजति मनुजः शोभितगुणैः।।

(गा. सा. गु. वि 2.16)

श्रेष्ठ चिन्तन, श्रेष्ठ विचार और उचित कार्य करने पर मनुष्य श्रेष्ठता को प्राप्त करता है। इस संसार में भले और बुरे दोनों ही तत्त्व हैं। पाप-पुण्य, सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, प्रकाश-अन्धकार, उत्थान-पतन, आदि-अन्त, सन्मार्ग-कुमार्ग ये विपरीतार्थक स्थितियाँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं।

इसमें सुख पक्ष को अपने में आत्मसात् करना चाहिए। गौरव, सदाचार, सत्कार्य, आत्मोत्थान परमार्थ का श्रेष्ठ मार्ग है तो दूसरी तरफदुराचार, दुष्कर्म, अधोपतन, स्वार्थ का निकृष्ट मार्ग भी मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करता है। वरेण्यं शब्द इस बात पर जोर देता है कि श्रेष्ठ मार्ग ही कल्याणप्रद है। श्रेष्ठ मार्ग पर अग्रसर होना कठिन तो अवश्य है लेकिन अन्त में इससे मनुष्य का भला ही होता है। ऐसे मनुष्य भी हैं जिनकी विचारधारा अनिष्ट की दिशा में प्रवाहमान रहती है। दूसरों की हानि में ही अपना लाभ देखते हैं। निन्दा करते भी हैं और सुनकर प्रसन्न भी होते हैं। बैठे-बैठे दूसरे का मार्ग अवरुद्ध करते हैं। अनिष्ट चिन्तन करने वाले का दृष्टिकोण भी अनिष्टकारी हो जाता है और वह सबको अपने समान ही देखने लगता है। अशुभ चिन्तन से मानसिक कष्ट होता है, इसलिए वरेण्यं शब्द का सन्देश है

कि अशुभ चिन्तन को त्यागकर शुभ चिन्तन अपनाया जाय और शुभ दृष्टि से दुनिया को देखना चाहिए।

"संगति से गुण होत है, संगति से गुण जात" के आधार पर संगति से सत्संग भी होता है और कुसंग भी होता है। मनुष्य पर निर्भर है कि वह किससे संगति करता है। हंस जिस तरह पानी और दूध के मिश्रण में से पानी छोड़कर दूध पी लेता है, मनुष्य को वही पद्धति अपनानी चाहिए। यह भाव अपने में संचित करें कि वरेण्यं से ही सुख-शान्ति मिल सकती है हिरेण्यं से नहीं। हमारी विचारधाराएँ, चेष्टाएँ, अभिलाषाएँ, क्रियाएँ और अनुभूतियाँ शुभ होनी चाहिए, अशुभ का त्याग करें और शुभ को ग्रहण करें। वरेण्यं की इसी शिक्षा को यदि हृदयंगम कर लिया जाय तो मनुष्य कभी दुःखी नहीं होगा। सद्गुण, सद्विचार, सद्भाव से सम्पन्न व्यक्ति ही सम्पत्तिशाली है।

आत्मिक चिन्तन से अन्तःभूमि को उच्च बनाया जा सकता है। जो उच्च मनोभूमि में स्थित हो जाता है वह भौतिक वस्तुओं के बजाय श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करता है और दैवी शक्ति प्राप्त करता है।

7. भर्गो

भर्गो व्याहरते पदं हि नितरां लोकः सुलोको भवेत्
पापे पाप विनाशने त्ववितरतं, दत्तावधानो वसेत्।
दृष्ट्वा दृष्कृतिदुर्विपाक-निचयं तेभ्यो जुगुप्सेद्धि च,
तन्नाशाय विधीयतां च सततं, संघर्षमेभिः सह।।

(गा. म. वि. श्लोक 8)

सद्विचार से यह भाव उत्पन्न होता है कि पाप मनुष्य को पतन के गर्त में ढकेल देता है। "भर्गोवेत्ति मह" यह पद परामर्श देता है कि मनुष्य को निष्पाप होना चाहिए। पाप कभी शुभ परिणाम नहीं दे सकता है। पापी की दयनीय स्थिति देखकर पाप से घृणा करें। वे सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएँ पाप की श्रेणी में आती हैं, जिनसे मनुष्य का व्यक्तिगत या सामूहिक जीवन दुःखी हो जाता है।

ऐसे काम जिससे शरीर का क्षय होता है, को शारीरिक पाप कहा जाता है। अनियमित दिनचर्या, अस्वास्थ्यकर जीवन पद्धति मनुष्य के शरीर को दुर्बल बना देता है। यह शारीरिक पाप है।

ईर्ष्या, द्वेष, कुढ़न, सन्ताप, तृष्णा, चिन्ता, क्रोध, शोक, निराशा, उद्वेग, चंचलमन, कायरता आदि मानसिक पाप कहे जाते हैं। छल, विश्वासघात, स्वार्थपरता, द्वेष, असत्य, शोषण, देशद्रोह आदि सामाजिक पाप हैं।

अनुदारता, निराशा, चरित्रहनन, आत्महीनता आदि आत्मिक पाप हैं। इन पापों का अवलम्बन करने से मनुष्य की अपनी शक्ति दिनानुदिन क्षीण होती है। दुःखों से मनुष्य भयभीत रहता है लेकिन वह पाप से बचने की कोशिश नहीं करता है। बुरे कर्म का बुरा फल होगा ही। कहा जाता है कि जो बोवोगे, वही काटोगे।।

अविद्या, अज्ञान, भ्रान्ति, माया आदि के कारण मनुष्य पाप के गड्ढे में गिरता है। लोभ पाप का मूल है। लोभ, मोह और माया आदि में फँसकर मनुष्य अपार कष्ट में पड़ जाता है।

पाप का अवलम्बन करने से मनुष्य की शक्ति क्षीण हो जाती है। पापी का मन हमेशा अशान्त बना रहता है। वह घृणा का पात्र बन जाता है। कोई उससे न तो सहयोग लेता है और न सहयोग देता है। ईश्वरीय नियमों के अधीन वह आकस्मिक विपत्तियों का भी शिकार बनता है। एक बार पाप कर्म में प्रवृत्त होने के बाद वह बार-बार पाप करता है। इन्द्रियजन भोगेच्छा की पूर्ति के लिये वह मनुष्य पाप कर्म में प्रवृत्त होता है। आसक्ति, लोभ, लालच के कारण मनुष्य जब एक बार पाप के जाल मे फँस जाता है तो वह आसानी से बाहर नहीं निकलता है। पाप से मुक्ति तब तक सम्भव नहीं है, जब तक वह अपनी आत्मा की आवाज को नहीं सुन लेगा।

पाप है तो पुण्य भी है। यह मनुष्य पर निर्भर करता है कि भोगेच्छा की पूर्ति के लिये पाप कर्म करे या सद्विचार और सद्विवेक का

आश्रय लेकर सन्मार्ग पर चले। प्रत्येक मनुष्य को आत्मा सन्मार्ग पर चलने की ही सलाह देती है। लेकिन जिनका मन वश में नहीं रहता है, वह भोग की ओर भागता है और जो भोग की ओर भागता है वह कुमार्गी बनता है। एक बार भी यदि आत्मा की सलाह को दरकिनार कर मनुष्य पाप कर्म की ओर प्रवृत्त होता है तो इसका फल होता है पाप कर्म की पुनरावृत्ति। भर्ग मनुष्य को सचेत करता है कि यदि पाप से बचना है तो पाप रूपी सर्प से बचना चाहिए। कुछ लोग ऐसी भ्रान्ति के शिकार हो जाते हैं कि पुण्य का आचरण बड़ा कठिन है, लेकिन यह मान्यता ठीक नहीं है। सत्य सदा सरल और असत्य हमेशा जटिल होता है। एक झूठ को सही साबित करने के लिये सौ झूठ बोलना पड़ता है। इसमें थोड़ी सी भी चूक हो जाने पर भेद खुल सकता है और अन्ततः दण्ड भी भोगना पड़ सकता है। सच और सदाचार का आचरण मनुष्य को सही दिशा में प्रवृत्त करता है। आत्मचिन्तन से मनुष्य पाप प्रवृत्ति से छुटकारा पा सकता है। आत्मनिरीक्षण से आत्मज्योति का प्रादुर्भाव होता है, जिसके प्रकाश में मनुष्य यह निर्णय कर सकता है कि वह सही रास्ते पर है या गलत रास्ते पर और इसका ज्ञान हो जाने पर वह अपना रास्ता बदल देगा तथा सही मार्ग पर चलेगा। गायत्री की साधना से सद्विचार का उदय होता है, जो मनुष्य को मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर कर देता है।

8. देवस्य

देवस्येति तु व्याकरोत्यमरतां मर्त्योऽपि संप्राप्यते,
देवानामिव शुद्धदृष्टिकरणात् सेवोपचाराद् भुवि।
निःस्वार्थं परमार्थं-कर्मकरणात् दीनाय दानात्तथा,
बाह्याभ्यन्तरमस्य देवभुवनं संसृज्यते चैव हि।।

देवस्य पद का तात्पर्य है कि मरणशील प्राणी भी अमरत्व प्राप्त कर सकता है। देवताओं के समान शुद्ध दृष्टि, प्राणियों की सेवा, परमार्थ एवं सुकर्म करने से मनुष्य के भीतर और बाहर देवलोक की

सृष्टि होती है और वह देवतुल्य हो जाता है। सुर और असुर में अन्तर यह है कि सुर में देने की प्रवृत्ति अधिक रहती है इसके विपरीत असुर की प्रवृति अपना ही स्वार्थ साधन रहता है। अब मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह सुर बनना चाहता है या असुर। मनुष्य को सद्ज्ञान से यह ज्ञान हो जाता है कि आत्मा अविनाशी है, वह मरता नहीं है। केवल एक जीव देह को छोड़कर दूसरे जीव देह में समा जाता है, ऐसे ज्ञानी पुरुष को मृत्यु का भय नहीं सताता है, जिन मनुष्यों ने देव मनोवृत्ति को अपने में धारण कर लिया है, ऐसे महापुरुषों का यश "शरीर यावत् चन्द्र दिवाकरौ" अर्थात् अनन्त काल तक नहीं मरता। दधीचि, हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद आदि का यश शरीर अमर है। जिस मनुष्य की दृष्टि शुद्ध रहती है, वह प्रत्येक काम को आत्मदृष्टि के तराजू पर तौलता है। जिस व्यक्ति की दृष्टि अशुद्ध रहती है, वह भोग वस्तु के उपार्जन में लगा रहता है, भले ही इससे उसका या समाज का अहित हो। देवता का यही सन्देश है कि शुद्ध विचारधारा को अपनाये। यह शरीर क्षणभंगुर है और शरीर की इन्द्रियों को तृप्त करने में जो लगा रहता है, वह अज्ञानी है। ऐसे अज्ञानी व्यक्ति तृष्णा, लोभ, अहंकार, मोह आदि के जंजालों में फंसकर अपने जीवन को बर्बाद कर देते हैं।

9. धीमहि—मनुष्य सब प्रकार की पवित्र शक्तियों को धारण करें, इससे ही सुख-शान्ति की प्राप्ति होगी यही गायत्री की कामना है-

धीमहि सर्वविधं शुचिमेव,
शक्तिचयं वयमित्युपदिष्टाः।
नो मनुजोलभते सुखशान्ति-
मनेन विनेति वदन्ति हि वेदाः।।

(गायत्री सा. गु. वि. 2.23)

शिक्षा, स्वास्थ्य, धन, संगठन, शिल्प और पुरुषार्थ शक्तियों का भण्डार है, इसका लाभ वही उठा सकता है जो शक्तिमान् है। शक्ति

की कमी जीवन को कष्टसाध्य बना देती है। इस शरीर में भौतिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति सांसारिक सुख का उपभोग करता है। आत्मिक सुख के लिये आत्मिक शक्तियों को विकसित करना पड़ता है। सद्गुण, सात्विक दृष्टिकोण, सत्स्वभाव, संयम, उदार एवं नम्र व्यवहार आत्मिक शक्तियों को जागृत करने पर प्राप्त होता है, जिसके लिये गायत्री साधना आवश्यक है। जागृत शक्तिवाले व्यक्ति के लिये सुख शान्ति सुलभ है। गीता में 24 दैवी सम्पदाएं हैं जो आत्मिक गुण हैं और उन्नत आत्मिक शक्तियों द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। निर्भयता, अंतःकरण की स्वच्छता, ज्ञान में निष्ठा, उदारता, इन्द्रिय निग्रह, परमार्थ, आत्म चिन्तन और सत्प्रयोजन के लिये कष्ट सहना, सत्य, अहिंसा सादगी और अक्रोध, अभिमान का त्याग, अनुद्वेग, निन्दा, चुगली आदि से दूर रहना दया, निर्लोभता, स्वहृदयता, दुष्कर्मों के करने में लज्जा, सम्यक् विचार, तेज, क्षमा, धैर्य, स्वच्छता, मित्रता, अपने को दूसरे से श्रेष्ठ न समझना जैसी आत्मोन्नति कर लेता है, ऐसे मनुष्य का विकास निश्चित है। धीमहि शब्द का यह सन्देश है कि मनुष्य अपने अन्दर सदगुणों को धारण करे। अपने को नम्र, मधुर, शिष्ट, निर्भीक, दयालु, पुरुषार्थी तथा श्रमशील बनाये। ऐसी विशेषताओं को प्राप्त कर स्वास्थ्य, प्रतिष्ठा, धन, वैभव की प्राप्ति हो सकती है।

10. धियो

धियो मत्योन्मथ्यागमनिगममन्त्रान्, सुमतिमान्,
विजानीयात्तत्त्वं विमलनवनीतं परमिव।
यतोऽस्मिन् लोके वै संशयगत-विचार-स्थलशते,
मतिः शुद्धैवाञ्छा प्रकटयति सत्यं सुमनसे।।

(गा. म. वि.)

'धियो' शब्द का आशय है कि मनुष्य विवेकवान बने। विवेक को अपने में धारण करे। विवेक की कसौटी पर कसकर अपने विचार और धर्मों का निर्धारण करें। यही जीवन में शान्ति और सुख देगा।

कई बार ऐसे अवसर सामने आते हैं कि परस्पर विरोधी विचारधाराओं के सामने आ जाने पर बुद्धि भ्रमित हो जाती है, और मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। विवेक में नीर-क्षीर की पहचान करने की क्षमता है। शास्त्र साधना से भले ही अविद्या और अज्ञान का नाश न हो परन्तु गायत्री साधना का प्रकाश अविद्या और अज्ञान के अन्धकार को नष्ट कर देता है तथा ज्ञान और विवेक शक्ति मनुष्य में जागृत करता है। 'धियो' की साधना से विवेक शक्ति पुष्ट हो जाती है और वह विवेक सम्मत निर्णय लेने में सक्षम हो जाता है। सफलता के लिये समय और परिस्थिति का ज्ञान आवश्यक है। विवेक सही मार्गदर्शन करता है और आत्मोत्थान की ओर मनुष्य को प्रवृत्त कराता है। सत्य के मार्ग पर चलकर सत्य की प्राप्ति होती है और सत्य ही ईश्वर है। गायत्री के धियो शब्द का संकेत है कि मनुष्य विवेकवान् बने। विवेक मनुष्य का सच्चा मित्र है, विवेक भूल को सुधारता है और सफलता के मार्ग पर अग्रसर कराता है। भले और बुरे, हानि और लाभ, मित्र और शत्रु, सत्य और असत्य की पहचान केवल विवेक ही करा सकता है। आकर्षणों, प्रलोभनों, तृष्णाओं, विकारों, भ्रान्तियों तथा खतरों से सावधान करके हमें पतन के गहरे गड्ढे में गिरने से बचाने की शक्ति केवल विवेक में ही है। अतः विवेक हमेशा कल्याणप्रद ही रहता है। धियो की साधना से ज्ञान और विवेक विकसित होकर मनुष्य को देवत्व प्रदान कर सकता है।

11. योनः

योनो वास्ति तु शक्तिसाधनचयो न्यूनाधिकश्चाथवा,
भागं न्यूनतमं हि तस्य विदधेमात्प्रसादाय च।
यत्पश्चादवशिष्टभागमखिलं त्यक्त्वा फलाशां हृदि,
तद्दीनेष्वभिलाषवत्सु वितरेद् ये शक्तिहीनाः स्वयम्।।

(गा. म. वि.)

हमारी जो भी शक्तियाँ एवं साधन हैं वे स्थूल हों या अधिक हों उनके न्यून से न्यून भाग को अपनी आवश्यकता के लिये प्रयोग में लावें और अशक्त व्यक्तियों में बाँट दें। इस सन्दर्भ में यह उक्ति सटीक है कि ''साई इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय, मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय''।

गायत्री आत्मसंयम और परमार्थ के मार्ग पर चलने का निर्देश देती हैं। मनुष्य अधिक से अधिक धन जोड़ने और अधिक से अधिक भोगने में अपना बहुमूल्य समय व्यतीत करता है, जो अनुचित है। गायत्री का योनः शब्द कहता है कि यह सही मार्ग नहीं है और इस पर चलना बुद्धिमानी नहीं है। योनः शब्द फिर कहता है कि मनुष्य जोड़ने और भोगने की मृगतृष्णा में न भटके, अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखे, उन्हें पूरा करने के पश्चात् शेष का अधिक से अधिक भाग कमजोर वर्ग के उत्थान में खर्च कर यश का भागी बने।

जो शक्ति परमेश्वर से मिलती है वह उनकी ही अमानत है। ईश्वर से प्राप्त शक्ति को व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अमानत में ख्यानत करने वाला निन्दा और घृणा का पात्र होता है और दण्ड का भी भागी होता है। अपनी शक्तियों को अपने लिए और लोक हित के लिए भी लगाना चाहिए। योनः हर व्यक्ति को आगाह करता है कि आत्म कल्याण के मार्ग पर चलकर दूसरे का भी कल्याण करें। प्राप्त शक्तियों को अपने लिये मितव्ययिता के साथ खर्च करके दूसरों के लिये बचाना चाहिए।

आत्मसंयम और परमार्थ दैवी मार्ग है, जिसपर चलकर मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

12. प्रचोदयात्—जीवन में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में सफलता के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा की आवश्यकता होती है। परमेश्वर ने मानव को अनेक दिव्य शक्तियों से सुसम्पन्न किया है। उनको विकसित कर मनुष्य अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकता है। जिस

मनुष्य में प्रेरणाशक्ति जितनी अधिक होगी वह उतनी ही तेजी से अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। प्रेरणा से तात्पर्य है लगन, धुन, उत्साह, स्फूर्ति आदि। यह प्रेरणाशक्ति ही वह बल है, जिसका जितना अंश जिस मनुष्य में होगा उतनी ही तेजी से वह आगे बढ़ेगा।

प्रबल और अदम्य उत्साह से ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। प्रेरणाशक्ति का अभाव मनुष्य को आलसी और भाग्यवादी बना देता है।

शास्त्र में कहा गया है कि मनस्वी पुरुष के लिये संसार में कोई भी कमी नहीं है। जब बिखरी हुई शक्तियाँ एकीकृत हो जाती हैं और सुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं तब वह दृढ़ता पूर्वक आगे बढ़ती है तथा पर्वत के समान कठिन कार्यों को धूल के समान तुच्छ बना देती हैं। त्रुटियों के निवारण के लिये आत्मचिन्तन आवश्यक है। प्रचोदयात् शब्द मनुष्य को यह बताता है कि प्राणधारियों में प्राण की, प्रेरणा की तथा जीवन की अधिक मात्रा होनी चाहिए।

संक्षेप में गायत्री के शब्दों का अर्थ शास्त्र में इस प्रकार किया गया है–

ऊँ	ब्रह्म	भर्गो	पापनाशक
भूः	प्राण स्वरूप	देवस्य	दिव्य को देनेवाले को
भुवः	दुःखनाशक	धीमहि	धारण करे
स्वः	सुखस्वरूप	धी	बुद्धि
तत्	उस	यः	जो
सवितुः	तेजस्वी	नः	हमारी
वरेण्यं	श्रेष्ठ	प्रचोदयात्	प्रेरित करें

गायत्री शक्ति

जो उत्पत्ति-स्वरूपा बनकर सृष्टि सदा सर्जन करतीं।
सजकर पालन शक्ति रूप से रक्षा जन-जन की करतीं।।
भू-प्रपंच को तोड़ सहज में रौद्री हो करतीं, संहार।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश निरन्तर करते हैं, जिनकी जयकार।
परा-बैखरी-पश्यन्ती-मध्यमा वाक्, जिनका मण्डन।
उस गायत्री-जननी को मेरा है सविनय शत-वन्दन।।

अध्याय
११

गायत्री एवं यज्ञोपवीत संस्कार

गायत्री एवं यज्ञोपवीत संस्कार

गायत्री एवं यज्ञोपवीत संस्कार का अन्योनाश्रित सम्बन्ध है। जैसे लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर, प्रकृति-पुरुष, सीता-राम एवं राधे-श्याम का शब्दयुग्म है, वैसे ही गायत्री-यज्ञोपवीत है।

गायत्री का मूर्तिमान स्वरूप यज्ञोपवीत है। बाल्यावस्था में बालक अबोध रहता है। बाल्यावस्था के बाद उसके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। किशोरावस्था में प्रवेश करने पर उसे संस्कार देकर सुसंस्कृत जीवन शुभारम्भ कराया जाता है। ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया जाता है। जीवन के इस संस्कार को 'उपनयन' की संज्ञा दी गई है।

बालक किशोर हो जाता है, उपनयन संस्कार में किशोर को आचार्य गुरुमंत्र देते हैं, वह गुरुमंत्र है- महामंत्र गायत्री।

यज्ञोपवीत संस्कार-दूसरा जन्म

भगवान् मनु कहते हैं कि मनुष्य का प्रथम जन्म माँ के उदर से होता है, दूसरा जन्म यज्ञोपवीत संस्कार एवं दीक्षा ग्रहण करने से होता है। गायत्री मंत्र ग्रहण करने पर जो जन्म उसे प्राप्त होता है वही जन्म अमर है।

यज्ञोपवीत संस्कार से प्राप्त जन्म के बाद गायत्री महामंत्र का प्रतीक चिह्न है यज्ञोपवीत। इसे ब्रह्मसूत्र भी कहा जाता है।

यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् उपनीत किशोर की माता गायत्री और आचार्य उसका पिता स्वरूप हो जाता है। यज्ञोपवीत में अक्षर नहीं हैं, किन्तु उसमें गम्भीर अर्थ छिपे हुए हैं। गायत्री एवं यज्ञोपवीत

का समुचित संस्कार प्राप्त कर मनुष्य द्विजत्त्व को प्राप्त करता है। वह द्विज हो जाता है तथा द्विज जीवन में प्रवेश कर द्विज के कर्त्तव्यों का निर्वहन करता है।

यज्ञोपवीत के सूत्र

यज्ञोपवीत पावन सूत्र है, गायत्री उसकी शाब्दिक व्याख्या है। यज्ञोपवीत में तीन सूत्र होते हैं, गायत्री में तीन चरण हैं।

प्रथम चरण	– तत्सवितुर्वरेण्यं
द्वितीय चरण	– भर्गो देवस्य धीमहि
तृतीय चरण	– धियो यो नः प्रचोदयात्

यज्ञोपवीत की तीन ग्रंथियाँ-चार गाँठें

यज्ञोपवीत में तीन ग्रंथियाँ हैं और एक ब्रह्म ग्रन्थि है। गायत्री में तीन व्याहृतियाँ हैं- भूः, भुवः, स्वः। एक प्रणव है-ऊँ।

इस प्रकार उपवीत में चार गाँठें हैं गायत्री में भी चार भाग हैं। गायत्री के सन्देशों की व्याख्या इस प्रकार की जाती है।

ओंकार का संदेश-भूः भुवः स्वः का तात्पर्य

1. प्रणव ॐ का सन्देश है कि परमपिता परमेश्वर सर्वत्र एवं सभी प्राणियों में व्याप्त हैं। इसलिये जनकल्याण को ध्यान में रखकर निष्काम कर्म करना चाहिये। मन को नियंत्रित और शान्त रखना चाहिए।
2. भूः-यह तत्त्व ज्ञान देता है कि नश्वर शरीर कर्म के निमित्त साधना मात्र है, इसलिए शरीर के प्रति पूर्णतः आसक्त न होकर आत्मबल वृद्धि हेतु श्रेष्ठ मार्ग पर चलना चाहिये। सद्आचरण को अपना लेना चाहिए।
3. भुवः-का तात्पर्य है कि वही मनुष्य देवत्त्व प्राप्त करता है, जो पापों से अपने को अलग रखता है। बुद्धिमान् पुरुष पवित्र आदर्शों और साधनों को जीवन का ध्येय बना लेता है।

4. स्वः-की प्रतिध्वनि है कि विवेक द्वारा शुद्ध बुद्धि से सत्य, संयम एवं त्याग की नीति का आचरण करने के लिये अपने को तथा दूसरों को प्रेरित करें।

व्याहृतियों की आध्यात्मिक व्याख्या ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में की है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस श्लोक में व्याहृतियों का अर्थ स्पष्ट किया है-

प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सत्वं रजस्तमस्तिस्त्रः क्रमाद्व्याहृतयः स्मृता।। (गा. अ. सं.)

सांख्यशास्त्र के मतानुसार भूः का अर्थ प्रधान है और भुवः का अर्थ पुरुष है। स्वः का अर्थ काल है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने दूसरा अर्थ भी दिया है-

भूः का अर्थ ब्रह्मा, भुवः का अर्थ विष्णु और स्वः का अर्थ महेश है। अतः तीनों व्याहृतियों का जप करने से ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों का जप करने का फल एक ही साथ प्राप्त हो जाता है। महर्षि ने तीसरे प्रकार से भी अर्थ निरूपण किया है। भूः का अर्थ सत्त्व गुण, भुवः का अर्थ रजोगुण और स्वः का अर्थ तमोगुण है।

व्याहृतियाँ मोक्ष प्रदायिका

सांख्यशास्त्र के जनक कपिलमुनि का मत है कि सृष्टि में परमसत्तायें दो हैं। पुरुष एवं प्रकृति। प्रकृति भोग के साधन की पूर्ति के साथ ही मोक्ष का भी प्रबन्ध करती है। प्रकृति त्रिगुणशीला है। यह सत्, रज और तम तीनों गुणों से युक्त है, इसलिए भूर्भुवः स्वः तीनों व्याहृतियों की साधना से प्रकृति की उपासना हो जाती है, जो भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करने वाली है।

याज्ञवल्क्य मुनि ने भूः, भुवः, स्वः का अर्थ व्यक्त किया है कि

भवन्ति चास्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च।
तस्माद्भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता।।

इस संसार में चर, स्थावर बहुत से प्राणी उत्पन्न होते हैं। उनके व्यवहार के लिये सर्वप्रथम सर्वोपयोगी (भूः) पृथ्वी है, ऐसा जानना चाहिए।

भवन्ति भूयो भूतानि उपभोगक्षये पुनः।
कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात् प्रकीर्तिता।।

भूमण्डल के समस्त प्राणी अपने पुण्य के अनुसार फल प्राप्त करके पुण्य के क्षीण होने पर एवम् जीवन के समाप्त होने पर अपने कर्मानुसार फलभोगने के लिये जिस लोक में जाता है, उसे (भुवः) दिव्यलोक के रूप में जाना जाता है।

शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै सदा।
आलयः सुकृतिनांच स्वलोकः स उदाहृतः।।

अपने जीवन में सुकर्म करने वाले लोगों को ठंडक, गर्मी, वर्षा, प्रकाश आदि सभी अनुभूतियों का सुन्दर सुखद आनन्द जिस लोक में प्राप्त होता है उसे (स्वः) स्वर्गलोक कहा गया है।

"यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि, जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसं विशन्ति तद्विजिज्ञासस्व ब्रह्मेति" भूत्वा तस्यैव सर्वभूताधारत्व सिद्धेब्रह्मण एवभूताधारादि-भूम्यादिरूपत्वम्"।

(उपनिषद्)

इस संसार में जो प्राणी उत्पन्न होते हैं और जितने समय तक जीवनयापन करते हैं, उसे (तत्) ब्रह्मस्वरूप ईश्वर की कृपा समझना चाहिये। जीवनयापन करते हुए सभी प्राणियों के आधारभूत ब्रह्म की सिद्धि करने वाले ब्राह्मण ही प्राणियों के आधार भूत (भूः, भुवः, स्वः, तत्) ब्रह्म स्वरूप हैं।

गायत्री का आदि अक्षर ॐ है। ॐ से ही यह मंत्र शुरू होता है। ऊँकार शब्द प्रणव है। सर्वान्तर्यामी परमब्रह्म का नाम प्रणव है। परमब्रह्म सर्वव्यापी हैं, वे अखिल विश्व के कण-कण में व्याप्त हैं।

ओंकार ब्रह्म

जो मनुष्य को संसाररूपी सागर पार करा देता है उसे ओ३म् कहते हैं। शास्त्र वचन है- ''अवाति संसार सागराददिति ओ३म्''

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।

सृष्टि के पूर्व ही ओंकार का आविर्भाव हो चुका था, इसकी रचना किसी रचनाकार के द्वारा नहीं की गई है। यह ओ३म् स्वतः परमेश्वर की इच्छा शक्ति से स्फुरित हुआ था।

ओंकार मंगलकारक-परमगति प्रदायक

ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन मांगलिकावुभौ।। (गा.अ.सं.)

ओ३म् तथा अथ ये दोनों शब्द सृष्टि से पूर्व ब्रह्मा के कंठ से निष्क्रमित हुए, इसलिए ओ३म् और अथ मांगलिक शब्द हैं। ओंकार के महात्म्य का गुणगान श्रुति, स्मृति, पुराण एवं सभी शास्त्रों में किया गया है। इसलिए इन्हें मांगलिक कहा गया है- ''ओंकार सर्ववेदानां सर्वम् श्रुति''।

ओंकार चारों वेदों का सार है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि सभी वेदों में मैं प्रणव हूँ, श्रुति में भी कहा गया है कि जो दृष्टिगत है वह ब्रह्ममय है। सब ओंकार ही है। दैवी शक्तियाँ ओंकार में सन्निहित हैं।

शास्त्र वचन है - *''ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म तथा गिरामस्म्येकमक्षरम्''*

महर्षि याज्ञवल्क्य का वचन है-

अदृष्टविग्रहो देवो भावग्रह्यो मनोमयः।
तस्योंकारः स्मृतो नाम तेनाहूत प्रसीदति।।

योगिराज याज्ञवल्क्य ने ओ३म् की महिमा का पुनः बखान किया है-

मांगल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकाम प्रसाधनम्।
ऊँकार परम् ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः।।
प्रजापतेर्मुखोत्पन्नस्तपः सिद्धस्य वै पुरा।।

ओंकार स्वरूप ब्रह्म मंगल करनेवाले हैं- धर्म को बढ़ाने वाले हैं। परमपवित्र हैं। कामनाओं को पूरा करनेवाले हैं। सभी मंत्रों के नायक हैं। तपसिद्ध प्रजापति के मुख से सृष्टि के पूर्व ही उत्पन्न हुआ है।

त्रिमात्रार्द्ध परं ब्रह्म मात्राक्षर विवर्जितम्।
अचिन्त्यमव्ययं सूक्ष्मं निष्कलं परमं पदम्।

त्रिमात्रा तथा अर्द्धमात्रांत भी परमब्रह्म ही हैं। परम् पद भी है।

यथाऽमृतेन तृपतस्य पयसा किं प्रयोजनम्।
तथोंकारविधिज्ञस्य ज्ञानतृप्तिर्न विद्यते। (गा.अ.सं.)

जैसे अमृत से तृप्त पुरुष को दुग्ध से कोई प्रयोजन नहीं रहता है वैसे ही ॐ की विधि को जानने वाले पुरुष को अन्य स्रोत से प्राप्त ज्ञान से तृप्ति नहीं होती है। ॐ को विधि पूर्वक साधने वाले व्यक्ति ॐ के जप से ही तृप्त होकर और किसी मार्ग का अनुसरण नहीं करते हैं। सभी मंत्रों के प्रयोग के आदि में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है।

सर्वमन्त्रप्रयोगेषु ओमित्यादौ प्रयुज्यते।
तेन संपरिपूर्णानि यथोंक्तानि भवन्ति हि।।

सभी मंत्रों के प्रयोग में ''ऊँ'' प्रारम्भ में प्रयुक्त होता है। इसके यथोक्त उच्चारण से सभी मन्त्र परिपूर्ण हो जाते हैं।

मंत्र अशुद्ध है फिर भी यदि मंत्र के साथ ओ३म् जुड़ा हुआ है तो ओ३म् से युक्त अशुद्ध मंत्र भी शुद्ध मंत्र का फल देता है।

यन्यूनमतिरिक्तं च यत् छिद्रं यद् अयज्ञियम्।
यदमेध्यमशुद्धंच यातयामं च यद् भवेत्।
तत्तदोंकार युक्तेन मन्त्रेणाऽविकलं भवेत्।

जो मंत्र न्यून हो, अतिरिक्त, दोषयुक्त (सच्छिद्र) हो अयज्ञीय हो, अमेध्य हो, अशुद्ध हो, यातयाम(छन्दभग्न) हो वह भी ओंकारयुक्त मंत्र सभी दोषों से रहित हो जाता है।

महर्षि वेदव्यास ने भी ॐ की महिमा का गान मुक्त कंठ से किया है।

"ओंकारं स्वर्गद्वारं तस्मात् सर्वेषु एवं कर्मसु आदौ पंजीत।"

ॐ स्वर्ग का द्वार है। अतः सभी कर्मों में इसका प्रयोग सर्व प्रथम करना चाहिये।

छान्दोग्य परिशिष्ट का वचन है कि –

स्वरितोदात्त एकाक्षर ओंकार ऋग्वेदे,
त्रैस्वर्य्योदात्त ओंकारो यजुर्वेदे।
दीर्घोदात्त एकाक्षरः सामवेदे,
संक्षिप्तोदात्त एकाक्षर ओंकारः अथर्ववेदे।।

स्वरित उदात्त एकाक्षर रूप ओंकार ऋग्वेद में है और तीन स्वर उदात्त रूप ओंकार यजुर्वेद में है तथा दीर्घ उदात्त एकाक्षर रूप ओंकार सामवेद में है एवं संक्षिप्त उदात्त एकाक्षर रूप ओंकार अथर्ववेद में है।

ओ३म् साक्षात् परंब्रह्म है इसलिए ज्ञानगंगा गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

जो पुरुष एकाक्षर स्वरूप ओंकार रूप ब्रह्म को स्मरण करता हुआ देह त्याग करता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

अतः परम् गति प्राप्त करने का साधन ओंकार है। ओंकार का ध्यान नियमित रूप से करना चाहिए। यदि जीवन में यह सम्भव नहीं हो सका तो अन्तकाल में भी जो ओ३म् का उच्चारण करते हुए इस शरीर का त्याग करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है।

अध्याय १२

गायत्री कवच

गायत्री कवच

गायत्री कवच पापों का नाश करता है और सभी प्रकार के रोगों का शमन करता है। कवच सभी अंगों को सुरक्षा प्रदान करता है। ब्रह्माजी ने महर्षि विश्वामित्र को गायत्री कवच का ज्ञान दिया था।

विभिन्न अंगों के रक्षा मंत्र

सावित्री मे शिरः पातु शिखायाममृतेश्वरी।
ललाटं ब्रह्मदैवत्या भ्रुवौ मे पातु वैष्णवी।।

सावित्री मेरे सिर की रक्षा करें। अमृतेश्वरी शिखा की रक्षा करें, ललाट की ब्रह्मा एवं भृकुटियों की रक्षा विष्णु करें।

कर्णौ मे पातु रुद्राणी सूर्या सावित्रिकाऽम्बिके।
गायत्री वदनं पातु शारदा दशनच्छदौ।।

रुद्राणी कर्ण की रक्षा करें, सूर्य नेत्रों की रक्षा करें, गायत्री मुख और शारदा मेरे ओष्ठ की रक्षा करें।

द्विजान्यज्ञप्रिया पातु रसनां तु सरस्वती।
सांख्यायनी नासिकां मे कपोलौ चन्द्रहासिनी।।

यज्ञप्रिया दाँतो की, सरस्वती जिह्वा की, सांख्यायनी नासिका की और चन्द्रहासिनी मेरे कपोलों की रक्षा करें।

चिबुकं वेद गर्भा च कण्ठं पात्वघनाशिनी।
स्तनौ मे पातु इन्द्राणी हृदयं ब्रह्मवादिनी।।

वेदगर्भा चिबुक की, अघनाशिनी कंठ की, इन्द्राणी स्तनों की तथा ब्रह्मवादिनी हृदय की रक्षा करें।

उदरं विश्व भोक्त्री च नाभिं पातु सुरप्रिया।
जघनं नारसिंही च पृष्ठं ब्रह्माण्डधारिणी।।

पद्माक्षी पिछले भाग की, ब्रह्मशक्ति गुप्त इन्द्रियों की, ओंकाररूपा उर भाग की संध्यारूपी भगवती जानुभाग की रक्षा करें।

जंघयोः पातु अक्षोभ्या गुल्फयोर्ब्रह्मशीर्षका।
सूर्या पदद्वयं पातु चन्द्रा पादांगुलीषु च।।

अक्षोभ्या जंघाओं की, ब्रह्म शीर्ष की, गुल्फ स्थानों की, सूर्य देवता दोनों पैर की और चन्द्रमा पैर की अंगुलियों की रक्षा करें।

सर्वांग वेदजननी पातु मे सर्वदाऽनघा।।
इत्येतत्कवचं ब्रह्मन् गायत्र्याः सर्वपावनम्।
पुण्यं पवित्रं पापघ्नं सर्व-रोग-निवारणम्।

वेदजननी भगवती गायत्री मेरे सम्पूर्ण अंगो की रक्षा करें। ब्रह्माजी विश्वामित्र से कहते हैं कि गायत्री कवच सर्वपावन है तथा पुण्यप्रद है। पवित्र और पापनाशक है। सभी प्रकार के रोगों को हरने वाला है।

त्रिसन्ध्यं यः पठेत्विद्वान् सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स भवेद्वेदवित्तमः।।(गा.अ.सं.)

तीनों संध्या काल मे कवच पाठ करने वाले को सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है तथा सभी शास्त्रों के तत्त्वों के ज्ञाता होकर उत्तम वेद ज्ञाता बन जाते हैं।

अक्षर शक्ति कवच-ध्यान मंत्र

रक्षा करनेवाली वस्तु को कवच कहते हैं। आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न देवी कवच धारिणी हैं, जिससे हमारी रक्षा होती है। कवच अनिष्ट से रक्षा करता है। शान्तचित्त होकर कवच का पाठ करते समय यह ध्यान करें कि -"आध्यात्मिक कवच का भेदन करके कोई भी कार्य मुझे शारीरिक मानसिक अथवा किसी भी प्रकार की

क्षति नहीं पहुँचा सकते।''

तत्पदं पातु मे पादौ जंघे मे सवितुः पदम्।
वरेण्यं कटि देशन्तु नाभिं भर्गस्तथैव च।।

'तत्' मेरे पैरों की रक्षा करें। 'सवितः' पद मेरी जंघाओं की रक्षा करें। 'वरेण्यं' पद मेरे कमर की रक्षा करें तथा 'भर्ग' मेरी नाभि की रक्षा करें।

देवस्य मे तु हृदयं धीमहीति गलं तथा।
धियो मे पातु जिह्वायां यः पदं पातु लोचने।।

'देवस्य' हृदय की, 'धीमहि' गले की, धियो मेरी जीभ की और 'यः' पद मेरे दोनों चक्षुओं की रक्षा करें।

ललाटे नः पदं पातु मूर्द्धानं मे प्रचोदयात्।
तद्वर्णः पातु मूर्द्धानं संकारः पातु भालकम्।।

नः ललाट की और प्रचोदयात् सिर की रक्षा करें।

'तत्' वर्ण मूर्धा की और 'स' कार कपाल की रक्षा करें।

चक्षुषी मे विकारस्तु श्रोत्रे रक्षेत्तुकारकः।
नासापुटे वकारो मे रेकारस्तु मुखे तथा।।

'वि' मेरे नेत्रो की, 'तु' कार कर्णो की 'व' कार नासापुट की और 'रे' कार कपाल की रक्षा करें।

णिकारस्त्वधरोष्ठे च यकारस्तूर्ध्व ओष्ठके।
आस्य मध्ये भकारस्तु गोकारंस्तु कपोलयोः।।

'ण' कार नीचे के ओष्ठ की, 'य' कार उपरोष्ठ की, मुख के मध्य में 'भ' कार और 'गो' कार दोनों कपोलों की रक्षा करें।

देकारः कण्ठ देशे च वकारः स्कन्ध देशयोः।
स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वाम हस्तकम्।।

'दे' कार (हस्तकम) कंठ प्रदेश की, 'व' कार दोनों कंधों की, 'स्या' कार दायें हाथ की तथा 'धी' बायें हाथ की रक्षा करें।

मकारो हृदयं रक्षेद्धिकारो जठरं तथा।
धिकारो नाभिदेशंतु योकारस्तु कटिद्वयम्।।

'म' कार हृदय की रक्षा करें। 'हि' कार पेट की, धिकार नाभि की और 'यो' कार कटि द्वयं की रक्षा करें।

गुह्यं रक्षतु यो कार उरू मे नः पदाक्षरम्।
प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जंघ देशयोः।।

'यो' कार गुह्य प्रदेश की, दोनों उरुओं में 'न' पद रक्षा करें। 'प्र' कार दोनों घुटनों की रक्षा करें। 'चो' कार जंघा प्रदेश की रक्षा करें।

दकारो गुल्फदेशे तु याकारः पादयुग्मकम्।
तकार व्यंजनं चैव सर्वांग में सदाऽवतु।।

'द' कार गुल्फकी रक्षा करें। 'य' कार दोनों पैरों की रक्षा करें। 'त' कार व्यंजन मेरे समस्त अंगों की रक्षा करें।

न्यास शक्ति

साधना में चित्त स्थिर कर दाहिने हाथ का अंगूठा, मध्यमा तथा अनामिका को मिलाकर विविध अंगों का स्पर्श करते हुए उन अंगों में गायत्री शक्तियों की स्थापना की भावना करें। इसे न्यास की संज्ञा दी गई है।

विशेष उद्देश्य से साधना करने पर साधकों के लिए गायत्री कवच का ध्यान, गायत्री कवच के पाठ का प्रावधान शास्त्रों में किया गया है। ब्रह्मशाप विमोचन, वशिष्ठशाप विमोचन, विश्वामित्र शाप विमोचन के मंत्र भी शास्त्र में दिए गए हैं।

गायत्री कवच का ध्यान है –

ॐ अस्य श्रीगायत्रीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दो गायत्री देवता ॐ भूः बीजम् भुवः शक्तिः स्वः कीलकम् गायत्रीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन में ध्यान -

पंचवक्त्रां दशभुजां सूर्यकोटि समप्रभाम्।
सावित्रीं ब्रह्मवरदां चन्द्रकोटि सुशीतलाम्।।
त्रिनेत्रां सितवक्त्रां च मुक्ताहार विराजिताम्।
वराभयांकुशकशां हेम पात्राक्षमालिकाम्।।
शंखचक्राब्ज युगलं कराभ्यां दधतीं पराम्।
सितपंकजसंस्थां च हंसारूढां सुखस्मिताम्।।
ध्यात्वैवं मानसाम्भोजे गायत्री-कवचं पठेत्।

(गा. म. वि.)

गायत्री कवच का पाठ -

ॐ ब्रह्मोवाच

विश्वमित्र! महाप्राज्ञ! गायत्रीकवचं शृणु।
यस्य विज्ञानमात्रेण त्रैलोक्यं वशयेत् क्षणात्।।
सावित्री मे शिरः पातु शिखायाममृतेश्वरी।
ललाटं ब्रह्मदैवत्या भ्रुवौ मे पातु वैष्णवी।।
कर्णौ मे पातु रुद्राणी सूर्या सावित्रिकाऽम्बिके।
गायत्री वदनं पातु शारदा दशच्छदौ।।
द्विजान् यज्ञप्रिया पातु रसनायां सरस्वती।
सांख्यायनी नासिकां मे कपोलौ चन्द्रहासिनी।।
चिबुकं वेदगर्भा च कण्ठं पात्वघनाशिनी।
स्तनौ मे पातु इन्द्राणी हृदयं ब्रह्मवादिनी।।
उदरं विश्वभोक्त्री च नाभौ पातु सुरप्रिया।
जघनं नारसिंही च पृष्ठं ब्रह्माण्डधारिणी।।
पार्श्वौ मे पातु पद्माक्षी गुह्यं गोगोप्त्रिकाऽवतु।
ऊर्वोरोंकाररूपा च जान्वोः संध्यात्मिकाऽवतु।।

जङ्घ्यों पातु अक्षोभ्या गुल्फयोर्ब्रह्मशीर्षका।
सूर्या पादद्वयं पातु चन्द्र पादाङ्गुलीषु च।।
सर्वाङ्गम् वेदजननी पातु मे सर्वदाऽनघा।
इत्येतत् कवचं ब्रह्मन् गायत्र्याः सर्वपावनम्।
पुण्यं पवित्रं पापघ्नं सर्वरोगनिवारणम्।।
त्रिसन्ध्यं यः पठेद्विद्वान् सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स भवेद्वेदवित्तमः।।
सर्वयज्ञफलं प्राप्य ब्रह्मान्ते सर्वमाप्नुयात्।
प्राप्नोति जपमात्रेण पुरुषार्थांश्चतुर्विधान्।।

शाप विमोचनः-अन्य प्रकार से भी शाप विमोचन का शास्त्रों में प्रावधान किया गया है-

(1) ब्रह्म-शापविमोचन- विनियोग-ॐ अस्य श्रीब्रह्मशापविमोचनमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्भुक्तिमुक्तिप्रदा ब्रह्मशापविमोचनी गायत्री शक्तिर्देवता गायत्री छन्दः ब्रह्मशापविमोचने विनियोगः।

मन्त्र-

ॐ गायत्रीं ब्रह्मेत्युपासीत यद्रूपं ब्रह्मविदो विदुः।
तं पश्यन्ति धीराः सुमनसो वाचमग्रतः।।

ॐ वेदान्तनाथाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्! ॐ देवि! गायत्रि! त्वं ब्रह्मशापाद्विमुक्ता भव।

(2) वसिष्ठ-शापविमोचन- विनियोग-ॐ अस्य श्रीवसिष्ठशापविमोचनमन्त्रस्य निग्रहानुग्रहकर्ता वसिष्ठऋषिर्वसिष्ठानुगृहीता गायत्री शक्तिर्देवता गायत्री छन्दः वसिष्ठशापविमोचनार्थ जपे विनियोगः।

मन्त्र-

ॐ सोऽहमर्कमयं ज्योतिरात्यज्योतिरहं शिवः ।
आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतीरसोऽस्म्यहम् ।।
ॐ देवि ! गायत्रि ! त्वं वशिष्ठशापद्विमुक्ता भव ।

(3)विश्वामित्र-शापविमोचन-विनियोग-ऊँ अस्य श्रीविश्वामित्रशापविमोचन-मन्त्रस्य नूतनसृष्टिकर्ता विश्वामित्रऋषिर्विश्वामित्रानुगृहीता गायत्री शक्तिर्देवता गायत्री छन्दः विश्वामित्रशापविमोचने विनियोगः ।

मन्त्र-

ॐ गायत्रीं भजाम्यग्निमुखीं विश्वगर्भां यदुद्भवाः ।
देवाश्चक्रिरे विश्वसृष्टिं तां कल्याणीमिष्टकरीं प्रपद्ये ।।! ॐ देवि! गायत्रि ! त्वं विश्वामित्रशापाद्विमुक्ता भव । (नि.पू.प्र.)

गायत्री स्तोत्र

सुकल्याणीं वाणीं सुरमुनिवरैः पूजितपदाम् ।
शिवामाद्यां बन्द्यां त्रिभुवनमयीं वेदजननीम् ।।
परांशक्तिं स्रष्टुं विविधविध रूपां गुणमयीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।। 1 ।।
विशुद्धां सत्त्वस्थामखिलां दुरवस्थादिहरणीम् ।
निराकारां सारां सुविमल तपो मूर्त्तिमतुलाम् ।।
जगज्ज्येष्ठां श्रेष्ठामसुरसुरपूज्यां श्रुतिनुताम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।। 2 ।।
तपो निष्ठामीष्टांस्वजनमनसन्तापशमनीम् ।
दयामूर्तिं स्फूर्तिं यतितति प्रसादैकसुलभाम् ।।
वरेण्यां पुण्यां तां निखिल भव बन्धापहरणीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ।। 3 ।।

सदाराध्यां साध्यां सुमति-मति विस्तारकरणीम्।
विशोकामालोकां हृदयगत मोहान्धहरणीम्।।
परां दिव्यां भव्यामगमभवसिन्ध्वेक तरणीम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगान्दजननीम्।।4।।
अजां द्वैतां त्रैतां विविधगुणरूपां सुविमलाम्।
तमो हन्त्रीं-तन्त्रीं श्रुति मधुरनादां रसमयीम्।।
महामान्यां धन्यां सतत् करुणाशील विभवाम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानदजननीम्।।5।।
जगद्धात्रीं पात्रीं सकल भव संहारकरणीम्।
सुवीरां धीरां तां सुविमल तपो राशि सरणीम्।।
अनेकामेकां वै त्रिजगसदधिष्ठानपदवीम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम्।।6।।
प्रबुद्धां बुद्धां तां स्वजनमति जाड्यापहरणाम्।
हिरण्यां गुण्यां तां सुकविजन गीतां सुनिपुणीम्।।
सुविद्यां निरवद्याममल गुणगाथां भगवतीम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगान्दजननीम्।।7।।
अनन्तां शान्तां यां भजति बुध वृन्दः श्रुतिमयीम्।
सुगेयां ध्येयां यां स्मरति हृदि नित्यं सुरपतिः।।
सदा भक्त्या शक्त्या प्रणतमतिभिः प्रीतिवशगाम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम्।।8।।
शुद्धचित्तः पठेद्यस्तु गायत्र्या अष्टकं शुभम्।
अहो भाग्यो भवेल्लोके तस्मिन् माता प्रसीदति।।9।।

(गा. म. वि.)

शिव गायत्री कवच

कल्पान्तकारी शिव ने अपनी प्राणवल्लभा पार्वती को गायत्री कवच सुनाया था, जिसका पाठ कल्याण प्रद है।

सर्वज्ञानमयं देवि परमब्रह्ममयं सदा।
कवचं कथयाम्यद्य पार्वती प्राणवल्लभे।।
ॐ भूः ॐ पातु मे मूलं चतुर्दलसमन्वितम्।
ॐ भुवः ॐ पातु मे लिंगं षड्दलकान्वितम्।।
ॐ स्वः ॐ पातु मे कण्ठमाकशं दलषोडशम्।
ॐ त ॐ पातु मे रूपं ब्रह्मण्यकारणम् परम्।।
ॐ त्स ॐ वदनं पातु रसनासंयुतं मम।
ॐ वि ॐ पातु मे गन्धं सदा शरीरसंयुतम्।।
ॐ तु ॐ पातु मे स्पर्शं शरीरस्य च कारणम्।
ॐ र्व ॐ पातु मे शब्दविग्रहकारणम्।।
ॐ रे ॐ पातु मे नित्यं त्वंचशरीररक्षिणीम्।
ॐ णि ॐ पातु मे अक्षि सर्वतत्त्वैककारणम्।।
ॐ यं ॐ पातु मे श्रोत्रं श्रवणस्य च कारणम्।
ॐ भ ॐ पातु मे घ्राणं गन्धोपादानकारणम्।
ॐ र्गो ॐ पातु मे वाक्यं सभायां शब्दरूपधृक्।
ॐ दे ॐ पातु मे वाहुयुगलं ब्रह्मकारणम्।।
ॐ व ॐ पातु मे पादयुगलं ब्रह्मकारणम्।
ॐ स्य ॐ पातु मे लिंग सजलं ब्रह्मकारणम्।।
ॐ धी ॐ पातु मे नित्यं प्रकृतिं शब्दकारणम्।
ॐ म ॐ पातु मे नित्यं मनो ब्रह्मस्वरूपधृक्।।
ॐ हि ॐ पातु मे बुद्धिं परब्रह्ममयं सदा।
ॐ धि ॐ पातु मे नित्यमहंकारं यथा तथा।।

ॐ यो ॐ पातु मे नित्यं पृथिवीं पार्थिवं वपुः।
ॐ यो ॐ पातु मे नित्यं जलं सर्वत्र सर्वदा।।
ॐ नः ॐ पातु मे नित्यं तेजःपुंजम् यथा तथा।
ॐ प्र ॐ पातु मे नित्यमनिलं देहकारणम्।।
ॐ चो ॐ पातु मे नित्यमाकाशं शशिसन्निभम्।
ॐ द ॐ पातु मे जिह्वां जपयज्ञस्य कारणम्।।
ॐ यात् ॐ पातु मे चित्तं शिवज्ञानमयं सदा।
ॐ तत्त्वानि पातु मे नित्यं गायत्री परदेवता।।
ॐ भूर्भुवः स्वः पातु मे नित्यं ब्रह्माणी जठरं क्षुधा।
ॐ त्वष्टा मे सततं पातु ब्रह्माणी भूर्भुवःस्वरोम्।।

शिव गायत्री कवच पाठ के बाद विनियोग मंत्र पढ़ना चाहिए।

विनियोग मंत्र

ॐ अस्याः अग्निमुख्या श्रीगायत्र्याः
परं ब्रह्म ऋषिर्ऋग्यजुःसामाथर्वच्छन्दांसि श्रीगायत्री
ब्रह्माणी देवता धर्मार्थकाममोक्षार्थं जपे विनियोगः।।

इसके बाद गायत्री जप करना चाहिये।

कवच महिमा

कामक्रोधादिकं सर्वं स्मरणाद्याति शाम्यताम्।
इदं कवचंज्ञात्वा गायत्रीं प्रजपेद्यदि।।

(गा.अ.सं.)

इस कवच के स्मरणमात्र से ही काम क्रोधादि सब नष्ट हो जाते हैं। इस कवच को जानने से तथा जप के आदि और अन्त में गायत्री कवच के उच्चारण मात्र से जिस अभीष्ट वस्तु की जिज्ञासा होगी वह सब सिद्धवत् प्रतीत होगी।

इस कवच को पढ़कर गायत्री जप करने से पापों से मुक्त होकर जीवन मुक्त हो जाता है। जिसके जिह्वा में यह कवच सदा विद्यमान है उसकी जिह्वा को अमृत समान जानना चाहिए, क्योंकि इस कवच से उसकी जिह्वा परम पवित्र हो जाती है।

त्वचा, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र सप्त धातुओं से निर्मित और वात, पित्त, कफदोषों से युक्त शरीर को स्थूल देह कहते हैं।

एकादश इन्द्रिय संयुक्त शरीर एवं सूक्ष्म शरीर परस्पर आधाराधेय रूप सम्बन्ध में स्थित हैं। जीवात्मा गायत्री संस्कार सहित सूक्ष्म शरीर के साथ संयुक्त होकर साधक के हृदय में प्रदीप्त कलिका के सदृश प्रकाशित हो जाता है। तदनन्तर गायत्री और सूक्ष्म शरीर सहित जीवात्मा हृदय-कमल में प्रकाशित होता है, वही ज्योति परमब्रह्म है और वही परमानन्द स्वरूप है।

अतः कवच पाठ, विनियोग तथा गायत्री साधना से गायत्री साधक परमब्रह्म का सायुज्य जीवन काल में ही प्राप्त कर लेता है। आदिशक्ति गायत्री की आराधना गायत्री एवं गायत्री कवच की महिमा का गुण गान करते हुए स्वयं शिव ने माता पार्वती से कहा है कि- "कवचस्य प्रसादेन ब्रह्मा सृष्टि करोति स्थितिंच कुरुते विष्णुः रुद्रोऽहं लयकारणम्"। इस कवच के प्रसाद से ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं और कवच के प्रसाद से ही भगवान विष्णु सृष्टि का पालन करते हैं तथा हे पार्वती मैं रुद्र कवच के प्रसाद से ही सृष्टि के लय का कारण होता हूँ।

जो प्रातः काल के प्रत्यूष काल में उठकर इस कवच को पढ़ता है, गायत्री का श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है वह कवच के महात्म्य से एक लक्ष जप के फल को प्राप्त होता है। चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण आदि पवित्र काल में कवच को पढ़कर परमाक्षरी गायत्री को यदि कोई व्यक्ति जपे तो बहुत शीघ्र मंत्र सिद्धि होती है। वह स्वयं सिद्ध पुरुष

होकर ब्रह्म सायुज्य रूप मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। माता पार्वती को सदा शिव ने यह भी कहा कि - जो भगवान शिव के समीप अथवा विष्णु भगवान के समीप तथा आदिशक्ति भगवती के समीप इस कवच को निरन्तर पढ़ता है, वह बहुत शीघ्र तेजस्वी प्रतिभा से सम्पन्न हो जाता है।

कवच को जानने से तथा गायत्री जप के आदि और अन्त में इस कवच का सम्पुट देने से गायत्री के उच्चारण मात्र से उपासक अभीष्ट की प्राप्ति कर सकते हैं।

कवच एवं गायत्री जप की सम्मिलित शक्ति से उपासक सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं, गायत्री जप उपासक को अलभ्य लाभ कराने में सक्षम है।

गायत्री तंत्र

गायत्री "तंत्र" एक गुप्त विज्ञान है। तंत्र के द्वारा प्रकृति की शक्तियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। तंत्र एक प्रकार की विशिष्ट साधना है, जिसमें विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है। पुरुषार्थी पुरुष ही तंत्र साधना कर सकते हैं। क्योंकि विशेष परिस्थिति में साधना करनी होती है। ध्यान रहे कि तंत्र साधना से प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये।

गायत्री साधना अपने मूल स्वरूप में सदा हितकर होती है। अज्ञानता वश यदि साधना के क्रम में कोई त्रुटि अथवा विधि-विधान का उल्लंघन हो जाता है तो कोई हानि नहीं होती। कुछ न कुछ शुभ फल अवश्य मिलता है।

तंत्र साधना में अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता होती है, यह कठिन मार्ग है। प्रकृति में छिपी शक्तियों को प्राप्त करने के लिये प्रकृति के घर में प्रवेश करना पड़ता है, जिसमें खतरा भी हो सकता

है किन्तु गायत्री तंत्र की साधना विशिष्ट पुरुष ही कर सकते हैं। साधक में साहस, पुरुषार्थ, इच्छा शक्ति एवं धैर्य का होना परमावश्यक हैं। तंत्र साधना के क्रम में प्रकृति में प्रबल कम्पन उत्पन्न होता है जिससे साधक प्रभावित होता है। साधक में विपरीत परिस्थिति से उत्पन्न कठिनाइयों को सहन करने की शक्ति होनी चाहिये। मानसिक एवं शारीरिक दृढ़ता के साथ सुविज्ञ गुरु से प्रशिक्षित होने के पश्चात् ही तंत्र साधना के मार्ग पर अग्रसर होना उचित है।

तंत्र ग्रन्थों में 24 गायत्रियों का वर्णन है, जिनके द्वारा 24 देवताओं की आराधना की जाती है तथा सूक्ष्म शक्तियों को जागृत कर अभीष्ट की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सकती है। गायत्री तंत्र साधना के द्वारा उपासक दिव्य शक्ति को अपने मस्तिष्क में धारण कर लेता है, जिससे अभीष्ट की प्राप्ति सम्भव हो जाती है।

24 देवी-देवता एवं उनकी शक्ति-उपासना फल

चौबीस देवी देवता और उनकी शक्ति का विवरण इस प्रकार है, जिससे विशेष दैवी शक्ति से विशेष फल की उपलब्धि होती है-

1. गणेश - सफलता शक्ति-फल-विघ्नों का नाश एवं बुद्धि वृद्धि।
2. नृसिंह - पराक्रम शक्ति-फल-पराक्रम आक्रमण से रक्षा।
3. विष्णु - पालन शक्ति-फल-प्राणियों का पालन, योग्यता की वृद्धि, रक्षा।
4. शिव - कल्याण शक्ति-फल-कल्याण, अनिष्ठ का विनाश।
5. कृष्ण - योग शक्ति-फल-अनासक्ति, कर्मयोग।
6. राधा - प्रेम शक्ति-फल-प्रेम।
7. लक्ष्मी - धन शक्ति-फल-धन एवं भोग की प्राप्ति।

8. अग्नि – तेज शक्ति–फल–उष्णता, प्रकाश, प्रतिभा।
9. इन्द्र – रक्षा शक्ति–फल–रोगनिवारण एवं अनिष्ट से रक्षा।
10. सरस्वती– बुद्धि शक्ति–फल–मेधा, बुद्धि, विवेक।
11. दुर्गा – दमन शक्ति–फल–दुष्टों का दमन एवं विघ्नों पर विजय।
12. हनुमान– निष्ठा शक्ति–फल–निष्ठावान, ब्रह्मचर्य एवं कर्त्तव्यपरायणता।
13. पृथ्वी – धारण शक्ति–सहिष्णुता, दृढ़ता तथा भार वहन करने की क्षमता।
14. सूर्य – प्राण शक्ति–नीरोगता, दीर्घजीवन, उष्णता, विकारों का शोधन।
15. राम – मर्यादा शक्ति–फल–धर्म, मर्यादा, संयम, तितीक्षा।
16. सीता – तप शक्ति–फल–शील, पवित्रता, नम्रता।
17. चन्द्र – शान्त शक्ति–फल–शान्ति, शोक, क्रोध, चिन्ता का शमन। आशा का संचाार।
18. यम – काल शक्ति–फल–मृत्यु से निर्भयता।
19. ब्रह्मा – उत्पादक शक्ति–फल–उत्पादन सन्तान।
20. वरुण – रस शक्ति–फल–भावुकता, कलाप्रियता, कोमलता, सौन्दर्य।
21. नारायण– आदर्श शक्ति–फल–श्रेष्ठता, दिव्यगुण, महत्त्वाकांक्षा।
22. हयग्रीव– साहस शक्ति–फल–उत्साह, वीरता, निर्भयता।
23. हंस – विवेक शक्ति–फल–कीर्ति, सत्–असत्–निर्णय, दूरदर्शिता।
24. तुलसी – सेवा शक्ति –फल–पत्नीव्रत, पतिव्रत, आत्म शान्ति, परदुःख निवारण।

जिसमें जिस शक्ति की कमी हो उस शक्ति के देवता की उपासना करनी चाहिए, "जिस देवता की जो गायत्री है, उसका दशांश जप गायत्री साधना के साथ करना चाहिये। जैसे कोई व्यक्ति सन्तानहीन है तो उसे सन्तान की कामना करनी चाहिये। यदि गायत्री की दस माला नित्य जपी जाय तो एक माला ब्रह्म गायत्री की भी जपना चाहिये।

महागायत्री जप के साथ वेद या देवी गायत्री का जप करना चाहिये। आरम्भ में वेद गायत्री का जप करना चाहिये। जप के समय अभीष्ट का ध्यान करना चाहिये कि देवता उसका अभीष्ट परिणाम प्रदान करें।

चौबीस देवी-देवताओं की चौबीस गायत्री

1. **गणेश गायत्री**– ॐ एक दंष्ट्राय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो बुद्धिः प्रचोदयात्।
2. **नृसिंह गायत्री**– ॐ उग्रनृसिंहाय विद्महे, वज्र नखाय धीमहि। तन्नो नृसिंह प्रचोदयात्।
3. **विष्णु गायत्री**– ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
4. **शिव गायत्री**– ॐ पंचवक्त्राय विद्महे, महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
5. **कृष्ण गायत्री**– ॐ देवकी नन्दनाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।
6. **राधा गायत्री**– ॐ वृषभानुजायै विद्महे, कृष्ण प्रियायै धीमहि। तन्नो राधा प्रचोदयात्।
7. **लक्ष्मी गायत्री**– ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णु प्रियायै धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।

8. **अग्नि गायत्री-** ॐ महाज्वालाय विद्महे, अग्निदेवाय धीमहि। तन्नो अग्निः प्रचोदयात्।
9. **इन्द्र गायत्री-** ॐ सहस्त्रनेत्राय विद्महे, वज्र हस्ताय धीमहि। तन्नः इन्द्रः प्रचोदयात्।
10. **सरस्वती गायत्री-** ॐ सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्र्यै धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।
11. **दुर्गा गायत्री -** ॐ गिरिजायै विद्महे, शिव प्रियायै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्।
12. **हनुमान गायत्री-** ॐ अंजनीसुताय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि। तन्नः मारुतिः प्रचोदयात्।
13. **पृथ्वी गायत्री-** ॐ पृथ्वी देव्यै विद्महे, सहस्त्र मूर्त्यै धीमहि। तन्नः पृथ्वी प्रचोदयात्।
14. **सूर्य गायत्री-** ॐ भाष्कराय विद्महे, दिवाकराय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।
15. **राम गायत्री-** ॐ दाशरथये विद्महे, सीता वल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।
16. **सीता गायत्री-** ॐ जनकनन्दिन्यै विद्महे, भूमिजायै धीमहि। तन्नः सीता प्रचोदयात्।
17. **चन्द्र गायत्री-** ॐ क्षीर पुत्राय विद्महे, अमृत-तत्त्वाय धीमहि। तन्नः चन्द्रः प्रचोदयात्।
18. **यम गायत्री-** ॐ सूर्य पुत्राय विद्महे, महाकालाय धीमहि। तन्नो यमः प्रचोदयात्।
19. **ब्रह्मा गायत्री-** ॐ चतुर्मुखाय विद्महे, हंसारूढ़ाय धीमहि। तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।
20. **वरुण गायत्री-** ॐ जलबिम्बाय विद्महे, नील-पुरुषाय धीमहि। तन्नो वरुणः प्रचोदयात्।

21. **नारायण गायत्री**– ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

22. **हयग्रीव गायत्री**– ॐ वाणीश्वराय विद्महे, हयग्रीवाय धीमहि।
तन्नो हयग्रीवः प्रचोदयात्।

23. **हंस गायत्री**– ॐ परमहंसाय विद्महे, महाहंसाय धीमहि।
तन्नो हंसः प्रचोदयात्।

24. **तुलसी गायत्री**– ॐ श्री तुलस्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि।
तन्नो वृन्दा प्रचोदयात्।

देवी गायत्रियों के साथ व्याहृतियाँ लगाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये वेदोक्त नहीं तन्त्रोक्त हैं। यों तो उपर्युक्त देव-शक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के स्वतंत्र एवं विशिष्ट विज्ञान हैं, जो साधना ग्रन्थों में सविस्तार वर्णित हैं। उन साधनाओं से सम्पूर्ण प्रगति उसी दिशा में होती है। यहाँ तो इन देव-शक्तियों एवं गायत्रियों का वर्णन इसलिये किया गया है कि वेदमाता की सर्व फलदायिनी साधना में भी किसी विशेष तत्त्व को बढ़ाकर किसी विशेष उद्देश्य के लिये अतिरिक्त प्रयत्न भी साथ में जोड़ा जा सकता है।

देवी भागवत में क्रमानुसार अक्षरों के देवता हैं–

दैवातानि श्रृणु प्रज्ञा तेषामेवानुपूर्वशः।
आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्रजापत्यं द्वितीयकम्।।
तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम्।
सावित्रं पंचमं प्रोक्तं षष्ठमादित्य दैवतम्।।
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम्।
नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमेश्वरम्।।
गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं द्वादशकं स्मृतम्।
पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैद्राग्नं च चतुर्दशम्।।

वायव्यं पंचदशकं वामदेव्यं च षोडशम्।
मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम्।।
अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशं तु मातृकम्।
वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम्।।
एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम्।।
त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विनं तत्संख्यकम्।
चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च संग्रहः।।
कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः।
यदाकर्णनमात्रेण सांगं जाप्यफलं मुने।। (गा.म.वि.)

प्रथम के अग्नि, द्वितीय के प्रजापति, तृतीय के सोम, चतुर्थ के ईशान, पंचम के सविता, षष्ठ के आदित्य, सप्तम के बृहस्पति, अष्टम के मैत्रावरुण, नवम के भग, दशम के अर्यमा, एकादश के गणेश, द्वादश के त्वष्ट्रा, त्रयोदश के पूषा, चतुर्दश के इन्द्राग्निी, पंचदश के वायु, षोडश के वामदेव, सप्तदश के मैत्रावरुण, अष्टादश के विश्वदेवा, उन्नीसवें के मातृका, बीसवें के विष्णु, इक्कीसवें के वसु, बाईसवें के रुद्र, तेईसवें के कुबेर, चौबीसवें के अश्विनी कुमार हैं।

देवता परम श्रेष्ठ हैं और पाप को नाश करने वाले हैं। इस मंत्र के श्रवण मात्र से ही सांग जप का फल प्राप्त होता है। देवी भागवत् में माँ गायत्री को महिमा मंडित किया गया है।

आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि।
सर्वत्रव्यापिकेऽनन्ते श्रीसंध्ये वै नमोऽस्तु ते।।

(देवी भागवत 12/18/19)

हे आदिशक्ति, जगन्माता, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली, सर्वत्र व्यापक, अनन्ता, श्री सन्ध्या तुम्हें नमस्कार है।

त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती।
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा।।

हंसस्था गरुड़ारूढा तथा वृषभवाहिनी।
ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः।।

सन्ध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्रा, रक्ता, श्वेता, कृष्णा तुम्हीं हो।

ब्राह्मी, हंसारूढ़ा, सावित्री वृषभवाहिनी और सरस्वती गरुड़ारूढ़ा हैं। इनमें से ब्राह्मी ऋग्वेदाध्यायिनी, भूमितल में तपस्वियों द्वारा देखी जाती है।

यजुर्वेदं पठंती च अंतरिक्षे विराजते।
स सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि।।
रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी।
त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी।।

सरस्वती यजुर्वेद पढ़ती हुई, अन्तरिक्ष में विराजमान होती हैं और सावित्री सामवेद गाती हुई, पृथ्वी तल पर सर्वजनों में रमती हैं।

सावित्री रुद्रलोक में, सरस्वती विष्णु लोक में और ब्राह्मी ब्रह्मलोक में विराजमान रहती हैं-ये सब प्राणियों पर कृपा करने वाली हैं।

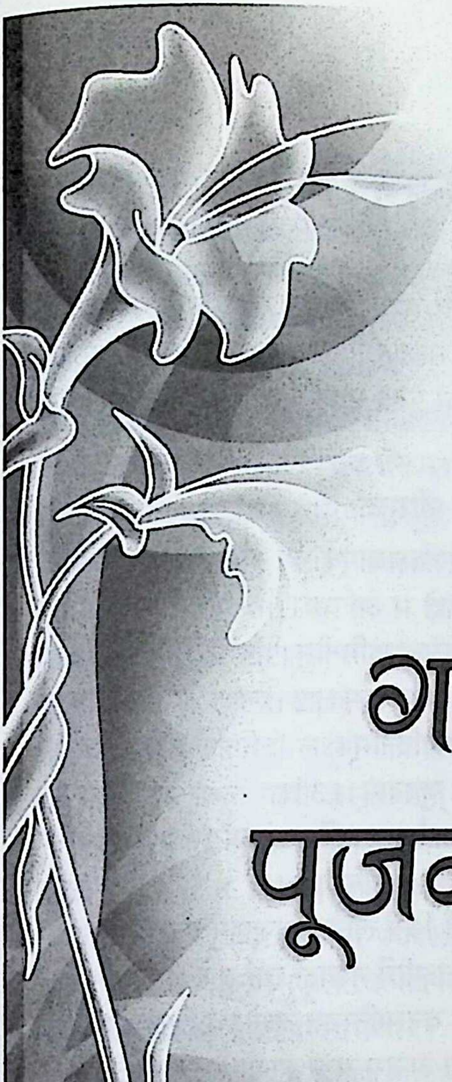

अध्याय
१३

गायत्री पूजन विधि

गायत्री पूजन विधि

आदिशक्ति गायत्री त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली की साक्षात् दिव्य स्वरूप हैं। इनकी पूजा-अर्चना श्रद्धाभाव से युक्त होकर पुरुष सूक्त अथवा श्री सूक्त से करना परम कल्याणकारी है।

श्रीसूक्त

ऊँ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।1।।
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्।।2।।
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्।।3।।
कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्।।4।।
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।।5।।
आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः।।6।।
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ।।7।।
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।।8।।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्।। 9।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।। 10।।
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।। 11।।
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।। 12।।
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।। 13।।
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।। 14।।
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्।। 15।।
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।। 16।।
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व।। 17।।
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षि पद्मसम्भवे।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्।। 18।।
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे।। 19।।
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरी रथम्।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे।। 20।।
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमश्विना।। 21।।

वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ।। 22 ।।
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्तजापिनाम् ।। 23 ।।
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम्। 24 ।।
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ।। 25 ।।
महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।। 26 ।।
आनन्दः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवीर्देवता मताः ।। 27 ।।
ऋणरोगादिदारिद्र्यापापक्षुदपमृत्यवः ।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।। 28 ।।
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ।। 29 ।।

पुरुषसूक्तम्

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि ँ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।। 1 ।।
पुरुष एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।। 2 ।।
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।। 3 ।।
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।। 4 ।।

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।।6।।
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ँ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।7।।
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।8।।
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।9।।
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते।।10।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ्शूद्रो अजायत।।11।।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।।12।।
नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ्शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन्।।13।।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।14।।
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्।।15।।
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।16।।

पवित्रीकरण

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से अपने ऊपर और पूजा सामग्री पर छिड़कें।

आचमन – ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः।

आचमन के पश्चात् दाहिने हाथ के अँगूठे के मूलभाग से 'ॐ हृषीकेशाय नमः' कहकर ओठों को पोंछकर हाथ धो लें।

आसनशुद्धि

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।।

अपने आसन के नीचे चंदन, पुष्प रखकर प्रणाम कर लें।

शिखा बन्धन

चिद्रूपिणि! महामाये! दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि! शिखामध्ये तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे।।

प्राणायाम–(अनुलोम-विलोम) दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने नासाछिद्र को बन्द करें। बायें छिद्र से श्वास को धीरे-धीरे खींचने को 'पूरक प्राणायाम' कहते हैं। पूरक प्राणायाम करते समय गायत्री मंत्र **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्** का उच्चारण करते हुए नाभिदेश में नीलकमल के दल के समान नीलवर्ण चतुर्भुज भगवान विष्णु का ध्यान करें।

जब साँस खींचना रुक जाय, तब अनामिका और कनिष्ठिका अँगुली से नाक के बायें छिद्र को भी दबा दें। गायत्री मंत्र जपते रहें। इसे 'कुम्भक प्राणायाम' कहते हैं। इस अवसर पर हृदय में कमल पर विराजमान रक्तवर्ण वाले चतुर्मुख ब्रह्माजी का ध्यान करें।

अँगूठे को हटाकर दाहिने छिद्र से श्वास को धीरे-धीरे छोड़ने की प्रक्रिया 'रेचक प्राणायाम' के नाम से जाना जाता है। इस समय अपने मस्तक में श्वेतवर्ण शिव का ध्यान करें और मन में मंत्र जपते रहें। प्रत्येक क्रिया 10 सेकण्ड अर्थात् 01 से 10 तक गिनने में जितना समय लगता है उतने समय में करना है। यह एक बार हुआ ऐसा पाँच बार करें।

दिशा शुद्धि

पीली सरसो लेकर निम्न मंत्र से अभिमंत्रित करें।

अपक्रामन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।

अब निम्नलिखित मन्त्रों से दसों दिशाओं में अक्षत या पीली सरसों छोड़ें-

पूर्वे रक्षतु वाराह आग्नेय्यां गरुडध्वजः।
दक्षिणे पद्मनाभस्तु नैर्ऋत्यां मधुसूदनः।।
पश्चिमे पातु गोविन्दो वायव्यां तु जनार्दनः।
उत्तरे श्रीपती रक्षेदैशान्यां तु महेश्वरः।।
ऊर्ध्वं गोवर्धनो रक्षेद् ह्यधोऽनन्तस्तथैव च।
एवं दश दिशो रक्षेद् वासुदेवो जनार्दनः।।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं रक्षत्वीशो महाद्रिधृक्।
यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा।।
स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु।

तिलक धारण

चन्दनं वन्दते नित्यं पवित्रं पापनाशनम्।
आपदां हरते नित्यं लक्ष्मी तिष्ठति सर्वदा।।

स्वस्ति वाचन

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।। देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाँ रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाँ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।। तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणं वरुणँ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।। तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तदग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना श्रृणुतं धिष्ण्या युवम्।। तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह।। भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरै रङ्गै स्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः। शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।। अदितिर्द्यौ रदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पंचजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।। द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।। यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।। सुशान्तिर्भवतु।।

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमा महेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः।

मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्यो नमः। ग्रामदेवताभ्यो नमः वास्तुदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः। ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।

मंगलपाठ

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः।।
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि।।
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये।।
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः।।
सर्वमंगलमांगल्ये! शिवे! सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरिः।।
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं देवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि।।
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः।।
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
स्मृतेः सकलकल्याणं भाजनं यत्र जायते।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्।।
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः।।
विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वन्दे काशीं गुहां गंगां भवानीं मणिकर्णिकाम्।।
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।।

रक्षादीप

भो! दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्।
यावत् कर्मसमाप्तिस्यात् तावत् त्वम् सन्निधौ भव।।

अक्षत के ऊपर दीप रखें

संकल्प

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। ॐ नमः परमात्मने, श्रीपुराणपुरुषोश्रमस्य श्री विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयापरार्द्धे श्री श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वतरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे पुण्यप्रदेशे बौद्धावतारे वर्तमाने यथानामसंवत्सरे अमुकायने महामांगल्यप्रदे मासानाम् उत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरान्वितायाम् अमुक नक्षत्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकामुकराशिस्थितेषु चन्द्रभौमबुधगुरुशुक्रशनिषु सत्सु शुभे योगे शुभकरणे एवंगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ सकलशास्त्रश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तिकामः अमुकग्रोत्रोत्पन्नः अमुकशर्माहं/वर्माहं/गुप्तोहं ममात्मनः सपुत्रपुत्रीस्त्रीबान्धवस्य गायत्री

अनुग्रहतो ग्रहकृतराजकृतसर्वविधपीडानिवृत्तिपूर्वकं नैरुज्यदीर्घायुः पुष्टि धनधान्यसमृद्धयर्थं श्री गायत्री देव्या प्रसादेन सर्वापन्निवृत्तिसर्वाभीष्टफलाप्तिधर्मार्थकाममोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्धिद्वारा च श्रीसवितादेवताप्रीतये गायत्रीपूजनमहंकरिष्ये। तद्त्वेन आदौ विघ्नविनाशार्थ कलश स्थापन विधिपूर्वकम् गणेशाम्बिकयोः पंचदेवता सूर्यादि नवग्रहादि देवता पंचलोकपाल दस दिक्पाल षोड्शमातृका सप्तघृत मातृका चतुःषष्ठी योगिनी च लब्धौपचारै पूजनम् अहं करिष्ये।

पंचदेवता-(गणेश, विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा)

नवग्रह(सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु)

पंचलोकपाल, दस दिक्पाल, शोडष् मातृका, की यथोपचार पूजा करनी चाहिए।

गणेश का आवाहन

ॐ गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।। (यजुर्वेद 23/19)

एह्येहि हेरम्ब महेशपुत्र समस्तविघ्नौघविनाशदक्ष।
माङ्गल्यपूजाप्रथमप्रधान गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।।
ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः,
गणपतिमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि च।

गौरी का आवाहन

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।।

प्रतिष्ठा

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञँ॒ समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ।।

पंचोपचार विधि से पूजन

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः।।

प्रार्थना पुष्प अर्पण करें।

कलश स्थापना विधि

भूमि को स्पर्श कर यह मंत्र पढ़े –

ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य
भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृँ॒ह प्रथिवीं मा हिँ॒सीः।।

बालू की चौकोर वेदी बना दें, उसपर अष्टदल कमल बना देना श्रेयस्कर होगा। पूजित भूमि पर सप्तधान्य अथवा केवल जौ मंत्र पढ़ते हुए छीटें।

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वो दानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि।।

वेदी पर मंत्र पढ़ते हुए कलश स्थापित करें –

ॐ आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः।
पुनरूर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा
पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः।।

कलश में जल भर दें–

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो
वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि
वरुणस्य ऋतसदनमासीद्।।

कलश में चन्दन डालें–

ॐ त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत।।

कलश में सर्वौषधि डालें–

ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह ँ शतं धामानि सप्त च।।

कलश में दूब –

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च।।

कलश पर पंचपल्लव–

ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्।।

कलश में पवित्री –

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण
पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य
यत्कामः पुनेतच्छकेयम्।।

कलश में सप्तमृत्तिका -

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्मसप्रथाः।

कलश में सुपारी-

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुंचन्त्व ँ्हसः।।

कलश में पंचरत्न-

ॐ परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।
दधद्रत्नानि दाशुषे।

कलश में द्रव्य-

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्।।

कलश पर वस्त्र-

ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः।
वसो अग्ने विश्वरूप ँ् सं व्ययस्व विभावसो।।

कलश पर पूर्णपात्र-

ॐ पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरा पत।
वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्ज ँ् शतक्रतो।।

कलश पर नारियल-(लाल कपड़ा लपेटे हुए)

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुंचन्त्व ँ्हसः।।

कलश में वरुण का ध्यान और आवाहन-

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ँ् स मा न आयुः प्र मोषीः।।

अस्मिन! कलशे वरुणं साङ्गम् सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वरुण! इहागच्छ, इह तिष्ठ, स्थापयामि, पूजयामि, मम पूजां गृहाण। 'ॐ अपां पतये वरुणाय नमः'।।

कलश में देवी-देवताओं का आवाहन

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथवर्णः।।
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा।।
आयान्तु देवपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु।।
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः।।

प्रतिष्ठा

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ् समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ।। कलशे वरुणाद्यावाहितदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु। ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः।। मंत्र पढ़ते हुए अक्षत-पुष्प चन्दन कलश के पास छोड़ें।

ध्यान

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, ध्यानार्थे पुष्पं समर्पयामि। पुष्प समर्पित करें।

आसन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि। अक्षत चढ़ायें।

पाद्य

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, पादयोः पाद्यं समर्पयामि। जल चढ़ायें।

अर्घ्य

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि। जल चढ़ायें।

स्नानीयम्

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, स्नानीयं जलं समर्पयामि। स्नानीय जल चढ़ायें।

आचमन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।
जल चढ़ायें।

पंचामृतस्नान

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, पंचामृतस्नानं समर्पयामि। पंचामृत से स्नान करायें।

गन्धोदक स्नान

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, गन्धोदकस्नानं समर्पयामि। जल में चन्दन मिलाकर स्नान करायें।

शुद्धोदक स्नान

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
स्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।
शुद्ध जल से स्नान करायें।

आचमन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।
जल चढ़ायें।

वस्त्र

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, वस्त्रं समर्पयामि।
वस्त्र चढ़ायें।

आचमन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।
आचमन के लिये जल चढ़ायें।

यज्ञोपवीत

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।
जनेऊ चढ़ायें।

आचमन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।
जल चढ़ायें।

उपवस्त्र

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि।

उपवस्त्र चढ़ायें।

आचमन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
उपवस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

जल चढ़ायें।

चन्दन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, चन्दनं समर्पयामि।

चन्दन चढ़ायें।

अक्षत

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
अक्षतान् समर्पयामि।

अक्षत चढ़ायें।

पुष्प एवं पुष्पमाला

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, पुष्पं पुष्पमालाम् समर्पयामि।

फूल एवं माला चढ़ायें।

अबीर-गुलाल

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः,
नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

अबीर-गुलाल चढ़ायें।

सुगन्धित द्रव्य

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, सुगन्धितद्रव्यं समर्पयामि।

इत्र चढ़ायें।

धूप

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, धूममाघ्रापयामि।
धूप दिखायें।

दीप

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, दीपं दर्शयामि।
दीप दिखायें।

हस्त प्रक्षालन

दीप दिखाकर हाथ धो लेना चाहिए।

नैवेद्य

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, सर्वविधं नैवेद्यं निवेदयामि।
नैवेद्य रखें।

आचमन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, आचमनीयं जलम्, मध्ये पानीयं जलम्, उत्तरापोऽशने, मुखप्रक्षालनार्थे, हस्तप्रक्षालनार्थे च जलं समर्पयामि।

जल चढ़ायें।

करोद्वर्तन

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, करोद्वर्तनं समर्पयामि।
चंदन चढ़ाये।

ताम्बूल

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, ताम्बूलं समर्पयामि।
सुपारी, लौंग, इलायची एवं पान चढ़ायें।

दक्षिणा

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, कृतायाः पूजायाः सादुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि।

द्रव्य-दक्षिणा चढ़ायें।

आरती

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, आरार्तिकं समर्पयामि।

कर्पूर की आरती दिखायें।

पुष्पांजलि

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, मन्त्रपुष्पांजलिं समर्पयामि।

पुष्पांजलि करें।

प्रदक्षिणा

ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।

प्रदक्षिणा पुष्प चढ़ायें।

प्रार्थना

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्।।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
आदित्यावसवो रुद्रा . विश्वेदेवाः सपैतृकाः।।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः।
त्वत्प्रसादादिमां पूजां कर्तुमीहे जलोद्भव।
सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।।
नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमंगलाय।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते।।

ॐ अपां पतये वरुणाय नमः। प्रार्थनापूर्वकं नमस्कारान् समर्पयापि।
मंत्र के साथ नमस्कार पूर्वक पुष्प चढ़ायें।

समर्पण

कृतेन अनेन पूजनेन कलशे वरुणाद्यावाहितदेवताः प्रीयन्तां न मम।
जल चढ़ायें।
पंचदेवताओं की पंचोपचार पूजा करें–

नवग्रह पूजन

पूजा में नवग्रह का विशेष महत्त्व है। मनुष्य के जीवन पर नवग्रह का सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, इसलिये पूजा में नवग्रह पूजन का विधान है–

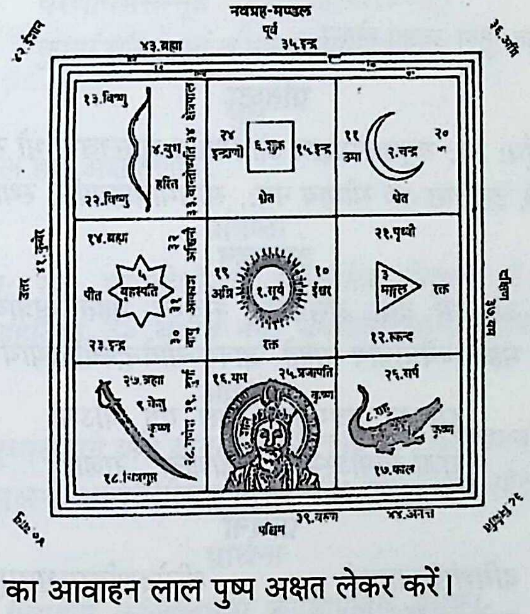

सूर्य का आवाहन लाल पुष्प अक्षत लेकर करें।

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः कलिंगदेशोद्भव काश्यपगोत्र रक्तवर्ण भो सूर्य! इहागच्छ, इहतिष्ठ ॐ सूर्याय नमः, श्रीसूर्यमावाहयामि, स्थापयापि।

आवाहन

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंच।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

प्रार्थना

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।।

चन्द्र

सफेद फूल अक्षत लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः यमुनातीराद्भव आत्रेयगोत्र शुक्लवर्ण भो सोम! इहागच्छ, इहतिष्ठ ॐ सोमाय नमः, सोममावाहयामि, स्थापयापि।

आवाहन

ॐ इमं देवा असपत्न ँ सुवध्वं महते क्षत्राय
महते ज्यैष्ठयाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।

इममुष्य पुत्रममुष्यै विश एष वोऽमी
राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणाना ँ राजा।।

प्रार्थना

दधिशंखतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
ज्योत्स्नापतिं निशानाथं तं सोमं प्रणमाम्यहम्।।

मंगल

लाल फूल, लाल अक्षत लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः अवन्तिदेशोद्भव भारद्वाजगोत्र रक्तवर्ण भो भौम! इहागच्छ, इहतिष्ठ ॐ भौमाय नमः, भौममावाहयामि, स्थापयामि।

आवाहन

ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाँ रेताँ सि जिन्वति।।

प्रार्थना

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्तेजस्समप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं च मंगलं प्रणमाम्यहम्।।

बुध

हरा फूल हरा अक्षत लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः मगधदेशोद्भव आत्रेयगोत्र पीतवर्ण भो बुध! इहागच्छ, इहतिष्ठ ॐ बुधाय नमः बुधमावाहयामि, स्थापयामि।

आवाहन

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।

प्रार्थना

प्रियङ्गु कलिकाभासं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्।।

बृहस्पति

पीले फूल एवं पीले अक्षत लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र पीतवर्ण भो गुरो! इहागच्छ, इहतिष्ठ ॐ बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि, स्थापयामि।

आवाहन

ॐ बृहस्तते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।।

प्रार्थना

देवानां च ऋषीणां च गुरुकनक संनिभम्।
वन्द्यभूतं त्रिलोकानां सद्नमामि बृहस्पतिम्।।

शुक्र

सफेद पुष्प अक्षत लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः भोजकटदेशोद्भव भार्गवगोत्र शुक्लवर्ण भो शुक्र! इहागच्छ, इह तिष्ठ ॐ शुक्राय नमः शुक्रमावाहयामि, स्थापयामि।

आवाहन

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।।

प्रार्थना

हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं तं शुक्रं प्रणमाम्यहम्।।

शनि

काला पुष्प अक्षत लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपगोत्र कृष्णवर्ण भो शनैश्चर! इहागच्छ, इह तिष्ठ ॐ शनैश्चराय नमः शनैश्चरमावाहयामि, स्थापयामि।

आवाहन

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ।।

प्रार्थना

सूर्य पुत्रो दीर्घ देहो विशालाक्षौ शिवप्रियः।
दीर्घचारः प्रसन्नात्मा पीड़ाहरतु ते शनि।।

राहु

काले अक्षत फूल लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः राठिनपुरोद्भव पैठीनसगोत्र कृष्णवर्ण भो राहो! इहागच्छ, इह तिष्ठ ॐ राहवे नमः, राहुमावाहयामि, स्थापयामि।

आवाहन

ॐ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।

प्रार्थना

अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहु प्रणमाम्यहम्।।

केतु

धूमिल अक्षत पुष्प लेकर

प्रतिष्ठा

ॐ भूर्भुवः स्वः अन्तर्वेदिसमुद्भव जैमिनिगोत्र धूम्रवर्ण भो केतो! इहागच्छ, इह तिष्ठ ॐ केतवे नमः, केतुमावाहयामि, स्थापयामि।

आवाहन

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः।

प्रार्थना

पलाशधूम्रसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्।।

नवग्रह प्रार्थना

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु।।
सूर्यः शौर्यमथेन्दुरुच्चपदवीं सन्मंगलं मंगलः
सुद्बुद्धिं च बुधो गुरुश्च गुरुतां शुक्रः सुखं शं शनिः।
राहुर्बाहुबलं करोतु सततं केतुः कुलस्योन्नतिं
नित्यं प्रीतिकरा भवन्तु मम ते सर्वेऽनुकूला ग्रहाः।।

षोडशमातृका-पूजन

षोडशमातृकाओं की स्थापना के लिये पूजक दाहिनी ओर पाँच खड़ी पाइयों और पाँच पड़ी पाईयों का चौकोर मण्डल बनाये। इस प्रकार सोलह कोष्ठक बन जायेंगे। पश्चिम से पूर्व की ओर मातृकाओं का आवाहन और स्थापना करें। कोष्ठकों में रक्तचावल, गेहूँ या जौ रख दें। पहले कोष्ठक में गौरी का आवाहन होता है, अतः गौरी के आवाहन से पूर्व गणेश का भी आवाहन पुष्पाक्षतों द्वारा इसी कोष्ठक

में करें। इसी प्रकार अन्य कोष्ठकों में भी निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए आवाहन करें।

षोडशमातृका-चक्र

पूर्व

आत्मनःकुलदेवता	लोकमातरः	देवसेना	मेधा
16	12	8	4
तुष्टि	मातरः	जया	शची
15	11	7	3
पुष्टिः	स्वाहा	विजया	पद्मा
14	10	6	2
धृतिः	स्वधा	सावित्री	गौरी
13	9	5	1

आवाहन एवं स्थापना

1. ॐ गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि, स्थापयामि।
   ॐ गौर्यै नमः, गौरीमावाहयामि, स्थापयामि।
2. ॐ पद्मायै नमः, पद्मामावाहयामि, स्थापयामि।
3. ॐ शच्यै नमः, शचीमावाहयामि, स्थापयामि।
4. ॐ मेधायै नमः, मेधामावाहयामि, स्थापयामि।
5. ॐ सावित्र्यै नमः, सावित्रीमावाहयामि, स्थापयामि।
6. ॐ विजयायै नमः, विजयामावाहयामि, स्थापयामि।
7. ॐ जयायै नमः, जयामावाहयामि, स्थापयामि।
8. ॐ देवसेनायै नमः, देवसेनामावाहयामि, स्थापयामि।
9. ॐ स्वधायै नमः, स्वधामावाहयामि, स्थापयामि।
10. ॐ स्वाहायै नमः, स्वाहामावाहयामि, स्थापयामि।
11. ॐ मातृभ्यो नमः, मातृः आवाहयामि, स्थापयामि।
12. ॐ लोकमातृभ्यो नमः, लोकमातृः आवाहयामि, स्थापयामि।

13. ॐ धृत्यै नमः, धृतमावाहयामि, स्थापयामि।
14. ॐ तुष्टयै नमः, तुष्टिमावाहयामि, स्थापयामि।
15. ॐ आत्मनः कुलदेवतायै नमः, आत्मनः कुलदेवतामावाहयामि, स्थापयामि।

इस प्रकार षोडशमातृकाओं का आवाहन, स्थापना कर 'ॐ मनोजूति' इस मंत्र से अक्षत छोड़ते हुए मातृका-मण्डल की प्रतिष्ठा करें, तत्पश्चात् निम्नलिखित नाम-मन्त्र से गन्धादि उपचारों द्वारा पूजन करें-

'ॐ गणेशसहित गौर्यादिषोडशमातृकाभ्यो नमः।

फल का अर्पण

नारियल आदि फल अंजलि में लेकर प्रार्थना करें-

ॐ आयुरारोग्यमैश्वर्यं ददध्वं मातरो मम।
निर्विघ्नं सर्वकार्येषु कुरुध्वं सगणाधिपा।।

इस तरह प्रार्थना करने के बाद नारियल आदि फल चढ़ाकर हाथ जोड़कर बोले-'गेहे वृद्धिशतानि भवन्तु, उत्तरे कर्मण्यविघ्नमस्तु।'

इसके बाद-

'अनया पूजया गणेशसहितौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्ताम्, नमम।

इस वाक्य का उच्चारण कर मण्डल पर अक्षत छोड़कर नमस्कार करें-

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः।।
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश।।

पंचलोकपाल, दस दिक्पाल, चतुषष्ठी योगिनी की भी यथोपचार पूजा कर लेनी चाहिए।

गायत्री पूजन

ध्यान – लाल फूल लेकर

मुक्ता–विद्रुम–हेम–नील–धवलच्छायैर्मुखैतीक्षणै–
र्युक्तामिन्दु–निबद्ध–रत्न मुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदा–ऽभयांकुशा–कशां–शूलं–कपालं गुणं
शंखं चक्रमथार–बिन्दु–युगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्रीदेव्यै नमः, ध्यानं समर्पयामि।

आवाहन

पुष्प लेकर

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिँ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठ दशाङ्गुलम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः आवाहनं समर्पयामि।

आसन

अक्षत लेकर

ॐ पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि।

पाद्य

जल चढ़ायें

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि।

अर्घ्य

जल चढ़ायें।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः हस्तयो अर्घ्यं समर्पयामि।

आचमन

जल चढ़ायें।

ततो विराडजायत विराजो ऽअधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, आचमनीयं समर्पयामि।

मधुपर्क

मधु चढ़ायें।

ॐ यन्मधुनो मधव्यं परम॒ँ रूपमन्नाद्यम्।
तेनाऽहं मधुनो मधव्येन परमेण।
रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, मधुपर्कं समर्पयामि।

स्नान

मन्दाकिन्याः समानीतैर्हेमाम्भोरुह वासितैः।
स्नानं कुरुष्व देवेशि सलिलैश्च सुगन्धिभिः।।

(मंत्र पढ़ते हुए स्नान करायें)

दुग्धस्नान

कामधेनु समुत्पन्नं सर्वेषां जीवनं परम्।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम्

ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, पयः स्नानं समर्पयामि। पयः स्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

दधिस्नान

पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लंशशिप्रभम्।
दध्यानीतं मया देवि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।

ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूँ षि तारिषत्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः,दधिस्नानं समर्पयामि। दधि स्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

घृतस्नान

नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसंतोषकारकम्।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा।

दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, घृतस्नानं समर्पयामि। तदन्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

मधुस्नान

तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ्‌ रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, मधुस्नानं समर्पयामि। तदन्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

शर्करास्नान

इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिकारिका।
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ अपा ँ्‌ रसमुद्वयस ँ्‌ सूर्ये सन्त ँ्‌ समाहितम्। अपा ँ्‌ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, शर्करास्नानं समर्पयामि। तदन्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

पंचामृतस्नान

ॐ पंच नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्वसरित्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः,पंचामृतस्नानं समर्पयामि। तदन्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

गन्धोदकस्नान

मलयाचलसम्भूतं चन्दनागरुसम्भवम्।
चन्दनं देवदेवेशि स्नानार्थ प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यरिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्याग्निरिडऽईडितः।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, गन्धोदकस्नानं समर्पयामि। तदन्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानास्ते आचमनीयं समर्पयामि।

उद्वर्तन (हरिद्रादधि) स्नान

ॐ ँ शुना ते ँ शुः पृच्यतां परुषापरुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो ऽअच्युतः।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, उद्वर्तनं समर्पयामि। तदन्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानास्ते आचमनीयं समर्पयामि।

वस्त्र

ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्मवरुथमासदत्स्वः।
वसोऽग्ने विश्वरूप ँ संव्ययस्व विभावसो।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, वस्त्रोपवस्त्रं समर्पयामि। तदन्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानास्ते आचमनीयं समर्पयामि।

चन्दन

ॐ त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, चन्दनं समर्पयामि।

अक्षत

ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रिया ऽअधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मतीयोजान्विन्द्र ते हरी।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, अक्षतं समर्पयामि।

कुमकुम

जातीपुष्पसमं रक्तं मुखकान्तिविवर्धकम्।
कुमकुमं रक्तवर्णं ते देवि भाले ददाम्यहम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, कुमकुमं समर्पयामि।

पुष्प एवं पुष्पमाला

ॐ ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा ऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, पुष्पं पुष्पमालां समर्पयामि।

सिन्दूर

ॐ सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसंनिभम्।
अर्पितं ते मया भक्त्या प्रसीद परमेश्वरि।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, सिन्दूरं समर्पयामि।

अबीर-गुलाल आदि नाना परिमल द्रव्य

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाँ्स परि पातु विश्वतः।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, नाना परिमल द्रव्याणि समर्पयामि।

सुगन्धिद्रव्य

ॐ दिव्यगन्धसमायुक्तं महापरिमलाद्भुतम्।
गन्धद्रव्यमिदं भक्तया दत्तं वै परिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, सुगन्धिद्रव्यं समर्पयामि।

धूप

ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः।
देवानामसि वह्नितम ँ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, धूपम् आघ्रापयामि।

दीप

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चःस्वाहा।।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, दीपं दर्शयामि।

हस्तप्रक्षालन

'ॐ हृषीकेशाय नमः' कहकर हाथ धो लें।

नैवेद्य

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्राँत्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, नैवेद्यं निवेदयामि।
नैवेद्यान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

ऋतुफल

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुंचन्त्व ँ हसः।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः,
ऋतुफल समर्पयामि।
फलान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

करोद्वर्तन

ॐ अँ्शुना ते अँ्शुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, करोद्वनार्थे चन्दनं समर्पयामि।

ताम्बूल

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, मुखवासार्थे एलालवंग पूंगीफल सहितम् ताम्बूलं समर्पयामि।

दक्षिणा

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि।

आरती

ॐ इदँ्हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरँ्सर्वगणँ्स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि।।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु घत्त।।
ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, आरार्तिकं समर्पयामि।

पुष्पांजलि

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवत्यै श्रीगायत्री देव्यै नमः, मंत्र पुष्पांजलिं समर्पयामि।

प्रदक्षिणा

ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः।
तेषा ँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।

करन्यास

(1) ॐ भू अँगुष्ठाभ्यां नमः(दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श करें) (2) ॐ भुवः तर्जनीभ्यां नमः (दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों तर्जनी अँगुलियों का स्पर्श करें) (3) ॐ स्वः मध्यमाभ्यां नमः(अँगूठों से मध्यमा अँगुलियों का स्पर्श करें) (4) ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं अनामिकाभ्यां नमः (अँगूठों से अनामिका अँगुलियों का स्पर्श करें) (5) ॐ भर्गोदेवस्य धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां नमः (अँगूठों से कनिष्ठिका अँगुलियों का स्पर्श करें)(6) ॐ धियो यो नः प्रचोदयात करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः (हथेलियों और उनके पृष्ठभागों का स्पर्श)

षड्ंगन्यास

गायत्री-मन्त्र के जप के पूर्व षड्ंगन्यास करने का विधान है। अतः आगे लिखे एक-एक मन्त्र को बोलते हुए उन-उन अंगो का स्पर्श करें-

(1) ॐ भू हृदयाय नमः(दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों से हृदय का स्पर्श करें) (2) ॐ भूः शिरसे स्वाहा(मस्तक का स्पर्श करें) (3) ॐ भुवः शिखायै वषट्(शिखा का अँगूठे से स्पर्श करें) (4) ॐ

तत्सवितुर्वरेण्य कवचाय हुम् (दाहिने हाथ की अँगुलियों से बायें कंधे का और बायें हाथ की अँगुलियों से दायें कंधे का स्पर्श करें) (5) ॐ भर्गोदेवस्य धीमहिः नेत्राभ्यां वौषट्(आँखों का स्पर्श करें)(6) ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् अस्त्राय फट्(बायें हाथ की हथेली पर दायें हाथ को सिर से घुमाकर मध्यमा और तर्जनी से ताली बजायें)

माला पूजन

'ॐ ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मंत्र से माला की पूजा करके प्रार्थना करें–

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद् मम सिद्धये।।

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

गायत्री हृदय

विनियोगः–ॐ अस्य श्रीगायत्रीहृदयस्य नारायण-ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, परमेश्वरी गायत्री देवता, गायत्रीहृदयजपे विनियोगः।

द्यौमूर्ध्नि दैवतम्। दन्तपङ्क्तावश्विनौ। उभे सन्ध्ये चोष्ठौ। मुखमग्निः। जिह्वा सरस्वती। ग्रीवायं तु बृहस्पतिः। सतनयोर्वसवोऽष्टौ। बाह्वोर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशमुदरम्। नाभावन्तरिक्षम्। कट्योरिन्द्राग्नी। जघने विज्ञानधनः प्रजापतिः। कैलाशमलये उरः। विश्वेदेवा जान्वोः। जङ्घायां कौशिकः। गुह्यमयने। उरूपितरः। पादौ पृथ्वी। वनस्पतयोऽङ्गुलिषु। ऋषयो रोमाणि। नखानि मुहूर्त्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ् मांसम् ऋतवः। संवत्सरा वै निमिषम्। अहोरात्रावादित्यश्चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ॐ तत्पूर्वा जयाय नमः। तत्प्रातरादित्याय नमः। तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं नाशयति। सायं-प्रातरधीयानोऽपापो भवन्ति। सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति। सवैर्दिवैर्ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात् पूतो भवति। अभक्ष्य-भक्षणात् पूतो भवति। अभोज्य-भोजनात् पूतो भवति। अचोष्य-चोषणात् पूतो भवति। असाध्य-साधनात् पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रह-शतसहस्रात पूतो भवति। सर्वप्रतिग्रहात् पूतो भवति। पंक्तिदूषणात् पूतो भवति। अनृतवचनात् पूतो भवति। अथाऽब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेनाऽधीतेन ऋतुसहस्रेणेष्टं भवति। षष्टिशत-सहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयेत्। तस्य सिद्धिर्भवति।

य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यते, इति। ब्रह्मलोके महीयते। इत्याह भगवान् श्रीनारायणः।

जप की चौबीस मुद्राएँ

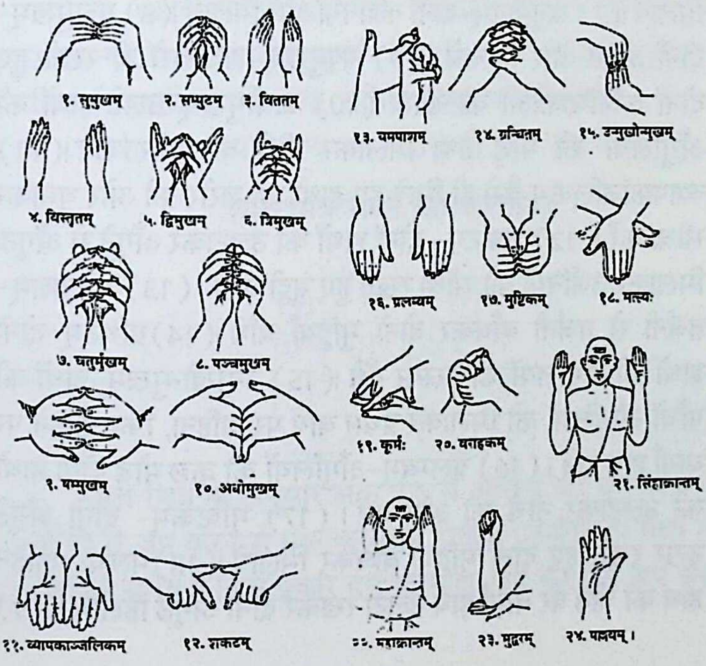

सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्पंचमुखं तथा।।
षण्मुखाऽधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं चोन्मुखोन्मुखम्।।
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यः कूर्मो वराहकम्।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा।।
एता मुद्राश्चतुर्विंशज्जपादौ परिकीर्तिता।।

(1) सुमुखम्- दोनों हाथों की अँगुलियों को मोड़कर परस्पर मिलायें। (2) सम्पुटम् दोनों हाथों को फुलाकर मिलायें। (3) विततम्- दोनों हाथों की अँगुलियाँ परस्पर सामने करें। (4) विस्तृतम्- हाथों की अँगुलियाँ खोलकर दोनों को कुछ अधिक अलग करें।(5) द्विमुखम्-दोनों हाथों की कनिष्ठिका से कनिष्ठिका तथा अनामिका से अनामिका मिलायें। (6) त्रिमुखम्-पुनः दोनों मध्यमाओं को मिलायें।(7) चतुर्मुखम्-दोनों तर्जनियाँ और मिलायें।(8) पंचमुखम्- दोनों अँगूठे और मिलायें। (9) षण्मुखम्-हाथ वैसे ही रखते हुए दोनों कनिष्ठिकाओं को खोलें।(10) अधोमुखम्-उलटे हाथों की अँगुलियों को मोड़े तथा मिलाकर नीचे की ओर करे।(11) व्यापकांजलिकम् वैसे ही मिले हुए हाथों को शरीर की ओर घुमाकर सीधा करें।(12) शकटम्- दोनों हाथों को उलटाकर अँगूठे से अँगूठा मिलाकर तर्जनियों को सीधा रखते हुए मुट्ठी बाँधे। (13) यमपाशम्- तर्जनी से तर्जनी बाँधकर दोनों मुट्ठियाँ बाँधे।(14)ग्रथितम्-दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर गूँथे।(15) उन्मुखोन्मुखम्-हाथों की पाँचों अँगुलियों को मिलाकर प्रथम बायें पर दाहिना, फिर दाहिने पर बायाँ हाथ रखें। (16) प्रलम्बम्-अँगुलियों को कुछ मोड़ दोनों हाथों को उलटाकर नीचे की ओर करें। (17) मुष्टिकम्- दोनो अँगूठे ऊपर रखते हुए दोनों मुट्ठियाँ बाँधकर मिलायें।(18)मत्स्यः-दाहिने हाथ की पीठ पर बायाँ हाथ उलटा रखकर दोनों अँगूठे हिलाये।(19)

कूर्मः- सीधे बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठका को मोड़कर उलटे दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका को उन तीनों अँगुलियों के नीचे रखकर तर्जनी पर दाहिनी कनिष्ठिका का और बायें अँगूठे पर दाहिनी तर्जनी रखें। (20) वराहकम्- दाहिनी तर्जनी को बायें अँगूठे से मिला, दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर बाँधें। (21) सिहांक्रान्तम्-दोनों हाथों को कानों के समीप करें। (22) महाक्रान्तम्-दोनों हाथों की अँगुलियों को कानों के समीप करें। (23) मुद्गरम्- मुट्ठी बाँध, दाहिनी कुहनी बायीं हथेली पर रखें। (24) पल्लवम्-दाहिने हाथ की अँगुलियों को मुख के सम्मुख हिलायें।

गायत्री-मंत्र का विनियोग- इसके बाद गायत्री मंत्र के जप के लिये विनियोग पढ़े-

ऊँकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, ऊँभूर्भुवः स्वरिति महाव्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टु-भश्छन्दांसि अग्निवायुसूर्या देवताः, ॐ तत्त्ववितुरित्यस्य विश्वमित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

इसके बाद गायत्री मन्त्र का जितना हो सके जप करें।

शक्तिमंत्र जपने की करमाला

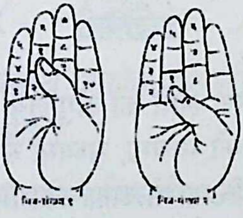

पहले चित्र के अनुसार अंक एक से आरम्भ कर दस अंक तक अँगूठे से जप करने से एक करमाला होती है। तर्जनी का मध्य तथा अग्रपर्व सुमेरु है। इस प्रकार दस करमाला जप करने से जप संख्या

एक सौ हो जायेगी, पश्चात् दूसरे चित्र के अनुसार अंक 1 से आरम्भ कर अंक 8 तक जप करने से 108 की एक माला होती है।

गायत्री मंत्र

"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

जप के बाद की आठ मुद्राएँ दिखायें-

सुरभिर्ज्ञानवैराग्ये योनिः शंखोऽथ पंकजम्।
लिंगनिर्वाणमुद्राश्च जपान्तेऽष्टौ प्रदर्शयेत्।।

(1) **सुरभिः**-दोनों हाथों की अँगुलियाँ गूँथकर बायें हाथ की तर्जनी से दाहिने हाथ की मध्यमा, मध्यमा से तर्जनी, अनामिका से कनिष्ठिका और कनिष्ठिका से अनामिका मिलायें। (2) **ज्ञानम्**-दाहिने हाथ की तर्जनी से अँगूठा मिलाकर हृदय में इसी प्रकार बायाँ हाथ बायें घुटने पर सीधा रखे। (3) **वैराग्यम्**-दोनों तर्जनियों से अँगूठे मिलाकर घुटनों पर सीधा रखें। (4) **योनिः** दोनों मध्यमाओं

के नीचे से बायीं तर्जनी के दोनों मध्यमाओं को ऊपर रखें। (5) **शंखः** 'बायें अँगूठे को दाहिनी मुट्ठी में बाँध, दाहिने अँगूठे से बायीं अंगुलियों को मिलायें। (6) **पंकजम्**-दो हाथो के अँगूठे तथा अँगुलियों को मिलाकर ऊपर की ओर करें। (7) **लिंगम्**-दाहिनें अँगूठे को सीधा रखते हुए दोनों हाथों की अंगुलियों को गूँथकर बायाँ अँगूठा दाहिने अँगूठे के जड़ के ऊपर रखें। (8) **निर्वाणम्**-उलटे बायें हाथ पर दाहिना हाथ सीधा रख, अँगुलियों को परस्पर गूँथ, दोनों हाथ अपनी ओर घुमाकर दोनों तर्जनियों को सीधा कान के समीप करें।

सूर्य प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे।।

भगवान् को जप का अर्पण-अन्त में भगवान् को यह वाक्य बोलते हुए जप निवेदित करे- अनेन गायत्रीजपकर्मणा सर्वान्तर्यामी भगवान् नारायणः प्रीयतां न मम।

गायत्री देवी का विसर्जन- निम्नलिखित विनियोग के साथ आगे बताये गये मंत्र से गायत्री देवी का विसर्जन करें।

विनियोग

'उत्तमे शिखरे' इत्यस्य वामदेव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः गायत्री देवता गायत्रीविसर्जने विनियोगः।

गायत्री - विसर्जन -मंत्र

ॐ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि! यथासुखम्।।

समर्पण

'अनेनगायत्रीजपाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरःप्रीयतां न मम। ॐ तत्सत् श्रीब्रह्मार्पणमस्तु।' फिर भगवान् का स्मरण करें-

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।।
श्रीविष्णवे नमः, श्रीविष्णवे नमः, श्रीविष्णवे नमः।।
श्रीविष्णुस्मरणात् परिपूर्णतास्तु।

अध्याय
१४
गायत्री सहस्रनाम स्तोत्र

गायत्री-सहस्त्रनाम स्तोत्र

अनन्त शक्तियों से निहित माता गायत्री दिव्य ईश्वरीय शक्तियों का एक पुंज है। वैसे तो सहस्त्र एक हजार को कहते हैं, किन्तु शास्त्रों में अनन्त संख्या के लिये भी सहस्त्र शब्द का प्रयोग होता है। हजार शक्तियों के नाम उनके गुण के अनुसार नीचे दिये गये हैं, जो प्राचीन ग्रंथों में ''गायत्री सहस्त्रनाम'' शीर्षक से अभिहित हैं। इस शक्ति पुंज के भीतर क्या-क्या विशेषतायें समाहित हैं उन्हें जानकर और उन शक्तियों के सहयोग से विशेष लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सहस्त्रनाम का श्रद्धापूर्वक पाठ करने का बड़ा महात्म्य है। श्री नारायण उवाच-

साधु-साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयाऽनघ।
श्रृणु वंक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्त्रकम्।
नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम्।। 1।।
सृष्ट्यादौ यद् भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते।
अष्टोत्तरसहस्त्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्त्तितः।। 2।।
छन्दोऽनुष्टुप्तथा देवी गायत्रीं देवता स्मृताः।
हलो बीजानि तस्यैव स्वराःशक्तय ईरिताः।। 3।।
अंगन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै।। 4।।
सूर्य्यमण्डलमध्यवासनिरतां श्वेतप्रभारंजिताम्।
रक्त श्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां कुमारीमिमाम्।। 5।।
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डांबुजां।
पद्माक्षीं च वरस्त्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे।। 6।।
अचिंत्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी।
अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिता चापराजिता।। 7।।

अणिमादिगुणाधाराप्यर्कमंडलसंस्थिता।
अजराऽजाऽपरा धर्मा अक्षरसूत्रधराऽधरा।। 8।।
अकारादिक्षकारांताप्यरिषड्वर्गभेदिनी।
अंजनाद्रिप्रतीकाशाप्यंजनाद्रिनिवासिनी।। 9।।
अदितिश्चाजपा विद्याप्यरविन्दनिभेक्षणा।
अन्तर्बहिः स्थिताऽविद्याध्वंसिनी चान्तरात्मिका।। 10।।
अजा चाजमुखा वासाप्यरविंदनिभानना।
अर्द्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमण्डलमर्दिनी।। 11।।
असुरघ्नी ह्यमावास्याप्यलक्ष्मीघ्न्यत्यजार्चिता।
आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना।। 12।।
आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता।
आचार्या वर्त्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी।। 13।।
आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता।
आधारनिलयाधारा चाकाशांतनिवासिनी।। 14।।
आद्याक्षरसमायुक्ता चांतराकाशरूपिणी।
आदित्यमण्डलगता चान्तरध्वांतनाशिनी।। 15।।
इन्दिरा चेष्टदा चेष्टा चेंदीवरनिभेक्षणी।
इरावती चेन्द्रपदा चेन्द्राणी चेन्दुरूपिणी।। 16।।
इक्षुकोदण्डसंयुक्ता चेषुसन्धानकारिणी।
इन्द्रनीलसमाकारा चेडापिंगलरूपिणी।। 17।।
इन्द्राक्षी चेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता।
उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना।। 18।।
उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा।
ऊर्ध्वा चाप्यूर्ध्वकेशी चाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी।। 19।।
ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमाला वाग्ग्रन्थदायिनी।
ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता।। 20।।

ॠग्वेदा ॠणहर्त्रीं च ॠषिमण्डलचारिणी।
ॠद्धिदा ॠजुमार्गस्था ॠजुधर्मा ॠतुप्रदा।। 21।।
ॠग्वेदनिलया ॠज्वी लुप्तधर्म प्रवर्त्तिनी।
लूतारिवरसम्भूता लूतादिविषहारिणी।। 22।।
एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता।
ऐन्द्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा।। 23।।
ओंकार ह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी।
और्वा ह्यौषधसम्पन्ना औपासनफलप्रदा।। 24।।
अण्डमध्यस्थिता देवी च कारमनुरूपिणी।
कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी।। 25।।
कमला कामिनी कान्ता कामदा कलकंठिनी।
करिकुम्भस्तनभरा करवीरसुवासिनी।। 26।।
कल्याणी कुण्डलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी।
कुरुविन्ददलाकारा कुण्डली कुमुदालया।। 27।।
कालजिह्वा करालास्या कालिका कालरूपिणी।
कमनीयगुणा कान्तिः कलाधारा कुमुद्वती।। 28।।
कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभंजिनी।
कौमारी करुणापांगी ककुबन्ता करिप्रिया।। 29।।
केसरी केशवनुता कदम्ब कुसुमप्रिया।
कालिन्दी कालिका कांची कलशोद्भवसंस्तुता।। 30।।
काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती।
कुमारी कुण्डनिलया किराती करिवाहना।। 31।।
कैकेयी कोकिलालापा केतकी कुसुमप्रिया।
कमंडलुधरा काली कर्मनिर्मूलकारिणी।। 32।।
कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमंगला।
कस्तूरीतिलका कम्रा करीन्द्रगमना कुहूः।। 33।।

कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया।
कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा।। 34।।
खड्ग खेटकरा खर्वा खेचरीखगवाहना।
खट्वांगधारिणी ख्याता खगराजोपरिस्थिता।। 35।।
खलघ्नी खंडितजरा खंडाख्यानप्रदायिनी।
खंडेन्दुतिलका गंगा गणेशगुहपूजिता।। 36।।
गायत्री गोमती गीता गान्धारी गानलोलुपा।
गौतमी गामिनी गाधा गन्धर्वाप्सरसेविता।। 37।।
गोविन्दचरणाक्रान्ता गुणत्रयविभाविता।
गन्धर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहनागमी।। 38।।
गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी।
गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी।। 39।।
गिरिजा गुह्यमातंगी गरुडध्वजवल्लभा।
गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा।। 40।।
गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमण्डलवर्त्तिनी।
घर्मदा घनदा घण्टा घोरदानवमर्दिनी।। 41।।
घृणिमंत्रमयी घोषा घनसम्पातदायिनी।
घण्टारवप्रिया घ्राणा घृणिसन्तुष्टकारिणी।। 42।।
घनारिमण्डला घूर्णा घृताची घनवेगिनी।
ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी।। 43।।
चटुला चण्डिकाचित्राचित्रमाल्यविभूषिता।
चतुर्भुजा चारुदन्ता चातुरी चरितप्रदा।। 44।।
चूलिका चित्रवस्त्रान्ता चन्द्रमः कर्णकुण्डला।
चन्द्रहासा चारुदात्रीं चकोरी चन्द्रहासिनी।। 45।।
चन्द्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चण्डिका।
चञ्चद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी।। 46।।

चारुचन्दनलिप्तांगी चंचच्चामरवीजिता।
चारुमध्या चारुगतिश्चन्दिला चन्द्ररूपिणी।। 47।।
चारुहोमप्रिया चार्वा चरिता चक्रबाहुका।
चन्द्रमंडलमध्यस्था चन्द्रमंडलदर्पणा।। 48।।
चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी।
चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चन्दनप्रिया।। 49।।
चोदयित्री चिरप्रज्ञाचातका चारुहेतुकी।
छत्रयाता छत्रधरा छायाछन्दः परिच्छदा।। 50।।
छायादेवी छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी।
छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता छिद्रोपद्रवभेदिनी।। 51।।
छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया।
जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी।। 52।।
जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता।
जम्बूद्वीपवती ज्वाला जयन्ती जपशालिनी।। 53।।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया।
जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगतीजरा।। 54।।
जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी।
ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा।। 55।।
जिताक्रान्तमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता।
ज्वलन्ती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिंग्मुखी।। 56।।
जम्भिनी जृंभणा जृंभा ज्वलन्माणिक्यकुण्डला।
झिंझिका झणनिर्घोषा झंझामारुतवेगिनी।। 57।।
झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता।
टंकबाणसमायुक्ता टंकिनी टंकभेदिनी।। 58।।
टंकीगणकृताघोषा टंकनीयमहोरसा।
टंकारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी।। 59।।

डामरी डाकिनी डिंभा डुंडुमारैकनिर्जिता।
डामरीतन्त्रमार्गस्था डमड्डुमरुनादिनी।।60।।
डिण्डीरवसहा डिम्भलसत्क्रीडापरायणा।
ढुंढिविघ्नेशजननी ढक्काहस्ता ढिलिव्रजा।।61।।
नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी।
त्रिगुणा त्रिपदा तन्त्री तुलसी तरुणातरुः।।62।।
त्रिविक्रमपदाक्रान्ता तुरीयपदगामिनी।
तरुणादित्यसंकाशा तामसी तुहिनातुरा।।63।।
त्रिकालज्ञानसम्पन्ना त्रिवली च त्रिलोचना।
त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुंगा तुरंगवदना तथा।।64।।
तिमिंगिलगिला तीव्रा त्रिस्त्रोता तामसादिनी।
तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा तनुमध्या त्रिविष्टपा।।65।।
त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापिनी।
तांटकिनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी।।66।।
तन्तुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया।
तिलहोमप्रिया तीर्थातमालकुसुमाकृतिः।।67।।
तारका त्रियुता तन्वी त्रिशंकुपरिवारिता।
तलोदरी तिलोभूषा ताटंक प्रियवादिनी।।68।।
त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः।
तप्तकांचनसंकाशा तप्तकांचनभूषणा।।69।।
त्रैयम्बका त्रिवर्णा च त्रिकालज्ञानदायिनी।
तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुम्बुरुस्तुता।।70।।
तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभंगी तनुवल्लरिः।
थात्कारी थावरा थांता दोहिनी दीनवत्सला।।71।।
दानवान्तकरी दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी।
देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुन्दुभिस्वना।।72।।

देवयानी दुरावासा दारिद्र्यभेदिनी दिवा।
दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी।। 73।।
दण्डकारण्यनिलया दण्डिनी देवपूजिता।
देववन्द्या दिविषदा द्वेषिणी दानवाकृतिः।। 74।।
दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी।
धात्री धनुर्धुरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी।। 75।।
धुरन्धरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी।
धर्मशीला धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा।। 76।।
धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा।
धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी।। 77।।
नन्दा नन्दप्रिया निद्रा नृनुता नन्दनात्मिका।
नर्मदा नलिनी नीला नीलकण्ठसमाश्रया।। 78।।
नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः।
निराधारानिरुपमा नित्यशुद्धा निरंजना।। 79।।
नादबिन्दुकलातीता नादबिन्दुकलात्मिका।
नृसिंहिनी नगधरा नृपनागविभूषिता।। 80।।
नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा।
निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी।। 81।।
नानाज्योतिः समाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका।
नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी।। 82।।
नन्दजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी।
नवनीतिप्रिया नारी नीलजीमूतनिःस्वना।। 83।।
निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी।
नामावलिर्निशुम्भघ्नी नागलोकनिवासिनी।। 84।।
नवजाम्बूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता।
नूपुराक्रांतचरणा नरचित्त प्रमोदिनी।। 85।।

निमग्नारक्तनयना निर्घातसमनिस्वना।
नन्दनोद्याननिलया निर्व्यूहोपरिचारिणी।। 86।।
पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा।
पंचकोश विनिर्मुक्ता पंचपातकनाशिनी।। 87।।
परचित्तविधानज्ञा पंचिका पंचरूपिणी।
पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजः प्रकाशिनी।। 88।।
पुराणी पौरुषी पुण्या पुण्डरीकनिभेक्षणा।
पातालतलनिर्मग्ना प्रीता प्रीतिविवर्धिनी।। 89।।
पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी।
प्रजापतिः परिश्रान्ता पर्वतस्तनमण्डला।। 90।।
पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसम्भवा।
पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी।। 91।।
पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरन्ध्री पुरवासिनी।
पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया।। 92।।
पतिव्रता पवित्रांगी पुष्पहासपरायणा।
प्रज्ञावती सुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी।। 93।।
पट्टिपाशधरा पंक्तिः पितृलोकप्रदायिनी।
पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्त्ति विनाशिनी।। 94।।
प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामह परिग्रहा।
पुण्डरीकपुरावासा पुण्डरीकसमानना।। 95।।
पृथुजंघा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी।
प्रवालशोभा पिंगाक्षी पीतवासाः प्रचापला।। 96।।
प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः।
पंचवर्णा पंचवांणी पंचिका पंजरस्थिता।। 97।।
परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परागतिः।
पराकाष्ठा परेशानी पाविनी पावकद्युतिः।। 98।।

पुण्यप्रदा परच्छिद्या पुष्पहासा पृथूदरी।
पीतांगी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी।। 99।।
पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया।
पंचभक्षप्रियाचारा पूतना प्राणघातिनी।। 100।।
पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता।
पंचांगी च पराशक्तिः परमाह्लादकारिणी।। 101।।
पुष्पकांडस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा।
पानप्रिया पंचशिखा पन्नगोपरिशायिनी।। 102।।
पंचमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी।
पुराणन्यायमीमांसा पाटली पुष्पगन्धिनी।। 103।।
पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा-
प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी।। 104।।
फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः।
फणीन्द्रभोगशयना फणिमंडलमंडिता।। 105।।
बालबाला बहुमता बालातपनिभांशुका।
बलभद्रप्रिया बन्द्या वडवा बुद्धिसंस्तुता।। 106।।
बन्दी देवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया।
बांधवी बोधिता बुद्धिर्बन्धूककुसुमप्रिया।। 107।।
बालभानुप्रभाकरा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता।
बृहस्पतिस्तुता वृन्दा बृन्दावनविहारिणी।। 108।।
बलाकिनी बिलाहारा बिलावासा बहूदका।
बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका।। 109।।
बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी।
बिन्दुनादकलातीता बिन्दुनादस्वरूपिणी।। 110।।
बद्धगोधांगुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी।
बृन्दारका बृहत्स्कन्धा बृहती बाणपातिनी।। 111।।

बृन्दाध्यक्षा बहुनुता बनिता बहुविक्रमा।
बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता।। 112।।
बोधिद्रूमनिजावासा बडिस्था बिन्दुदर्पणा।
बाला बाणासनवती बडवानलवेगिनी।। 113।।
ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था ब्रह्मकंकणसूत्रिणी।
भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी।। 114।।
भद्रकाली भुजंगाक्षी भारती भारताशया।
भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी।। 115।।
भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा।
भूतावासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिता।। 116।।
भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा।
भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा।। 117।।
भर्गात्मिका भीमवती भवबन्ध-विमोचिनी।
भजनीया भूतधात्री भंजिता भुवनेश्वरी।। 118।।
भुजंगवलया भीमा भेरुण्डा भागधेयिनी।
मता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया।। 119।।
महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना।
मायातीता मधुमती मधुमासा मधुद्रवा।। 120।।
मानवी मधुसम्भूता मिथिलापुरवासिनी।
मधुकैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी।। 121।।
मन्दोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया।
महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी।। 122।।
माऽहेन्द्री मेरुतनया मन्दारकुसुमार्चिता।
मंजुमंजलीरचरणा मोक्षदा मंजुभाषिणी।। 123।।
मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता।
मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा।। 124।।

महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता।
मातृका मिहिराभासा मुकुन्दपदविक्रमा।। 125।।
मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी।
मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी।। 126।।
योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया।
यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी।। 127।।
यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराजप्रसूतिनी।
यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा।। 128।।
यकारादिहकारान्ता याजुषी यज्ञरूपिणी।
यामिनी योगनिरता यातुधान-भयंकरी।। 129।।
रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः।
रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया।। 130।।
रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना।
राकेशी रूपसम्पन्ना रत्नसिंहासनस्थिता।। 131।।
रक्तमाल्यांबरधरा रक्तगन्धानुलेपना।
राजहंससमारूढा रम्भा रक्तबलिप्रिया।। 132।।
रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला।
रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका।। 133।।
रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी।
रामचन्द्रपदाक्रान्ता रावणच्छेदकारिणी।। 134।।
रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा।
लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिंगधारिणी।। 135।।
लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोकविश्रुता।
लज्जा लम्बोदरीदेवी ललना लोकधारिणी।। 136।।
वरदा वन्दिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः।
वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी।। 137।।

विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता।
वारुणी वेणुसम्भूता वीतिहोत्रा विरूपिणी।। 138।।
वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया।
विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा।। 139।।
वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी।
वेदाक्षरपरीतांगी वाजपेयफलप्रदा।। 140।।
वासवी वामजननी वैकुण्ठनिलयावरा।
व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता।। 141।।
शाकम्भरी शिवा शान्ता शारदा शरणागतिः।
शातोदरी शुभाचारा शुम्भासुर विमर्दिनी।। 142।।
शोभावती शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी।
शोणाशुभाशयाशुभ्राशिरः सन्धानकारिणी।। 143।।
शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना।
शरभा शूलिनी शुद्धा शबरी शुकवाहना।। 144।।
श्रीमती श्रीधरानन्दा श्रवणानन्ददायिनी।
शर्वाणी शर्वरीवन्द्या षड्भाषा षड्ऋतुप्रिया।। 145।।
षडाधारस्थिता देवी षण्मुखप्रियकारिणी।
षडंगरूपसुमतिः सुरासुरनमस्कृता।। 146।।
सरस्वती सदाधारा सर्वमंगलकारिणी।
सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसम्भवा।। 147।।
सर्ववासा सदानन्दा सुस्तनी सागराम्बरा।
सर्वैश्वर्य्यप्रिया सिद्धिः साधुबन्धुपराक्रमा।। 148।।
सप्तर्षिमंडलगता सोममंडलवासिनी।
सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता।। 149।।
सर्वोत्तुंगा संगहीना सद्गुणा सकलेष्टदा।
सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः।। 150।।

हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी।
क्षौमवस्त्रपरीतांगी क्षीराब्धितनया क्षमा।। 151।।
गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती।
वेदगर्भा वरारोहा श्री गायत्री पराम्बिका।। 152।।
इति साहस्त्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद।
पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासम्पत्तिदायकम्।। 153।।
एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि।
अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह।। 154।।
जपं कृत्वा होमपूजां ध्यानं कृत्वा विशेषतः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः।। 155।।
सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै।
भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बान्धवेभ्यो न दर्शयेत्।। 156।।
यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्यन कस्यचित्।
चंचलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति।। 157।।
इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम्।। 158।।
मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम्।
रोगाद्विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्।। 159।।
ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयिनो नराः।
गुरुतल्पगतो वापि पातकान्मुच्यते सकृत्।। 160।।
असत्प्रतिग्रहाच्चैवाभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः।
पाखण्डानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते।। 161।।
इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव।
ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः।। 162।।

(गायत्री महाविज्ञान)

इस "गायत्री सहस्त्रनामस्तोत्र" का जो नियमित पाठ करते हैं, वे सभी तरह के कष्टों से मुक्ति पाकर मनोभीष्ट फल, सुख-शांति और परम् पद मुक्तिधाम को प्राप्त करते हैं।

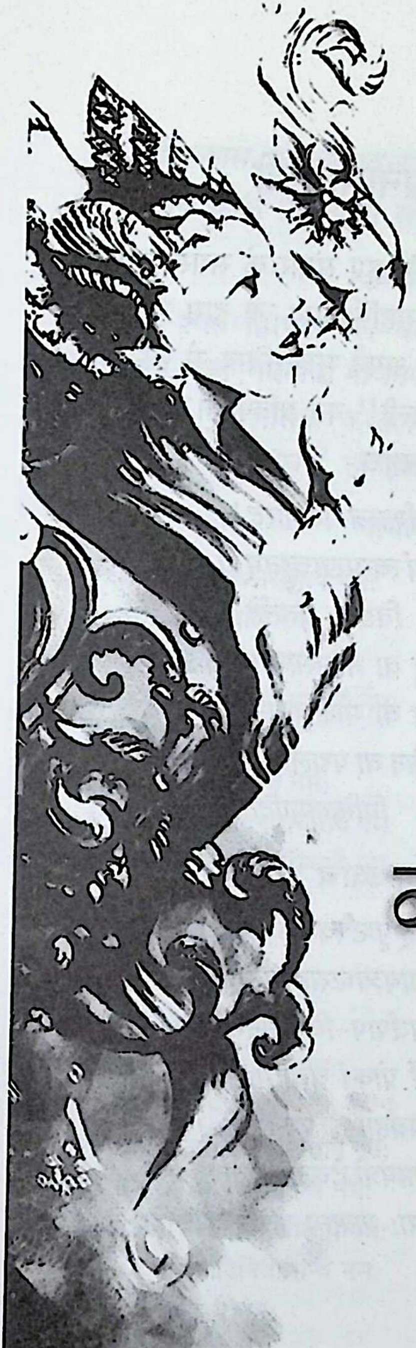

अध्याय १५

गायत्री सहस्त्र नामावली

गायत्री-सहस्रनामावली

मायामोह के महाजंजाल में फँसे हुए संसार के समस्त प्राणियों के परम् कल्याण की भावना से महर्षि नारद जी द्वारा पूछे जाने पर भगवान् श्री नारायण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से इस परम् हितकारिणी ''गायत्री सहस्रनामावली'' का प्रतिपादन किया है-

नारद उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ! सर्वशास्त्र-विशारद्!।
श्रुति-स्मृति-पुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम्!।। 1।।
सर्वपापहरं देव! येन विद्या प्रवर्तते!।
केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम्।। 2।।
ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मोक्षसाधनम्।
ऐहिका-ऽऽमुष्मिकफलं केन वा पद्मलोचन!।। 3।।
वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः!

श्रीनारायण उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ! सम्यक् पृष्टं त्वयाऽनघ!।। 4।।
श्रृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम्।
नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपाप-विनाशनम्।। 5।।
सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते।
अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तित।। 6।।
छन्दो-ऽनुष्टुप् तथा देवी गायत्री देवता स्मृता।
हलो बीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः।। 7।।

अंगन्यास-करन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः ।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ।।8।।

ध्यानम्

रक्त-श्वेत-हिरण्य-नील-धवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां
रक्तां-रक्त-नवस्रजां मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ।
गायत्रीं कमलासनां करतल-व्यानद्ध-कुण्डाम्बुजा
पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ।।9।।

नामावली

1. ॐ अचिन्त्यलक्षणायै नमः
2. ॐ अव्यक्तायै नमः
3. ॐ अर्धमातृमहेश्वर्यै नमः
4. ॐ अमृतार्णवमध्यस्थायै नमः
5. ॐ अजितायै नमः
6. ॐ अपराजितायै नमः
7. ॐ अणिमादिगुणाधारायै नमः
8. ॐ अर्कमण्डलसंस्थितायै नमः
9. ॐ अजरायै नमः
10. ॐ अजायै नमः
11. ॐ अपरायै नमः
12. ॐ अधर्मायै नमः
13. ॐ अक्षसूत्रधारायै नमः
14. ॐ अधरायै नमः
15. ॐ अकारादिक्षकारान्तायै नमः
16. ॐ अरिषड्वर्गभेदिन्यै नमः
17. ॐ अंजनादिप्रतीकाशायै नमः
18. ॐ अंजनाद्रिनिवासिन्यै नमः
19. ॐ आदित्यै नमः
20. ॐ अजपायै नमः
21. ॐ अविद्यायै नमः
22. ॐ अरविन्दनिभेक्षणायै नमः
23. ॐ अन्तर्वहिःस्थितायै नमः
24. ॐ अविद्याध्वंसिन्यै नमः
25. ॐ अन्तरात्मिकायै नमः
26. ॐ अजायै नमः
27. ॐ अजमुखवासायै नमः
28. ॐ अरविन्दनिभाननायै नमः
29. ॐ अर्धमात्रायै नमः
30. ॐ अर्थदानज्ञायै नमः
31. ॐ अरिमण्डलमर्दिन्यै नमः
32. ॐ असुरघ्न्यै नमः
33. ॐ अमावास्यायै नमः
34. ॐ अलक्ष्मीघ्नन्त्यै नमः
35. ॐ अजार्चितायै नमः
36. ॐ आदिलक्ष्म्यै नमः
37. ॐ आदिशक्तयै नमः
38. ॐ आकृत्यै नमः
39. ॐ आयताननायै नमः
40. ॐ आदित्यपदवीचारायै नमः

41. ॐ आदित्यपरिसेवितायै नमः
42. ॐ आचार्यायै नमः
43. ॐ आवर्तनायै नमः
44. ॐ आचारायै नमः
45. ॐ आदिमूर्तिनिवासिन्यै नमः
46. ॐ आग्नेय्यै नमः
47. ॐ आमर्यै नमः
48. ॐ आद्यायै नमः
49. ॐ आराध्यायै नमः
50. ॐ आसनस्थितायै नमः
51. ॐ आधारनिलयायै नमः
52. ॐ आधारायै नमः
53. ॐ आकाशान्तनिवासिन्यै नमः
54. ॐ आद्याक्षरसमायुक्तायै नमः
55. ॐ अन्तराकाशरूपिण्यै नमः
56. ॐ आदित्यमण्डलगतायै नमः
57. ॐ आन्तरध्वान्तनाशिन्यै नमः
58. ॐ इन्दिरायै नमः
59. ॐ इष्टदायै नमः
60. ॐ इष्टायै नमः
61. ॐ इन्दीवरनिभेक्षणायै नमः
62. ॐ इरावत्यै नमः
63. ॐ इन्द्रपदायै नमः
64. ॐ इन्द्राण्यै नमः
65. ॐ इन्दुरूपिण्यै नमः
66. ॐ इक्षुकोदण्डसंयुक्तायै नमः
67. ॐ इषुसन्धानकारिण्यै नमः
68. ॐ इन्द्रनीलसमाकारायै नमः
69. ॐ इडापिंगलरूपिण्यै नमः
70. ॐ इन्द्राक्ष्यै नमः
71. ॐ ईश्वरीदेव्यै नमः
72. ॐ ईहात्रयविवर्जितायै नमः
73. ॐ उमायै नमः
74. ॐ उषायै नमः
75. ॐ उडुनिभायै नमः
76. ॐ उर्वारूकफलाननायै नमः
77. ॐ उडुप्रभायै नमः
78. ॐ उडुमत्यै नमः
79. ॐ उडुपायै नमः
80. ॐ उडुमध्यगायै नमः
81. ॐ उर्ध्वायै नमः
82. ॐ ऊर्ध्वकेश्यै नमः
83. ॐ ऊर्ध्वाधोगतिमेदिन्यै नमः
84. ॐ ऊर्ध्वबाहुप्रियायै नमः
85. ॐ ऊर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिन्यै नमः
86. ॐ ऋतायै नमः
87. ॐ ऋषये नमः
88. ॐ ऋतुमत्यै नमः
89. ॐ ऋषिदेवनमस्कृतायै नमः
90. ॐ ऋग्वेदायै नमः
91. ॐ ऋणहन्त्रयै नमः
92. ॐ ऋषिमण्डलचारिण्यै नमः
93. ॐ ऋद्धिदायै नमः
94. ॐ ऋजुमार्गस्थायै नमः
95. ॐ ऋजुधर्मायै नमः
96. ॐ ऋतुप्रदायै नमः
97. ॐ ऋग्वेदनिलयायै नमः
98. ॐ ऋज्व्यै नमः
99. ॐ लुप्तधर्मप्रवर्तिन्यै नमः

100. ॐ लूतारिवरसंभूतायै नमः
101. ॐ लूतादिविषहारिण्यै नमः
102. ॐ एकाक्षरायै नमः
103. ॐ एकमात्रायै नमः
104. ॐ एकायै नमः
105. ॐ एकैकनिष्ठितायै नमः
106. ॐ ऐन्द्रयै नमः
107. ॐ ऐरावतारुढायै नमः
108. ॐ ऐहिकामुष्मिकप्रदायै नमः
109. ॐ ओंकारायै नमः
110. ॐ ओषध्यै नमः
111. ॐ ओतायै नमः
112. ॐ ओतप्रोतनिवासिन्यै नमः
113. ॐ और्वायै नमः
114. ॐ औषधसम्पन्नायै नमः
115. ॐ औपासनफलप्रदायै नमः
116. ॐ अण्डमध्यस्थितदेव्यै नमः
117. ॐ आःकारमनुरूपिण्यै नमः
118. ॐ कात्यायन्यै नमः
119. ॐ कालरात्र्यै नमः
120. ॐ कामाक्ष्यै नमः
121. ॐ कामसुन्दर्यै नमः
122. ॐ कमलायै नमः
123. ॐ कामिन्यै नमः
124. ॐ कान्तायै नमः
125. ॐ कामदायै नमः
126. ॐ कालकण्ठिन्यै नमः
127. ॐ करिकुम्भस्तनभरायै नमः
128. ॐ करबीरसुवासिन्यै नमः
129. ॐ कल्याण्यै नमः
130. ॐ कुण्डलवत्यै नमः
131. ॐ कुरुक्षेत्रनिवासिन्यै नमः
132. ॐ कुरुविन्ददलाकारायै नमः
133. ॐ कुण्डल्यै नमः
134. ॐ कुमुदालयायै नमः
135. ॐ कालजिह्वायै नमः
136. ॐ करालास्यायै नमः
137. ॐ कालिकायै नमः
138. ॐ कालरूपिण्यै नमः
139. ॐ कमनीयगुणायै नमः
140. ॐ कान्त्यै नमः
141. ॐ कलाधरायै नमः
142. ॐ कुमुद्वत्यै नमः
143. ॐ कौशिक्यै नमः
144. ॐ कमलाकारायै नमः
145. ॐ कामचारप्रभंजिन्यै नमः
146. ॐ कौमार्यै नमः
147. ॐ करुणापाङ्गयै नमः
148. ॐ ककुबन्तायै नमः
149. ॐ करिप्रियायै नमः
150. ॐ केश्यै नमः
151. ॐ केशवनुतायै नमः
152. ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः
153. ॐ कालिन्द्यै नमः
154. ॐ कालिकायै नमः
155. ॐ कांचयै नमः
156. ॐ कलशोर्भवसंस्तुतायै नमः
157. ॐ काममात्रे नमः
158. ॐ क्रतुमत्यै नमः
159. ॐ कामरूपायै नमः

160. ॐ कृपावत्यै नमः
161. ॐ कुमार्यै नमः
162. ॐ कुण्डनिलयायै नमः
163. ॐ किरात्यै नमः
164. ॐ कीरवाहनायै नमः
165. ॐ कैकेय्यै नमः
166. ॐ कोकिलालापायै नमः
167. ॐ केतक्यै नमः
168. ॐ कुसुमप्रियायै नमः
169. ॐ कमण्डलुधरायै नमः
170. ॐ काल्यै नमः
171. ॐ कर्मनिर्मूलकारिण्यै नमः
172. ॐ कलहंसगत्यै नमः
173. ॐ कक्षायै नमः
174. ॐ कृतकौतुकमंगलायै नमः
175. ॐ कस्तूरीतिलकायै नमः
176. ॐ कम्प्रायै नमः
177. ॐ करीन्द्रगमनायै नमः
178. ॐ कुह्वै नमः
179. ॐ कर्पूरलेपनायै नमः
180. ॐ कृष्णायै नमः
181. ॐ कपिलायै नमः
182. ॐ कुहराश्रयायै नमः
183. ॐ कूटस्थायै नमः
184. ॐ कुधरायै नमः
185. ॐ कम्प्रायै नमः
186. ॐ कुक्षिस्थाखिलविष्टपायै नमः
187. ॐ खड्गखेटकरायै नमः
188. ॐ खर्वायै नमः
189. ॐ खेचर्यै नमः
190. ॐ खगवाहनायै नमः
191. ॐ खट्वाङ्गधारिण्यै नमः
192. ॐ ख्यातायै नमः
193. ॐ खगराजोपरिस्थितायै नमः
194. ॐ खलघ्न्यै नमः
195. ॐ खण्डितजरायै नमः
196. ॐ खण्डाख्यानप्रदायिन्यै नमः
197. ॐ खण्डेन्दुतिलकायै नमः
198. ॐ गंगायै नमः
199. ॐ गणेशगुहपूजितायै नमः
200. ॐ गायत्र्यै नमः
201. ॐ गोमत्यै नमः
202. ॐ गीतायै नमः
203. ॐ गान्धार्यै नमः
204. ॐ गानलोलुपायै नमः
205. ॐ गौतम्यै नमः
206. ॐ गामिन्यै नमः
207. ॐ गाधायै नमः
208. ॐ गन्धर्वाऽप्सरसेवितायै नमः
209. ॐ गोविन्दचरणाक्रान्तायै नमः
210. ॐ गुणत्रयविभावितायै नमः
211. ॐ गन्धर्व्यै नमः
212. ॐ गह्वर्यै नमः
212. ॐ गोत्रायै नमः
214. ॐ गिरीशायै नमः
215. ॐ गहनायै नमः
216. ॐ गम्यै नमः
217. ॐ गुहावासायै नमः
218. ॐ गुणवत्यै नमः

219. ॐ गुरुपापप्रणाशिन्यै नमः
220. ॐ गुर्व्यै नमः
221. ॐ गुणवत्यै नमः
222. ॐ गुह्यायै नमः
223. ॐ गोप्तव्यायै नमः
224. ॐ गुणदायिन्यै नमः
225. ॐ गिरिजायै नमः
226. ॐ गुह्यमातंगेयै नमः
227. ॐ गरुडध्वजवल्लभायै नमः
228. ॐ गर्वापहारिण्यै नमः
229. ॐ गोदायै नमः
230. ॐ गोकुलस्थायै नमः
231. ॐ गदाधरायै नमः
232. ॐ गोकर्णनिलयासक्तायै नमः
233. ॐ गुह्यमण्डलवर्तिन्यै नमः
234. ॐ घर्मदायै नमः
235. ॐ घनदायै नमः
236. ॐ घण्टायै नमः
237. ॐ घोरदानवमर्दिन्यै नमः
238. ॐ घृणिमन्त्रमय्यै नमः
239. ॐ घोषायै नमः
240. ॐ घनसम्पातदायिन्यै नमः
241. ॐ घण्टारवप्रियायै नमः
242. ॐ घ्राणायै नमः
243. ॐ घृणिसन्तुष्टिकारिण्यै नमः
244. ॐ घनारिमण्डलायै नमः
245. ॐ घूणायै नमः
246. ॐ घृताच्यै नमः
247. ॐ घनवेगिन्यै नमः
248. ॐ ज्ञानधातुमय्यै नमः
249. ॐ चर्चायै नमः
250. ॐ चर्चितायै नमः
251. ॐ चारुहासिन्यै नमः
252. ॐ चटुलायै नमः
253. ॐ चण्डिकायै नमः
254. ॐ चित्रायै नमः
255. ॐ चित्रमाल्यविभूषितायै नमः
256. ॐ चतुर्भुजायै नमः
257. ॐ चारुदन्तायै नमः
258. ॐ चातुर्यै नमः
259. ॐ चरितप्रदायै नमः
260. ॐ चूलिकायै नमः
261. ॐ चित्रवस्त्रान्तायै नमः
262. ॐ चन्द्रमःकर्णकुण्डलायै नमः
263. ॐ चन्द्रहासायै नमः
264. ॐ चारुदात्र्यै नमः
265. ॐ चकार्यै नमः
266. ॐ चन्द्रहासिन्यै नमः
267. ॐ चन्द्रिकायै नमः
268. ॐ चन्द्रधात्र्यै नमः
269. ॐ चौर्यै नमः
270. ॐ चौरायै नमः
271. ॐ चण्डिकायै नमः
272. ॐ चंचद्वाग्वादिन्यै नमः
273. ॐ चन्द्रचूडायै नमः
274. ॐ चोरविनाशिन्यै नमः
275. ॐ चारुचन्दन-लिप्ताङ्ग्यै नमः
276. ॐ चंचच्चामरवीजितायै नमः
277. ॐ चारुमध्यायै नमः

278. ॐ चारुगत्यै नमः
279. ॐ चन्दिलायै नमः
280. ॐ चन्द्ररूपिण्यै नमः
281. ॐ चारुहोमप्रियायै नमः
282. ॐ चर्वाचरितायै नमः
283. ॐ चक्रबाहुकायै नमः
284. ॐ चन्द्रमण्डलमध्यस्थायै नमः
285. ॐ चन्द्रमण्डलदर्पणायै नमः
286. ॐ चक्रवाकस्तन्यै नमः
287. ॐ चेष्टायै नमः
288. ॐ चित्रायै नमः
289. ॐ चारुविलासिन्यै नमः
290. ॐ चित्स्वरूपायै नमः
291. ॐ चन्द्रवत्यै नमः
292. ॐ चन्द्रमसे नमः
293. ॐ चन्दनप्रियायै नमः
294. ॐ चोदयित्र्यै नमः
295. ॐ चिरप्रज्ञायै नमः
296. ॐ चातकायै नमः
297. ॐ चारुहेतुक्यै नमः
298. ॐ छत्रयातायै नमः
299. ॐ छत्रधरायै नमः
300. ॐ छायायै नमः
301. ॐ छन्दःपरिच्छदायै नमः
302. ॐ छायादेव्यै नमः
303. ॐ छिद्रनखायै नमः
304. ॐ छन्नेन्द्रियविसर्पिण्यै नमः
305. ॐ छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्तायै नमः
306. ॐ छिद्रोपद्रवभेदिन्यै नमः
307. ॐ छेदायै नमः
308. ॐ छत्रेश्वर्यै नमः
309. ॐ छिन्नायै नमः
310. ॐ छुरिकायै नमः
311. ॐ छेदनप्रियायै नमः
312. ॐ जनन्यै नमः
313. ॐ जन्मरहितायै नमः
314. ॐ जातवेदायै नमः
315. ॐ जगन्मय्यै नमः
316. ॐ जाह्नव्यै नमः
317. ॐ जटिलायै नमः
318. ॐ जैत्र्यै नमः
319. ॐ जरामरणवर्जितायै नमः
320. ॐ जम्बूद्वीपवत्यै नमः
321. ॐ ज्वालायै नमः
322. ॐ जयन्त्यै नमः
323. ॐ जलशालिन्यै नमः
324. ॐ जितन्द्रियायै नमः
325. ॐ जितक्रोधायै नमः
326. ॐ जितामित्रायै नमः
327. ॐ जगत्प्रियायै नमः
328. ॐ जातरूपमय्यै नमः
329. ॐ जिह्वायै नमः
330. ॐ जानक्यै नमः
331. ॐ जगत्यै नमः
332. ॐ जरायै नमः
333. ॐ जनित्र्यै नमः
334. ॐ जन्हुतनयायै नमः
335. ॐ जगत्त्रयहितैषिण्यै नमः

336. ॐ ज्वालामुख्यै नमः
337. ॐ जपवत्यै नमः
338. ॐ ज्वरघ्न्यै नमः
339. ॐ जितविष्टपायै नमः
340. ॐ जिताक्रान्तमय्यै नमः
341. ॐ ज्वालायै नमः
342. ॐ जाग्रत्यै नमः
343. ॐ ज्वरदेवतायै नमः
344. ॐ ज्वलन्त्यै नमः
345. ॐ जलदायै नमः
346. ॐ ज्येष्ठायै नमः
347. ॐ ज्याघोषास्फोटड्ङिमुख्यै नमः
348. ॐ जाम्भिन्यै नमः
349. ॐ जृम्भणायै नमः
350. ॐ जृम्भायै नमः
351. ॐ ज्वलन्माणिक्यमुण्डलायै नमः
352. ॐ झिंझिकायै नमः
353. ॐ झणनिर्घोषायै नमः
354. ॐ झंझामारुतवेगिन्यै नमः
355. ॐ झल्लरीवाद्यकुशलायै नमः
356. ॐ ञरूपायै नमः
357. ॐ ञभुजास्मृतायै नमः
358. ॐ टङ्कबाणसमायुक्तायै नमः
359. ॐ टंकिन्यै नमः
360. ॐ टङ्कभेदिन्यै नमः
361. ॐ टंकीगणकृताघोषायै नमः
362. ॐ टंकनीयमहोरसायै नमः
363. ॐ टंकारकारिणीदेव्यै नमः
364. ॐ ठठशब्दनिनादिन्यै नमः
365. ॐ डामर्यै नमः
366. ॐ डाकिन्यै नमः
367. ॐ डिम्भायै नमः
368. ॐ डुण्डुमारैकनिर्जितायै नमः
369. ॐ डामरीतन्त्रमार्गस्थायै नमः
370. ॐ डमड्डुमरूनादिन्यै नमः
371. ॐ डिण्डीरवसहायै नमः
372. ॐ डिम्भलसत्क्रीडापरायणायै नमः
373. ॐ ढुण्ढिविघ्नेशजनन्यै नमः
374. ॐ ढक्काहस्तायै नमः
375. ॐ ढिलिव्रजायै नमः
376. ॐ नित्यज्ञानायै नमः
377. ॐ निरुपमायै नमः
378. ॐ निर्गुणायै नमः
379. ॐ नर्मदायै नमः
380. ॐ नद्यै नमः
381. ॐ त्रिगुणायै नमः
382. ॐ त्रिपदायै नमः
383. ॐ तन्त्र्यै नमः
384. ॐ तुलस्यै नमः
385. ॐ तरुणायै नमः
386. ॐ तरवे नमः
387. ॐ त्रिविक्रमपदक्रान्तायै नमः
388. ॐ तुरीयपदगामिन्यै नमः
389. ॐ तरुणादित्यसङ्काशायै नमः
390. ॐ तामस्यै नमः

391. ॐ तुहिनायै नमः
392. ॐ तुरायै नमः
393. ॐ त्रिकालज्ञानसम्पन्नायै नमः
394. ॐ त्रिवल्यै नमः
395. ॐ त्रिलोचनायै नमः
396. ॐ त्रिशक्तयै नमः
397. ॐ त्रिपुरायै नमः
398. ॐ तुङ्गायै नमः
399. ॐ तुरंगवदनायै नमः
400. ॐ तिमिङ्गिलगिलायै नमः
401. ॐ तीव्रायै नमः
402. ॐ त्रिसुतायै नमः
403. ॐ तामसादिन्यै नमः
404. ॐ तन्त्रमन्विशेषायै नमः
405. ॐ तनुमध्यायै नमः
406. ॐ त्रिविष्टपायै नमः
407. ॐ त्रिसन्ध्यायै नमः
408. ॐ त्रिस्तन्यै नमः
409. ॐ तोषासंस्थायै नमः
410. ॐ तालप्रतापिन्यै नमः
411. ॐ ताटंकिन्यै नमः
412. ॐ तुषाराभायै नमः
413. ॐ तुहिनाचलवासिन्यै नमः
414. ॐ तुन्तुजाल-समायुक्तायै नमः
415. ॐ तारहारावलिप्रियायै नमः
416. ॐ तिलहोमप्रियायै नमः
417. ॐ तीर्थायै नमः
418. ॐ तमालकुसुमाकृत्यै नमः
419. ॐ तारकायै नमः
420. ॐ त्रियुतायै नमः
421. ॐ तन्व्यै नमः
422. ॐ त्रिशंकुपरिवारितायै नमः
423. ॐ तलोदर्यै नमः
424. ॐ तिलाभूषायै नमः
425. ॐ ताटंकप्रियवाहिन्यै नमः
426. ॐ त्रिजटायै नमः
427. ॐ तित्तिर्यै नमः
428. ॐ तृष्णायै नमः
429. ॐ त्रिविधायै नमः
430. ॐ तरुणाकृत्यै नमः
431. ॐ तप्तकांचनसंकाशायै नमः
432. ॐ तप्तकांचनभूषणायै नमः
433. ॐ त्रयम्बकायै नमः
434. ॐ त्रिवर्गायै नमः
435. ॐ त्रिकालज्ञानदायिन्यै नमः
436. ॐ तर्पणायै नमः
437. ॐ तृप्तिदायै नमः
438. ॐ तृप्त्यै नमः
439. ॐ तामस्यै नमः
440. ॐ तुम्बुरुस्तुतायै नमः
441. ॐ तार्क्ष्यस्थायै नमः
442. ॐ त्रिगुणाकारायै नमः
443. ॐ त्रिभङ्गयै नमः
444. ॐ तनुवल्लर्यै नमः
445. ॐ थात्कार्यै नमः
446. ॐ थारवायै नमः
447. ॐ थान्तायै नमः
448. ॐ दोहिन्यै नमः
449. ॐ दीनवत्सलायै नमः

450. ॐ दानवान्तक्यै नमः
451. ॐ दुर्गायै नमः
452. ॐ दुर्गासुरनिबर्हिण्यै नमः
453. ॐ देवरीत्यै नमः
454. ॐ दिवारात्र्यै नमः
455. ॐ द्रौपद्यै नमः
456. ॐ दुन्दुभिस्वनायै नमः
457. ॐ देवयान्यै नमः
458. ॐ दुरावासायै नमः
459. ॐ दारिद्रयोद्भेदिन्यै नमः
460. ॐ दिवायै नमः
461. ॐ दामोदरप्रियायै नमः
462. ॐ दीप्तायै नमः
463. ॐ दिवासायै नमः
464. ॐ दिग्विमोहिन्यै नमः
465. ॐ दण्डकाण्यनिलायै नमः
466. ॐ दण्डिन्यै नमः
467. ॐ देवपूजितायै नमः
468. ॐ देववन्द्यायै नमः
469. ॐ दिविषदायै नमः
470. ॐ द्वेषिण्यै नमः
471. ॐ दानवाकृत्यै नमः
472. ॐ दीननाथस्तुतायै नमः
473. ॐ दीक्षायै नमः
474. ॐ दैवतादिस्वरूपिण्यै नमः
475. ॐ धात्र्यै नमः
476. ॐ धनुर्धरायै नमः
477. ॐ धेनवे नमः
478. ॐ धारिण्यै नमः
479. ॐ धर्मचारिण्यै नमः
480. ॐ धरधरायै नमः
481. ॐ धराधारायै नमः
482. ॐ धनदायै नमः
483. ॐ धान्यदोहिन्यै नमः
484. ॐ धर्मशीलायै नमः
485. ॐ धनाध्यक्षायै नमः
486. ॐ धनुर्वेदविशारदायै नमः
487. ॐ धृत्यै नमः
488. ॐ धन्यायै नमः
489. ॐ धृतपदायै नमः
490. ॐ धर्मराजप्रियायै नमः
491. ॐ ध्रुवायै नमः
492. ॐ धूमावत्यै नमः
493. ॐ धूमकेश्यै नमः
494. ॐ धर्मशास्त्रप्रकाशिन्यै नमः
495. ॐ नन्दायै नमः
496. ॐ नन्दप्रियायै नमः
497. ॐ निद्रायै नमः
498. ॐ नृनुतायै नमः
499. ॐ नन्दनात्मिकायै नमः
500. ॐ नर्मदायै नमः
501. ॐ नलिन्यै नमः
502. ॐ नीलायै नमः
503. ॐ नीलकण्ठसमाश्रयायै नमः
504. ॐ नारायणप्रियायै नमः
505. ॐ नित्यायै नमः
506. ॐ निर्मलायै नमः
507. ॐ निर्गुणायै नमः
508. ॐ निधये नमः
509. ॐ निराधारायै नमः

510. ॐ निरुपमायै नमः
511. ॐ नित्यशुद्धायै नमः
512. ॐ निरंजनायै नमः
513. ॐ नादबिन्दुकलातीतायै नमः
514. ॐ नादबिन्दुकलात्मिकायै नमः
515. ॐ नृसिंहिन्यै नमः
516. ॐ नगधरायै नमः
517. ॐ नृपनागविभूषितायै नमः
518. ॐ नरकक्लेशशमन्यै नमः
519. ॐ नारायणपदोद्भवायै नमः
520. ॐ निरवाद्यायै नमः
521. ॐ निराकारायै नमः
522. ॐ नारदप्रियकारिण्यै नमः
523. ॐ नानाज्योतिस्समाख्यातायै नमः
524. ॐ निधिदायै नमः
525. ॐ निर्मलात्मिकायै नमः
526. ॐ नवसत्रधरायै नमः
527. ॐ नीतये नमः
528. ॐ निरुपद्रवकारिण्यै नमः
529. ॐ नन्दजायै नमः
530. ॐ नवरत्नाढयायै नमः
531. ॐ नैमिषारण्यवासिन्यै नमः
532. ॐ नवनीतप्रियायै नमः
533. ॐ नार्यै नमः
534. ॐ नीलजीमूतनिस्वनायै नमः
535. ॐ निमेषिण्यै नमः
536. ॐ नदीरूपायै नमः
537. ॐ नीलग्रीवायै नमः
538. ॐ निशीश्वर्यै नमः
539. ॐ नामावल्यै नमः
540. ॐ निशुम्भघ्न्यै नमः
541. ॐ नागलोकनिवासिन्यै नमः
542. ॐ नवजाम्बूनदप्रख्यायै नमः
543. ॐ नागलोकाधिदेवतायै नमः
544. ॐ नूपुराक्रान्तचरणायै नमः
545. ॐ नरचित्तप्रमोदिन्यै नमः
546. ॐ निमग्नारक्तनयनायै नमः
547. ॐ निर्घातसमनिःस्वनायै नमः
548. ॐ नन्दनोद्यानिनलयायै नमः
549. ॐ निर्व्यूहोपरिचारिण्यै नमः
550. ॐ पार्वत्यै नमः
551. ॐ परमोदरायै नमः
552. ॐ परब्रह्मात्मिकायै नमः
553. ॐ परायै नमः
554. ॐ पंचकोशविनिर्युक्तायै नमः
555. ॐ पंचपातकनाशिन्यै नमः
556. ॐ परिचित्तविधानज्ञायै नमः
557. ॐ पंचिकायै नमः
558. ॐ पंचरूपिण्यै नमः
559. ॐ पूर्णिमायै नमः
560. ॐ परमायै नमः
561. ॐ प्रीत्यै नमः
562. ॐ परतेजःप्रकाशिन्यै नमः
563. ॐ पुराण्यै नमः
564. ॐ पौरुष्यै नमः
565. ॐ पुण्यायै नमः
566. ॐ पुण्डरीकनिभेक्षणायै नमः
567. ॐ पातालतलनिर्मग्नायै नमः

568. ॐ प्रीतायै नमः
569. ॐ प्रीतिविवर्धिन्यै नमः
570. ॐ पावन्यै नमः
571. ॐ पादसंहितायै नमः
572. ॐ पेशलायै नमः
573. ॐ पवनाशिन्यै नमः
574. ॐ प्रजापतये नमः
575. ॐ परिश्रान्तायै नमः
576. ॐ पर्वतस्तनमण्डलायै नमः
577. ॐ पद्मप्रियायै नमः
578. ॐ पद्मसंस्थायै नमः
579. ॐ पद्माक्ष्यै नमः
580. ॐ पद्मसम्भवायै नमः
581. ॐ पद्मपत्रायै नमः
582. ॐ पद्मपदायै नमः
583. ॐ पद्मिन्यै नमः
584. ॐ प्रियभाषिण्यै नमः
585. ॐ पशुपाशविनिर्युक्तायै नमः
586. ॐ पुरन्ध्रयै नमः
587. ॐ पुरवासिन्यै नमः
588. ॐ पुष्कलायै नमः
589. ॐ पुरुषायै नमः
590. ॐ पर्वायै नमः
591. ॐ पारिजात कुसुमप्रियायै नमः
592. ॐ पतिव्रतायै नमः
593. ॐ पवित्रांग्यै नमः
594. ॐ पुष्पहासपरायणायै नमः
595. ॐ प्रज्ञावतीसुतायै नमः
596. ॐ पौत्र्यै नमः
597. ॐ पुत्रपूज्यायै नमः
598. ॐ पयस्विन्यै नमः
599. ॐ पट्टिपाशधरायै नमः
600. ॐ पंक्तयै नमः
601. ॐ पितृलोकप्रदायिन्यै नमः
602. ॐ पुराण्यै नमः
603. ॐ पुण्यशीलायै नमः
604. ॐ प्रणतार्तिविनाशिन्यै नमः
605. ॐ प्रद्युम्नजनन्यै नमः
606. ॐ पुष्टायै नमः
607. ॐ पितामहपरिग्रहायै नमः
608. ॐ पुण्डरीकपुरावासायै नमः
609. ॐ पुण्डरीकसमाननायै नमः
610. ॐ पृथुजङ्घायै नमः
611. ॐ पृथुभुजायै नमः
612. ॐ पृथुपादायै नमः
613 ॐ पृथूदर्यै नमः
614. ॐ प्रवालशोभायै नमः
615. ॐ पिङ्गाक्ष्यै नमः
616. ॐ पीतवासायै नमः
617. ॐ प्रचापलायै नमः
618. ॐ प्रसवायै नमः
619. ॐ पुष्टिदायै नमः
620. ॐ पुण्यायै नमः
621. ॐ प्रतिष्ठायै नमः
622. ॐ प्रणवागत्यै नमः
623. ॐ पंचवर्णायै नमः
624. ॐ पंचवाण्यै नमः
625. ॐ पंचिकायै नमः
626. ॐ पंचरस्थितायै नमः

627. ॐ परमायायै नमः
628. ॐ परज्योतिषे नमः
629. ॐ परप्रीतये नमः
630. ॐ परागतये नमः
631. ॐ पराकाष्ठायै नमः
632. ॐ परेशान्यै नमः
633. ॐ पावन्यै नमः
634. ॐ पावकद्युतये नमः
635. ॐ पुण्यभद्रायै नमः
636. ॐ परिच्छेद्यायै नमः
637. ॐ पुष्पहासायै नमः
638. ॐ पृथूदर्यै नमः
639. ॐ पीताङ्ग्यै नमः
640. ॐ पीतवसनायै नमः
641. ॐ पीतशय्यायै नमः
642. ॐ पिशाचिन्यै नमः
643. ॐ पीतक्रियायै नमः
644. ॐ पिशाचघ्न्यै नमः
645. ॐ पाटलाक्ष्यै नमः
646. ॐ पटुक्रियायै नमः
647. ॐ पंचभक्षप्रियाचारायै नमः
648. ॐ पूतनाप्राणघातिन्यै नमः
649. ॐ पुन्नागवनमध्यस्थायै नमः
650. ॐ पुण्यतीर्थनिषेवितायै नमः
651. ॐ पंचाग्न्यै नमः
652. ॐ पराशक्तये नमः
653. ॐ परमाह्लादकारिण्यै नमः
654. ॐ पुष्पकाण्डस्थितायै नमः
655. ॐ पूषायै नमः
656. ॐ पोषिताखिलविष्टपायै नमः
657. ॐ पानप्रियायै नमः
658. ॐ पंचशिखायै नमः
659. ॐ पन्नगोपरिशायिन्यै नमः
660. ॐ पंचमात्रात्मिकायै नमः
661. ॐ पृथ्व्यै नमः
662. ॐ पथिकायै नमः
663. ॐ पृथुदोहिन्यै नमः
664. ॐ पुराणन्यायमीमांसायै नमः
665. ॐ पाटल्यै नमः
666. ॐ पुष्पगन्धिन्यै नमः
667. ॐ पुण्यप्रजायै नमः
668. ॐ पारदात्र्यै नमः
669. ॐ परमार्गैकगोचरायै नमः
670. ॐ प्रवालशोभायै नमः
671. ॐ पूर्णाशायै नमः
672. ॐ प्रणवायै नमः
673. ॐ पल्लवोदर्यै नमः
674. ॐ फलिन्यै नमः
675. ॐ फलदायै नमः
676. ॐ फल्गवे नमः
677. ॐ फूत्कार्यै नमः
678. ॐ फलकाकृत्यै नमः
679. ॐ फणीन्द्रभोगशयनायै नमः
680. ॐ फणिमण्डलमण्डितायै नमः
681. ॐ बालबालायै नमः
682. ॐ बहुमतायै नमः
683. ॐ बालातपनिभांशुकायै नमः
684. ॐ बलभद्रप्रियायै नमः
685. ॐ वन्द्यायै नमः

686. ॐ वडवायै नमः
687. ॐ बुद्धिसंस्तुतायै नमः
688. ॐ वन्दीदेव्यै नमः
689. ॐ बिलवत्यै नमः
690. ॐ बडिशघ्न्यै नमः
691. ॐ बलिप्रयायै नमः
692. ॐ बान्धव्यै नमः
693. ॐ बोधितायै नमः
694. ॐ बुध्यै नमः
695. ॐ बन्धूक कुसुमप्रियायै नमः
696. ॐ बालभानुप्रभाकारायै नमः
697. ॐ ब्राह्ययै नमः
698. ॐ ब्राह्मणदेवतायै नमः
699. ॐ बृहस्पतिस्तुतायै नमः
700. ॐ वृन्दायै नमः
701. ॐ वृन्दावनविहारिण्यै नमः
702. ॐ बालाकिन्यै नमः
703. ॐ बिलाहारायै नमः
704. ॐ बिलवासायै नमः
705. ॐ बहूदकायै नमः
706. ॐ बहुनेत्रायै नमः
707. ॐ बहुपदायै नमः
708. ॐ बहुकर्णावतंसिकायै नमः
709. ॐ बहुबाहुयुतायै नमः
710. ॐ बीजरूपिण्यै नमः
711. ॐ बहुरूपिण्यै नमः
712. ॐ बिन्दुनादकलातीतायै नमः
713. ॐ बिन्दुनाद रूपिण्यै नमः
714. ॐ बद्धगोधाङ्गुलित्राणायै नमः
715. ॐ बदर्याश्रमवासिन्यै नमः
716. ॐ वृन्दारकायै नमः
717. ॐ बृहत्स्कन्धायै नमः
718. ॐ बृहतीबाणपातिन्यै नमः
719. ॐ वृन्दाध्यक्षायै नमः
720. ॐ बहुनुतायै नमः
721. ॐ वनितायै नमः
722. ॐ बहुविक्रमायै नमः
723. ॐ बद्धपद्मासनासीनायै नमः
724. ॐ बिल्वपत्रतलस्थितायै नमः
725. ॐ बोधिद्रुमनिजावासायै नमः
726. ॐ बडिस्थायै नमः
727. ॐ बिदुदर्पणायै नमः
728. ॐ बालायै नमः
729. ॐ बाणासनवत्यै नमः
730. ॐ बडवानलवेगिन्यै नमः
731. ॐ ब्रह्माण्डबहिरन्तः स्थायै नमः
732. ॐ ब्रह्मकङ्कणसूत्रिण्यै नमः
733. ॐ भवान्यै नमः
734. ॐ भीषणवत्यै नमः
735. ॐ भाविन्यै नमः
736. ॐ भयहारिण्यै नमः
737. ॐ भद्रकाल्यै नमः
738. ॐ भुजङ्गाक्ष्यै नमः
739. ॐ भारत्यै नमः
740. ॐ भारताशयायै नमः
741. ॐ भैरव्यै नमः
742. ॐ भीषणकारायै नमः
743. ॐ भूतिदायै नमः

744. ॐ भूतिमालिन्यै नमः
745. ॐ भामिन्यै नमः
746. ॐ भोगनिरतायै नमः
747. ॐ भद्रदायै नमः
748. ॐ भूरिविक्रमायै नमः
749. ॐ भूतवासायै नमः
750. ॐ भृगुलतायै नमः
751. ॐ भार्गव्यै नमः
752. ॐ भूसुरार्चितायै नमः
753. ॐ भागीरथ्यै नमः
754. ॐ भोगवत्यै नमः
755. ॐ भवनस्थायै नमः
756. ॐ भिषग्वरायै नमः
757. ॐ भामिन्यै नमः
758. ॐ भोगिन्यै नमः
759. ॐ भाषायै नमः
760. ॐ भवान्यै नमः
761. ॐ भूरिदक्षिणायै नमः
762. ॐ भर्गात्मिकायै नमः
763. ॐ भीमवत्यै नमः
764. ॐ भवबन्धविमोचिन्यै नमः
765. ॐ भजनीयायै नमः
766. ॐ भूतधात्रीरंजितायै नमः
767. ॐ भुवनेश्वर्यै नमः
768. ॐ भुजङ्गवलयायै नमः
769. ॐ भीमायै नमः
770. ॐ भेरुण्डायै नमः
771. ॐ भागधेयिन्यै नमः
772. ॐ मात्रे नमः
773. ॐ मायायै नमः
774. ॐ मधुमत्यै नमः
775. ॐ मधुजिह्वायै नमः
776. ॐ मधुप्रियायै नमः
777. ॐ महादेव्यै नमः
778. ॐ महाभागायै नमः
779. ॐ मालिन्यै नमः
780. ॐ मीनलोचनायै नमः
781. ॐ मायातीतायै नमः
782. ॐ मधुमत्यै नमः
783. ॐ मधुमांसायै नमः
784. ॐ मधुद्रवायै नमः
785. ॐ मानव्यै नमः
786. ॐ मधुसम्भूतायै नमः
787. ॐ मिथिलापुरवासिन्यै नमः
788. ॐ मधुकैटभसंहन्त्र्यै नमः
789. ॐ मेदिन्यै नमः
790. ॐ मेघमालिन्यै नमः
791. ॐ मन्दोदर्यै नमः
792. ॐ महामायायै नमः
793. ॐ मैथिल्यै नमः
794. ॐ मसृणप्रियायै नमः
795. ॐ महालक्ष्म्यै नमः
796. ॐ महाकाल्यै नमः
797. ॐ महाकन्यायै नमः
798. ॐ महेश्वर्यै नमः
799. ॐ माहेन्द्र्यै नमः
800. ॐ मेरुतनयायै नमः
801. ॐ मन्दारकुसुमार्चितायै नमः
802. ॐ मंजुमंजीरचरणायै नमः
803. ॐ मोक्षदायै नमः

804. ॐ मंजुभाषिण्यै नमः
805. ॐ मधुरद्राविण्यै नमः
806. ॐ मुद्रायै नमः
807. ॐ मलयायै नमः
808. ॐ मलयान्वितायै नमः
809. ॐ मेघायै नमः
810. ॐ मरकतश्यामायै नमः
811. ॐ मागध्यै नमः
812. ॐ मेनकात्मजायै नमः
813. ॐ महामायै नमः
814. ॐ महावीरायै नमः
815. ॐ महाश्यामायै नमः
816. ॐ मनुस्तुतायै नमः
817. ॐ मातृकायै नमः
818. ॐ मिहिराभासायै नमः
819. ॐ मुकुन्दपदविक्रमायै नमः
820. ॐ मूलाधारस्थितायै नमः
821. ॐ मुग्धायै नमः
822. ॐ मणिपूरकवासिन्यै नमः
823. ॐ मृगाक्ष्यै नमः
824. ॐ महिषारूढ़ायै नमः
825. ॐ महिषासुरमर्दिन्यै नमः
826. ॐ योगासनायै नमः
827. ॐ योगगम्यायै नमः
828. ॐ योगायै नमः
829. ॐ यौवनकाश्रयायै नमः
830. ॐ यौवन्यै नमः
831. ॐ युद्धमध्यस्थायै नमः
832. ॐ यमुनायै नमः
833. ॐ युगधारिण्यै नमः
834. ॐ यक्षिण्यै नमः
835. ॐ योगयुक्तायै नमः
836. ॐ यक्षराजप्रसूतिन्यै नमः
837. ॐ यात्रायै नमः
838. ॐ यानविधानज्ञायै नमः
839. ॐ यदुवंशसमुद्भवायै नमः
840. ॐ यकारादिहकारान्तायै नमः
841. ॐ याजुष्यै नमः
842. ॐ यज्ञरूपिण्यै नमः
843. ॐ यामिन्यै नमः
844. ॐ योगनिरतायै नमः
845. ॐ यातुधानभयंकर्यै नमः
846. ॐ रुक्मिण्यै नमः
847. ॐ रमण्यै नमः
848. ॐ रामायै नमः
849. ॐ रेवत्यै नमः
850. ॐ रेणुकायै नमः
851. ॐ रत्यै नमः
852. ॐ रौद्रयै नमः
853. ॐ रौद्रप्रियाकारायै नमः
854. ॐ राममात्रे नमः
855. ॐ रतिप्रियायै नमः
856. ॐ रोहिण्यै नमः
857. ॐ राज्यदायै नमः
858. ॐ रेवायै नमः
859. ॐ रमायै नमः
860. ॐ राजीवलोचनायै नमः
861. ॐ राकेश्यै नमः
862. ॐ रूपसम्पन्नायै नमः
863. ॐ रत्नसिंहासनस्थितायै नमः

864. ॐ रक्तमाल्याम्बरधरायै नमः
865. ॐ रक्तगन्धानुलेपनायै नमः
866. ॐ राजहंससमारूढ़ायै नमः
867. ॐ रम्भायै नमः
868. ॐ रक्तबलिप्रियायै नमः
869. ॐ रमणीययुगाधारायै नमः
870. ॐ राजिताखिलभूतलायै नमः
871. ॐ रुरुचर्मपरीधानायै नमः
872. ॐ रथिन्यै नमः
873. ॐ रत्नमालिकायै नमः
874. ॐ रोगेश्यै नमः
875. ॐ रोगशमन्यै नमः
876. ॐ राविण्यै नमः
877. ॐ रोमहर्षिण्यै नमः
878. ॐ रामचन्द्रपदाक्रान्तायै नमः
879. ॐ रावणच्छेदकारिण्यै नमः
880. ॐ रत्नवस्त्रपरिच्छिन्नायै नमः
881. ॐ रथस्थायै नमः
882. ॐ रुक्मभूषणायै नमः
883. ॐ लज्जाधिदेवतायै नमः
884. ॐ लोलायै नमः
885. ॐ ललितायै नमः
886. ॐ लिङ्गधारिण्यै नमः
887. ॐ लक्ष्म्यै नमः
888. ॐ लोलांयै नमः
889. ॐ लुप्तविषायै नमः
890. ॐ लोकिन्यै नमः
891. ॐ लोकविश्रुतायै नमः
892. ॐ लज्जायै नमः
893. ॐ लम्बोदरीदेव्यै नमः
894. ॐ ललनायै नमः
895. ॐ लोकधारिण्यै नमः
896. ॐ वरदायै नमः
897. ॐ वन्दितायै नमः
898. ॐ विद्यायै नमः
899. ॐ वैष्णव्यै नमः
900. ॐ विमलाकृत्यै नमः
901. ॐ वाराह्यै नमः
902. ॐ विरजायै नमः
903. ॐ वर्षायै नमः
904. ॐ वरलक्ष्म्यै नमः
905. ॐ विलासिन्यै नमः
906. ॐ विनतायै नमः
907. ॐ व्योममध्यस्थायै नमः
908. ॐ वारिजासनसंस्थितायै नमः
909. ॐ वारुण्यै नमः
910. ॐ वेणुसंभूतायै नमः
911. ॐ वीतिहोत्रायै नमः
912. ॐ विरूपिण्यै नमः
913. ॐ वायुमण्डलमध्यस्थायै नमः
914. ॐ विष्णुरूपायै नमः
915. ॐ विधिप्रियायै नमः
916. ॐ विष्णुपत्न्यै नमः
917. ॐ विष्णुमत्यै नमः
918. ॐ विशालाक्ष्यै नमः
919. ॐ वसुन्धरायै नमः
920. ॐ वामदेवप्रियायै नमः
921. ॐ बेलायै नमः
922. ॐ वज्रिण्यै नमः
923. ॐ वसुदोहिन्यै नमः

924. ॐ वेदाक्षरपरीताङ्गयै नमः
925. ॐ वाजपेयफलदायै नमः
926. ॐ वासव्यै नमः
927. ॐ वामजनन्यै नमः
928. ॐ वैकुण्ठनिलयायै नमः
929. ॐ वरायै नमः
930. ॐ व्यासप्रियायै नमः
931. ॐ वर्मधरायै नमः
932. ॐ वाल्मीकिपरिसेवितायै नमः
933. ॐ शाकम्भर्यै नमः
934. ॐ शिवायै नमः
935. ॐ शान्तायै नमः
936. ॐ शारदायै नमः
937. ॐ शरणागतये नमः
938. ॐ शातोदर्यै नमः
939. ॐ शुभाचारायै नमः
940. ॐ शुम्भासुरविमर्दिन्यै नमः
941. ॐ शोभावत्यै नमः
942. ॐ शिवाकारायै नमः
943. ॐ शंकरार्धशरीरिण्यै नमः
944. ॐ शोणायै नमः
945. ॐ शुभाशयायै नमः
946. ॐ शुभ्रायै नमः
947. ॐ शिरःसंधानकारिण्यै नमः
948. ॐ शरावत्यै नमः
949. ॐ शरानन्दायै नमः
950. ॐ शरज्ज्योत्स्नायै नमः
951. ॐ शुभाननायै नमः
952. ॐ शरभायै नमः
953. ॐ शूलिन्यै नमः
954. ॐ शुद्धायै नमः
955. ॐ शबर्यै नमः
956. ॐ शुकवाहनायै नमः
957. ॐ श्रीमत्यै नमः
958. ॐ श्रीधरानन्दायै नमः
959. ॐ श्रवणानन्ददायिन्यै नमः
960. ॐ शर्वाण्यै नमः
961. ॐ शर्वरीवन्द्यायै नमः
962. ॐ षड्भाषायै नमः
963. ॐ षड्तुप्रियायै नमः
964. ॐ षडाधारस्थितादेव्यै नमः
965. ॐ षण्मुखप्रियकारिण्यै नमः
966. ॐ षडङ्गरूपसुमतिसुराऽ-सुरनमस्कृतायै नमः
967. ॐ सरस्वत्यै नमः
968. ॐ सदाधारायै नमः
969. ॐ सर्वमङ्गलकारिण्यै नमः
970. ॐ सामगानप्रियायै नमः
971. ॐ सूक्ष्मायै नमः
972. ॐ सावित्र्यै नमः
973. ॐ सामसम्भवायै नमः
974. ॐ सर्वावासायै नमः
975. ॐ सदानन्दायै नमः
976. ॐ सुस्तन्यै नमः
977. ॐ सागराम्बरायै नमः
978. ॐ सर्वैश्वर्यप्रियायै नमः
979. ॐ सिद्ध्यै नमः
980. ॐ साधुबन्धुपराक्रमायै नमः
981. ॐ सप्तर्षिमण्डलगतायै नमः
982. ॐ सोममण्डलवासिन्यै नमः

983. ॐ सर्वज्ञायै नमः
984. ॐ सान्द्रकरुणायै नमः
985. ॐ समानाधिकवर्जितायै नमः
986. ॐ सर्वोत्तुङ्गायै नमः
987. ॐ सङ्गहीनायै नमः
988. ॐ सद्गुणायै नमः
989. ॐ सकलेष्टदायै नमः
990. ॐ सरघायै नमः
991. ॐ सूर्यतनयायै नमः
992. ॐ सुकेश्यै नमः
993. ॐ सोमसंहत्यै नमः
994. ॐ हिरण्यवर्णायै नमः
995. ॐ हरिण्यै नमः
996. ॐ ह्रींकार्यै नमः
997. ॐ हंसवाहिन्यै नमः
998. ॐ क्षौमवस्त्रपरीताङ्गयै नमः
999. ॐ क्षीराब्धितनयायै नमः
1000. ॐ क्षमायै नमः
1001. ॐ गायत्र्यै नमः
1002. ॐ सावित्र्यै नमः
1003. ॐ पार्वत्यै नमः
1004. ॐ सरस्वत्यै नमः
1005 . ॐ वेदगर्भायै नमः
1006 . ॐ वरारोहायै नमः
1007. ॐ श्रीगायत्र्यै नमः
1008. ॐॐ परामि्बकायै नमः

इति साहस्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद।।
पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासम्पत्तिदायकम्।।
एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि।
अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह।।
जपं कृत्वा होम-पूजा ध्यानं कृत्वा विशेषतः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः।।

(गायत्री रहस्य)

आदिमहाशक्ति गायत्री की आराधना से 24 देवी-देवताओं के साथ ही त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा परम सत्ता ओंकार रूप परमब्रह्मपरमेश्वर की उपासना एक साथ हो जाती है और आराधक सुखमय सफल जीवन के साथ ही परमब्रह्म-सायुज्य प्राप्त कर जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

गायत्री का विधि पूर्वक अनुष्ठान, पुरश्चरण एवं अन्य पूजन विधि से गायत्री की साधना जिनके लिए संभव न हो, वे भी सविधि या अविधि का विचार किए बिना उचित उत्तरदायित्व का निर्वहन

करते हुए मन ही मन श्रद्धाभाव से गायत्री जप कर सकते हैं। गायत्री आराधना भाव प्रधान है, प्रक्रिया प्रधान नहीं है। आदिशक्ति गायत्री मानवमात्र के लिये परमकल्याणकारिणी हैं।

गायत्री समुपासेन सर्वसिद्धिः प्रशस्यते।
सुखमयं जीवनं सफलं सायुज्यं नात्र संशयः।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्।।

ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

आदिशक्ति गायत्री

त्रिगुणातीता परमपुनीता शक्ति प्रदायिनिमाता।
भवरुज ग्रस्त त्रस्त जगती की पाप नाशिनी त्राता।।
विश्वविधात्री बुद्धि प्रदात्री, वैभवदात्री कल्याणी।
निखिलसृष्टि आधार प्रदायिनि, बल संचारिणि ऋग्वाणी।।
तीन रूप ऐं ह्रीं क्लीं धारिणि, रिपुबलहारिणि श्री अम्बे।
पंचप्राण संचार कारिणी मुक्ति दायिनी जगदम्बे।।
गायत्री हैं महाप्राण, दुःखत्राण दिलाती हैं, जो।
अज्ञानों से घनित तिमिर को दूरभगाती हैं वो।।
सूक्ष्म रूप से व्याप्त अखिल ब्रह्माण्ड उन्हीं की माया।
वेदों में हैं शब्दरूप साकार छन्द सी काया ।।
पंचतत्त्व निर्मित इस जग के निहित पंच भूतों में।
परमज्योति भरती अर्चन से सद्यः निज भक्तों में ।।
वन्दन से नित मिल जाता है अमित ज्ञान भंडार।
माँ गायत्री तेजपुँज ओ महा ज्ञान आगार ।।
उत्पत्ति स्थिति संहारिणि संग जग संचारिणि परमशिवा।
उनके चरणों में अर्पण से पाते नर सुखनिशादिवा।।

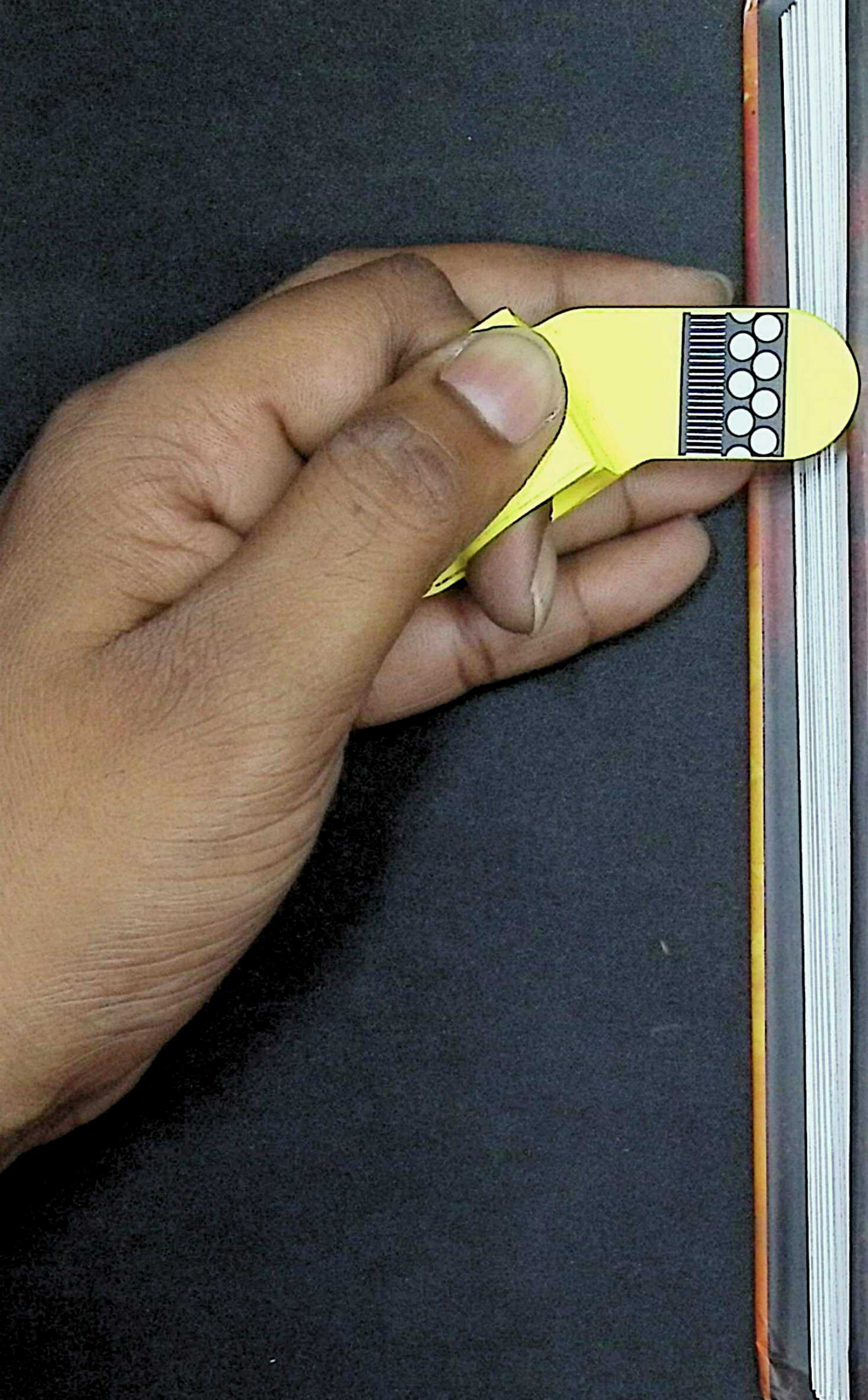

विद्यानन्द झा

पण्डित विद्यानन्द झा की प्रकाशित प्रमुख कृतियाँ

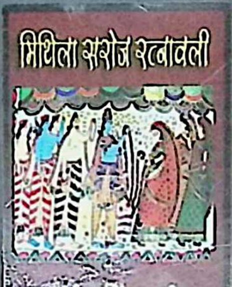

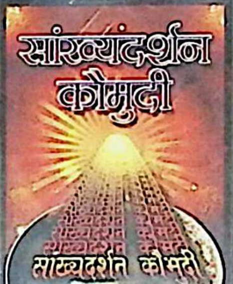

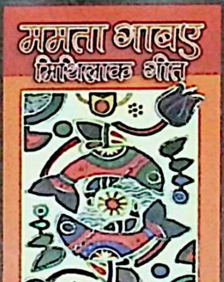

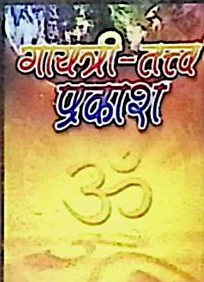

ISBN: 978-93-5087-294-9

www.vnjha.com
info@vnjha.com